मनोरमा के लिए

प्रस्तुत कृति के सम्बंध में—

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों के अध्ययन से सहज ही आजादी के पूर्व के हिन्दुस्तान के जनमानस की विविध तस्वीरों का परिचय पाया जा सकता है। ये तस्वीरें, उत्तर-प्रदेश या बंगाल की ही नहीं हैं वरन् जीवन के संघर्ष में या पतनशील कुलीनता के मार्मिक प्रसंगों से सम्बद्ध आधुनिकता की ओर आने वाले, मध्यकालीनता से मुक्ति की तड़प लिए हुए भारतीय जनमानस की हैं।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र, दोनों लेखकों ने विविध स्तरों पर पाठकों को आन्दोलित किया है। यह काम कोई आसान काम नहीं। इसके लिए गहरी जीवनदृष्टि की अनिवार्यता अपेक्षित होती है। इन लेखकों ने मानव-जीवन की समग्रता को अपनाकर अनेकानेक समसामयिक समस्याओं को अपनी रचनाओं में उठाया है। समस्याओं के समाधान खोजना उनका लक्ष्य नहीं। वस्तुतः ये दोनों कलाकार मानव-आत्मा के शिल्पी हैं। साहित्य में वे केवल कलाधर्म के संस्थापक नहीं हैं, अपितु इन लेखकों ने मानव-धर्म की भौतिक कारिकाओं को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है। उनकी अभिव्यक्ति का यह क्रम और उनके निजी प्रसंगों में प्राप्त उनकी रचना-प्रक्रिया की धुंधली तस्वीरें, भारतीय संस्कृति के बदलते हुए 'कीर्तिपुरुष' की तस्वीरें हैं।

मेरा दृष्टिकोण इन दोनों उपन्यासकारों के बारे में 'कृतियों की राह' से उन्हें पहचानने का रहा है। मैंने उनकी तुलनाओं को 'निर्णय की तुला' के रूप में नहीं लिया बल्कि इन लेखकों को जानने की सुविधा के लिए रचित उपन्यासों को आमने-सामने रखा है। 'मनुष्य' को जिस रूप में इन दोनों कलाकारों ने समझा है, उस तरह की गहरी पकड़ की तुलना किसी भी श्रेष्ठ साहित्यकार से की जा सकती है। मेरा यह काम कई दृष्टियों से अधूरा भी हो सकता है जिसे पूरा होने की अनेक सम्भावनाओं पर छोड़ दिया गया है। इसलिए प्रस्तुत कृति की समीक्षा का द्वार पूरी तरह खुला है।

प्रस्तुत कृति की पूर्व-रेखाओं से लेकर लिखे जाने की प्रक्रिया में जिन विद्वानों का अमूल्य सहयोग मिला है उनमें डॉ० दीनदयाल गुप्त, डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित का विशेष आभारी हूँ। इस संदर्भ में प० कृष्णशंकर शुक्ल की याद सहज ही आ जाती है जिनके प्रति किसी प्रकार की औपचारिकता व्यक्त करने में मैंने सदैव संकोच

—सुरेन्द्रनाथ तिवारी

य
प्र
द
मा
पर
उ
भा
यग
पा
ति

रूप
रच
भग
उन
दश
कथा
मान
की प्र

है।
सामा
ग्रतः
स्पष्ट
सजग
युग

अनुक्रम

व
प्र
व.
श्र
पह
उ:
श्रा
वग
पा
ात

रूप
रच
भग
उन
दश
कथ
मान
की !

है ।
साम
मत

१

जीवन-दृष्टि का परिप्रेक्ष्य

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों के कथाफलक बहुत बड़े हैं, वस्तुतः उनकी यह व्यापकता इस बात का प्रमाण है कि उन्हें रचनाकार के रूप में जीवन के बड़े हिस्से का अनुभव था। जीवन से उनकी आत्मीयता, सूक्ष्म विवरणों की निजी आन्तरिक पहचान उनकी प्रतिबद्धता का एक उदाहरण है। उन्होंने अपने उपन्यासों में मानव-अनुभवों के जो आयाम दिए हैं, उनसे हम न केवल उत्तर प्रदेश या बंगाल से परिचित होते हैं अपितु पूरे भारतवर्ष से परिचित होते हैं क्योंकि उनकी कथाओं के सांस्कृतिक परिवेश में विलक्षण समानताएं हैं। वस्तुतः जीवन को उन्होंने जिस रूप में देखा, और उसके बीच से जैसा-जैसा अपनी रचनाओं के लिए चुना- वह एक ऐसी प्रक्रिया का अंग है जिसे हम जीवन-दृष्टि कह सकते हैं। उनकी वैचारिक प्रस्थापना अगर उनका जीवन-दर्शन या उनकी मूल मान्यताएं हैं तो औपन्यासिक कथाभूमि की चयन-दृष्टि उपन्यासों में उदार मानववाद की प्रतिच्छवियाँ उनकी जीवन-दृष्टि की प्रतीतियाँ हैं।

उपन्यास-रचना में जीवन के अनेक पक्षों के [illegible] में विस्तार की सुविधा रहती है। आधुनिक उपन्यासों को 'मानव-जीवन के महाकाव्य' की संज्ञा दी जाती है। प्रेमचन्द-शरतचन्द्र के उपन्यासों की विराटता अवश्य ही उस महाकाव्यात्मक गरिमा से संपृक्त है। प्रेमचन्द की मान्यता थी कि "आदर्श उपन्यास [illegible] चाहे किसी बड़े आदमी का या छोटे आदमी का।"[1] प्रेमचन्द ने उपन्यास के माध्यम से अपने समय की जीवनियाँ लिखी हैं यद्यपि उनका [illegible] औपन्यासिक [illegible] के अनुरूप है। राल्फ फाक्स ने कहा भी है कि "उपन्यास मनुष्य के जीवन की गाथा है।"[2]

जीवन के प्रति गहरी दृष्टि उपन्यासकार की [illegible]

[illegible]

* प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की [illegible]

[illegible] हुआ। जीवन के प्रति इस प्रकार की दृष्टि के [illegible]

हुए एडविन म्योर ने लिखा है—"अन्ततोगत्वा तथ्य यह है कि उपन्यासकार जीव के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखता है वह बहुत साधारण नही होता, बात केवल यही कि जीवन के सम्बन्ध मे वह कुछ भी जानता है। यह भी आश्चर्यजनक नही कि ज वह लिखे तो उसे जीवन को अनिवार्यत क्रम से एक साँचे मे प्रस्तुत करना चाहि और इस सम्बन्ध में वह क्या सोच सकता है कोई महत्त्व की बात नही है। वह ऐस करता है, क्योंकि वह एक कथन प्रस्तुत करता है और जीवन ऐसा कर नही सकता उस कथन मे वह कह सकता है कि जीवन एक उपद्रव है अथवा एक क्रम।"[1]

जीवन मे आनन्द और सुख की प्राप्ति करना प्रत्येक मनुष्य का लक्ष्य होता है प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनो ही उपन्यासकारो ने अपनी कृतियो मे आनन्द का सम र्थन किया है। प्रेमचन्द के अनुसार 'आनन्द जीवन का तत्त्व है।'[2] यह बात प्रेमचन्द के उपन्यासो के कथानको तथा पात्रो के सृजन के मूल्य मे निहित प्रतीत होती है। इसी प्रेमचन्द अपने उपन्यासो मे मानव-जीवन की परिणति आदर्श मे करते है। जीवन के कटुता और तिक्तता को उद्घाटित करके प्रेमचन्द उसे आदर्श से मडित करते है औ इस प्रकार जीवन मे आनन्द की प्रतिष्ठा करते है। शरतचन्द्र ने आनन्द को जीवन क तत्त्व मानने की अपेक्षा ससार के सुख और ऐश्वर्य का उपभोग करने का समर्थन किय है। 'शेषप्रश्न' मे सुखवाद को प्रतिष्ठित करने का लक्ष्य अधिक स्पष्ट दिखाई पडत है। 'शेषप्रश्न' की 'कमल' की जीवन-दृष्टि सुखवाद पर ही आधारित प्रतीत होती है—"हमारी साधना है ससार का सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण सौंदर्य, सम्पूर्ण जीवन के लेकर जीवित रहना।"[3] एक अन्य स्थल पर भी आनन्द के महत्त्व को स्वीकार किय गया है— "आनन्द के वे छोटे-छोटे क्षण ही मेरे मन मे मणि-माणिक्य की तरह सचित हैं। न तो निष्फल मानसिक दाह से मैंने उन्हें जलाकर खाक किया और न सूखे झरने के नीचे रीते हाथ पसारकर भीख मागने के लिए ही खड़ी हुई।"[4]

वास्तव मे मनुष्य अपने सम्पूर्ण जीवन मे सुख और आनन्द की प्राप्ति के लि सघर्षरत रहता है। यह सघर्ष ही उसके जीवन को प्राणवान बनाता है।

प्रेमचन्द ने मानव-जीवन की विषमताओं का कारण अर्थ पर आधारित सामा जिक व्यवस्था माना है। यही कारण है कि प्रेमचन्द के अधिकाश उपन्यासो मे आधिक परिस्थितियाँ ही जीवन की विषमता का कारण हुई है। 'सुमन' (सेवासदन), 'निर्मला (निर्मला) आदि पात्रो के जीवन मे प्रेमचन्द के इस दृष्टिकोण को स्पष्टत देखा ज सकता है। 'सुमन' का विवाह धन के अभाव मे एक निर्धन व्यक्ति के साथ हो गया 'सुमन' पति की परिस्थितियो को अपने अनुकूल न बना सकी। परिणामस्वरूप उसे जीवन मे ऐसी विषम परिस्थितियो का सामना करना पडा जो अकल्प्य थी। गृहस्थ कुलवधू के स्थान पर 'सुमन' को वेश्यावृत्ति अपनानी पड़ी जिसे उसने सस्कार [illegible]

प्रकार भी मानने को तैयार न थे।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की जीवन-दृष्टियों का मूल अन्तर उनकी रचनादृष्टि का मूल अन्तर भी है। प्रेमचन्द ने मानव-जीवन की बाह्य परिस्थितियों के पार्श्व में उनकी विषमताओं का विश्लेषण किया है जबकि शरतचन्द्र ने मानव-हृदय का सूक्ष्म अंकन करके उसके अन्तर और बाह्य—दोनों ही स्थितियों के विषमता-भरे चित्र उपस्थित किये है। प्रेमचन्द की रचनाओं को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनके 'व्यक्ति' में मनुष्य की अन्तर्विषमताओं का डटकर सामना करने की शक्ति नहीं है। ऐसे स्थलों पर उनका आदर्श से भरा हुआ स्वर बोल उठा है। शरतचन्द्र ने आत्मविश्लेषण-पद्धति को अपनाया है। वे मनुष्य के अन्तःकरण की प्रेरणा को भी महत्त्व देते है, इसलिए उनके 'व्यक्ति' का समस्त द्वन्द्व और विरोध अन्तःकरण के बीच उपस्थित हुआ है। एक स्थल पर वे कहते है—"ससार मे सिर्फ बाहरी घटनाओं को अगल-बगल लम्बी सजा कर उससे सभी हृदयों का पानी नहीं नापा जा सकता।"[४]

मनुष्य की आन्तरिक स्थिति को न समझ पाने के कारण ही जीवन में विषमताएं उत्पन्न होती हैं। शरतचन्द्र ने इस दृष्टिकोण को 'राजलक्ष्मी' (श्रीकान्त), 'सुरेश', 'अचला' (गृहदाह), 'पार्वती' (देवदास) आदि पात्रों के द्वारा स्पष्ट किया है। इन पात्रों के अन्तस् के विश्लेषण द्वारा शरतचन्द्र ने यह दिखाया है कि मनुष्य की आन्तरिक स्थिति बाह्य जीवन से सदैव मेल नहीं रख पाती किंतु समाज उसे समझ नहीं पाता। 'राजलक्ष्मी' के हृदय में 'श्रीकान्त' को वरण करने की असीमित आकांक्षा थी किंतु समाज उसे समझ नहीं सका परिणामतः 'राजलक्ष्मी' को अपने जीवन मे अनेक विषमताओं का सामना करना पड़ा।

सामाजिक विसंगतियों से त्रस्त मनुष्य जब संघर्ष की मुद्राओं के लिए स्वयं को तैयार करता है तब उसे भावावेगों के अनेक द्वन्द्वों के बीच से गुजरना पड़ता है। ऐसी स्थिति मे उसे कभी अवसाद घेरता है तो कभी रौद्र का विद्रोही भाव। अपने अनेक कार्यों मे वह असफल होता है। ये असफलताएं ही उसके जीवन मे परिव्याप्त उदासीनता का कारण बनती हैं। प्रेमचन्द आर्थिक विषमता को भी व्यक्ति की उदासीनता का कारण मानते है। 'गोदान' के 'रायसाहब' के जीवन-सदर्भ मे अत्यन्त स्पष्ट शब्दों मे प्रेमचन्द ने लिखा है--"दु:खी प्राण को आत्मचिन्तन में जो शान्ति मिलती है, उसके लिए वह भी लालायित रहते थे। जब आर्थिक कठिनाइयों से निराश हो जाते, मन में आता ससार से मुँह मोड़कर एकान्त में जा बैठें और मोक्ष की चिन्ता करें।"[५]

शरतचन्द्र के उपन्यासों में भी जीवन में व्याप्त उदासीनता के प्रति विचार व्यक्त किये गये हैं। शरतचन्द्र के उपन्यासों में मानव-मन की निर्बलता को ही जीवन के प्रति उदासीनता अथवा विरक्ति का कारण माना गया है। शरतचन्द्र के कतिपय

पात्रों में यह दृष्टिकोण स्पष्टता से देखा जा सकता है। 'सुरेश' (गृहदाह), 'देवदास' (देवदास) तथा 'श्रीकांत' (श्रीकांत) इस बात के समर्थन के लिए प्रस्तुत किये जा सकते हैं। 'सेवासदन' की 'कमल' के माध्यम से इस दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है। "कमल अपने अतीत के क्षणों को याद करके अपने वर्तमान जीवन से कभी-कभी उदास हो जाती है, ऐसे ही एक बार वह सोचती है—'घर में उसे कोई ममता नहीं, फिर भी किस लिए वह दिन-भर मेहनत करती रही, अकस्मात् इसकी क्या जरूरत आ पड़ी'—इसी तरह की एक धुंधली-सी जिज्ञासा उसके मन में घूम रही थी। काम छोड़ कर वह छज्जे पर जा बैठती और शून्य दृष्टि से सड़क की तरफ देखती हुई न जाने क्या भूलने की कोशिश करती, और फिर भीतर आकर काम में लग जाती है।"[9]

जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में सुख और दुःख का भी विशेष स्थान है। मानव-मन के अनुकूल पड़ने वाली बातों को सुख और प्रतिकूल पड़ने वाली बातों को दुःख कहा जा सकता है। इस प्रसंग में जीवन की सबसे बड़ी विषमता यही है कि सभी बातें मानव-मन के अनुकूल नहीं हुआ करती, परिणामतः सुख और दुःख दोनों मानव-जीवन के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध रहते हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में सन्तोष को जीवन में सुख का साधन मानने की भावना व्यक्त की गयी है। प्रेमचन्द के अनुसार सन्तोष से ही जीवन में सुख की प्राप्ति की जा सकती है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में इस दृष्टिकोण को अनेक स्थलों पर व्यक्त किया गया है—"सुख का मूल सन्तोष है। एक आदमी जल और स्थल के सारे रत्न पाकर गरीब रह सकता है, दूसरा फटे वस्त्रों और सूखी रोटियों में भी धनी हो सकता है।"[10]

"अगर सन्तोष मूर्खता है तो ससार के नीति-ग्रन्थ, उपनिषदों से लेकर कुरान तक मूर्खता के ढेर हो जायेंगे। सन्तोष से अधिक और किसी तप की महिमा नहीं गाई गयी है।"[11] यहां पर स्पष्ट है कि प्रेमचन्द के अनुसार सन्तोष से ही सुख की प्राप्ति की जा सकती है। प्रेमचन्द ने भोग-विलास के द्वारा सुख की उपलब्धि दुर्लभ मानी है। इसी से उन्होंने लिखा है कि—"सुख सन्तोष से प्राप्त होता है, विलास से सुख कभी नहीं मिल सकता।"[12]

प्रेमचन्द के उपन्यासों में जीवन में दुःख को भी अनिवार्य माना गया है। प्रेमचन्द ने समाज में रहकर मानव-जीवन में दुःख की अनिवार्यता को स्वीकारा है। उनका यह दृष्टिकोण इस कथन से स्पष्ट होता है: "जब तक वैरागी न होंगे दुःख से नहीं बच सकते।"[13]

शरतचन्द्र ने भी अपने उपन्यासों में मानव-जीवन के सुख-दुःख पर विस्तार से विचार किया है। शरतचन्द्र जीवन में सुख के बहुत बड़े समर्थक प्रतीत होते हैं। इसी

[illegible] जीवन परिपूर्ण रहता है।"

सुख और दुःख के अनेक पहलुओं पर शरतचन्द्र ने उपन्यासों में कई स्थानों पर विचार व्यक्त किये गये हैं। जिनसे यह प्रतीत होता है कि शरतचन्द्र यह भी नहीं मानते कि सुख की प्राप्ति के लिए दुःख का भोगना अनिवार्य है तथा बिना दुःख के सुख की प्राप्ति सम्भव नहीं। शरतचन्द्र ने इस तर्क की सारहीनता का उद्घाटन किया है — 'सुख प्राप्त करने के लिए दुःख प्राप्त करना चाहिये यह बात सत्य है, किन्तु इसलिए यह स्वतः सिद्ध नहीं हो जाता कि जिस तरह हो बहुत सा दुःख भोग लेने से ही सुख हमारे कन्धों पर आ बैठेगा। यह इहलोक में भी सत्य नहीं है और परलोक में भी नहीं।"

दुःख को स्वीकारात्मक न करने के कारण शरतचन्द्र के उपन्यासों में दुःख को भी सुख की भांति भोगने पर विश्वास व्यक्त किया गया है। इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए शरतचन्द्र ने लिखा है कि "स्वेच्छा से ग्रहण किये हुए दुःख को ऐश्वर्य के समान भोगा जा सकता है।" इस मत का समर्थन शरतचन्द्र ने एक अन्य स्थल पर भी किया है "दुःख जिसे कहते हैं वह न तो अभाव रूप ही है और न शून्य रूप। भयहीन जो दुःख है उसका उपभोग सुख की तरह किया जा सकता है।" यहां यह भी उल्लेखनीय है कि शरतचन्द्र जीवन में किसी कारण भी सदैव दुःख भोगते रहने का समर्थन नहीं करते क्योंकि शरतचन्द्र दुःख को जीवन में नकारात्मक रूप में देखते हैं। इसी से उन्होंने कहा भी है—"हमेशा दुःख भोगते चलना ही तो जीवन-धारण का उद्देश्य नहीं है।"

शरतचन्द्र दुःख और सुख को मानव की नितान्त भिन्न वृत्तियां मानते हैं जो एक दूसरे को प्रभावित नहीं करतीं। 'कमल' (शेषप्रश्न) के माध्यम से शरतचन्द्र ने इस दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है—"मैं मानना चाहती हूँ कि जब जितना पाऊं उसी को सच्चा समझ कर मान सकूं। दुःख का दाह मेरे बीते हुए सुख की ओस की बूंदों [illegible] एक दिन का आनन्द दूसरे दिन के निरानन्द के आगे शरमाये [illegible] दुःख भावात्मक है उसका व्यक्त रूप है शोक।

शोक और शोक से उत्पन्न परिस्थितियों के जो चित्रण दोनों लेखकों

किया गया है। प्रेमचन्द में धर्म रूढ़िवादिता के रूप में उपस्थित होकर जीवन में शोक का कारण बनकर आया है जब कि शरतचन्द्र ने संस्कार के माध्यम से धर्मबुद्धि को ही प्रस्तुत किया है। 'श्रीकांत' में 'राजलक्ष्मी' इस बात को कभी नहीं भूलती कि वह एक हिन्दू विधवा है। वस्तुतः राजलक्ष्मी के जीवन की करुणा का मूल इस संस्कार में ही निहित है। यद्यपि 'राजलक्ष्मी' का विवाह 'श्रीकांत' के साथ बचपन में ही पाठशाला जाने के दिनों ही हो गया था किन्तु समाज की स्वीकृति तथा पंडितों के मंत्रोच्चारण के बिना 'राजलक्ष्मी' उसे कैसे स्वीकार करती। परिणामतः अपने हृदय की सबसे बड़ी आकांक्षा को दबाये हुए धर्म-व्रत तथा तीर्थाटन में जीवन व्यतीत कर देना चाहती है किन्तु श्रीकांत के सामने अपनी कमजोरी को उसने सदैव स्वीकार किया है जिसमें उसके जीवन की करुणा ही व्यक्त हुई है—"तीर्थयात्रा की थी पर भगवान् को नहीं देख पाई। उसके बदले केवल तुम्हारा लक्ष्यभ्रष्ट नीरस चेहरा ही दिन-रात दिखाई देता रहा।"[3] 'चरित्रहीन' में भी विधवा के संस्कार ने ही 'सावित्री' के जीवन को सदैव शोकाच्छन्न रखा है।

शरतचन्द्र के उपन्यासों में प्रायः संस्कारों और विचारों के द्वन्द्व को प्रस्तुत करके जीवन की करुणा को उद्घाटित किया गया है। एक ओर युगों से अर्जित व्यक्ति के संस्कार हैं और दूसरी ओर व्यक्ति की अनुभूति जो संस्कारों से मेल नहीं खाती। शरतचन्द्र के उपन्यासों में इस बात को प्रायः देखा जा सकता है।

'ग्रामीण समाज' की विधवा 'रमा' के जीवन की करुणा का प्रमुख कारण संस्कार ही है। वह 'रमेश' का वरण कर सकती थी किन्तु जाति और कुल की मर्यादा ने उसे ऐसा करने से रोका है। 'पंडित जी' की 'कुसुम' में भी यही बात है। 'षोडशी' (देना पावना) में नारी-हृदय के अन्दर दो विरोधी शक्तियों के द्वन्द्व को अंकित करके उसके जीवन की करुणा को व्यक्त किया गया है। 'षोडशी' में भौतिक संसार की ओर उन्मुख नारी-हृदय की अशान्ति और संन्यासिनी के वैराग्य के संघर्ष का प्रकट चित्र है। 'देवदास' के अन्तर्गत जीवन की करुणा क्षणिक अभिमान पर केन्द्रित हुई है। 'देवदास' ने एक अर्द्धरात्रि के निर्जन में 'पार्वती' की बात के उत्तर में कहा है—"पार्वती क्या मैं माता-पिता की आज्ञा से बाहर हो जाऊँ ?"[1] जिसके जवाब में अवसर आने पर 'पार्वती' ने भी 'देवदास' से स्पष्ट कहा है—"तुम्हारे माता-पिता हैं और मेरे नहीं हैं ? उनके राजी होने या न होने की जरूरत नहीं।"[2] परिणामस्वरूप देवदास का सम्पूर्ण जीवन लक्ष्यभ्रष्ट हो गया और अंत में वह आत्मघातक मृत्यु का शिकार हुआ तथा 'पार्वती' का जीवन निष्फल आत्मपीड़न में व्यतीत हुआ।

और शरतचन्द्र के उपन्यासों में जीवन में शोक और शोक से उत्पन्न विवेचन अभी तक किया गया है उसमें दोनों उपन्यासकारों के

बीच एक महत्त्वपूर्ण अन्तर स्पष्ट हो जाता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में जीवन में शोक की परिस्थितियाँ उत्पन्न होने पर प्राय उसकी परिसमाप्ति मृत्यु में हुई है। उदाहरण के लिए 'होरी' (गोदान), 'विनय', 'सोफिया' (रगभूमि) तथा 'निर्मला' (निर्मला) को प्रस्तुत किया जा सकता है और जहा मृत्यु नही हुई है वहाँ निदान ईश्वर जीवन को व्यर्थ होने से बचा लिया गया है जैसे 'सुमन' (सेवासदन), 'रमानाथ' (गबन), 'सकीना' (कर्मभूमि) मे। शरतचन्द्र ने जीवन की व्यर्थता और विफलता दिखाते हुए शोक की स्थितियो को उभारा है। शोक की स्थितियो की परिसमाप्ति मृत्यु में न करके उसके द्वद्व मे जीवन का क्षय प्रदर्शित करना शरतचन्द्र की विशेषता है जैसा कि 'राजलक्ष्मी', 'सावित्री', 'अचला' (गृहदाह) और 'रमा' मे दिखाई पडता है। कही-कही आत्मघाती मृत्यु में भी जीवन की वेदना को समाप्त किया गया है जैसे 'देवदास' मे; किन्तु ऐसा बहुत कम हुआ है।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यास जीवन मे प्रेम के महत्त्व को प्रस्थापित करते है तथा प्रेम की अनुभूति को विभिन्न पात्रो तथा प्रसगो मे व्यक्त किया गया है।

प्रेम मानव-जीवन की सबसे अधिक आल्हादपूर्ण तथा महत्त्वपूर्ण कोमल अनुभूति है। प्रेम के द्वारा मनुष्य सुख और आनद की अनुभूति करता है तथा जीवन मे उन्नति के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है। प्रेम की कोमलता का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है—"वसत के समीर और ग्रीष्म की लू मे कितना अन्तर है। एक सुखद है और प्राण-पोषक, दूसरी अग्निमय और विनाशिनी। प्रेम वसन्त समीर है, द्वेष ग्रीष्म की लू। जिस पुष्प को वसन्त समीर महीनो मे खिलाती है उसे लू का एक झोका जला कर राख कर देता है।"[१४]

शरतचन्द्र के उपन्यासो मे प्रेम को जीवन मे अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। प्रेम के महत्व का वर्णन करते हुए शरतचन्द्र ने लिखा है—"प्रेम की तो कोई जाति नही, कर्म नही, विचार-विवेक और भलाई-बुराई का उसे ज्ञान नही। जो इस तरह मर सकता है वह तो समाज के हाथ के बनाये सब कायदे-कानूनो से बहुत ऊपर है, यह सब विधि-निषेध उसे स्पर्श भी नही कर सकते।"[१५]

शरतचन्द्र और प्रेमचन्द ने प्रेम को जीवन मे उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित किया है। प्रेमचन्द ने तो प्रेम को ईश्वरीय प्रेरणा माना है—"प्रेम ईश्वर की प्रेरणा है, उसको स्वीकार करना पाप नही, उसका अनादर करना पाप है।" * प्रेम उच्च भावनाओ से परिपूर्ण होता है। इस ओर दोनो उपन्यासकारो ने सकेत किया है। प्रेमचन्द के अनुसार प्रेम—"क्षमा, अनन्त उदारता, अनन्त धैर्य से परिपूर्ण होता है।"[१६]

शरतचन्द्र ने भी प्रेम के महत्त्व को बताते हुए प्रेम मे असीमित शक्ति का प्रतिपादन किया है। 'दैपप्रश्न' मे 'आशु' और 'कमल' की इस वार्तालाप मे यह बात

स्वीकार होती है—"प्रेम कर नहीं कर सकता ? रूप, यौवन, सम्मान-सम्पदा—यह सब कुछ नहीं होती, क्षमा ही उसकी वास्तविक आत्मा है । जहाँ क्षमा नहीं वहाँ प्रेम निरं- [illegible] है, वहाँ पर मान-अभिमान का विचार-वितर्क उठता है और वहीं पर आता है [illegible]—[illegible] बार ।"[9]

प्रेमचन्द ने प्रेम की पवित्रता को स्वीकार किया है । प्रेमचन्द का विचार है कि —"प्रेम का नाता संसार के सभी सम्बन्धों से पवित्र और श्रेष्ठ है ।"[10] शरतचन्द्र ने पवित्र प्रेम की उज्ज्वलता और महानता का वर्णन करते हुए लिखा है—"प्रेम की पवित्रता का इतिहास ही मनुष्य की सभ्यता का इतिहास है, उसका जीवन है । यही उसके महान होने का धारावाहिक वर्णन है ।"[11] एक अन्य स्थान पर शरतचन्द्र ने पवित्र प्रेम को स्वर्गिक तत्व माना है—"मैं किसी समय यह नहीं मान सकती कि पवित्र प्रेम स्वर्गिक नहीं है ।"[12]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनो उपन्यासकारो ने प्रेम मे अतृप्ति का सकेत किया है । दोनो कथाकारो का विचार है कि प्रेम मे तृप्ति सम्भव ही नही । प्रेमचन्द ने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए लिखा है—"प्रेम वह प्याला नही है जिसमे आदमी छक जाए, उसकी तृष्णा सदैव बनी रहती है ।"[13] शरतचन्द्र के अधिकाश पात्र प्रेम मे अतृप्ति की घोषणा करते है । 'अचला' (गृहदाह), 'देवदास', 'पार्वती' (देवदास), 'किरणमयी' (चरित्रहीन) आदि पात्रो मे शरतचन्द्र के इस दृष्टिकोण को देखा जा सकता है ।

प्रेमचन्द, प्रेम मे उत्सर्ग हो जाने की भावना के समर्थक है । इस कारण प्रेमचन्द के उपन्यासो मे प्रेम उन्नयन की ओर उन्मुख अंकित हुआ है । प्रेमचन्द सयम और मर्यादा के प्रबल समर्थक है । प्रेमचन्द के पात्र प्रेम मे उत्साह तो प्रदर्शित करते हैं किंतु उन्माद की अवस्था तक नही पहुँच पाते । प्रेमचन्द सम्भवत इसे ठीक नही समझते ।

शरतचन्द्र भी प्रेम मे मर्यादा के समर्थक हैं । अपने दृष्टिकोण को अपने एक पात्र मे शरतचन्द्र ने स्पष्ट करते हुए लिखा है—"समाज मे जिसे गौरव प्रदान नही किया जा सकता उसे केवल प्रेम के द्वारा सुखी नही किया जा सकता । मर्यादाहीन प्रेम का भार शिथिल होते ही दुस्सह हो जाता है ।"[14] प्रेम मे शरतचन्द्र मर्यादा और सयम के समर्थक अवश्य हैं किंतु उनके अनुसार सयम और मर्यादा शब्दो को बडा कहकर अति-रंजित कर डाला गया है । अत शरतचन्द्र वास्तविकता के पक्षपाती हैं तथा हृदय की सुमधुर भावना का समर्थन ही उनकी कृतियो से हुआ है । इसी से शरतचन्द्र का विचार है कि "स्नेह की गहराई समय की स्वल्पता से हरगिज नही नापी जा सकती ।"[15] तथा प्रेम मे यदि किसी कारण किसी समय अन्तर भी पड जाय तो उसमे परिवर्तन किया जा सकता है—"एक दिन जिससे प्रेम किया है फिर किसी दिन किसी भी कारण उसमें किसी परिवर्तन का अवकाश नही हो सकता, मन का यह अचल अडिग धर्म न तो

स्वच्छ है और न सुन्दर ही ।"[11]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के दृष्टिकोणों के अन्तर को भी यहाँ देखा जा सकता है। प्रेमचन्द प्रेम को परिवर्तनशील नहीं मानते किन्तु शरतचन्द्र ने प्रेम की भावना में परिवर्तन करने का भी समर्थन किया है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द, शरतचन्द्र की अपेक्षा रूढ़िवादी हैं। प्रेमचन्द प्रेम की भावनाओं को नियन्त्रण में रखते हैं जिससे प्रेम में असाधारण गम्भीरता उत्पन्न होती है। शरतचन्द्र ने प्रेम में किसी बन्धन को स्वीकार नहीं किया है। इस प्रकार शरतचन्द्र न परिवर्तित हो सकने वाले गुण, प्रेम की ओर संकेत किया है।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने वासना-जन्य प्रेम का समर्थन नहीं किया है। वासना-जन्य प्रेम को दोनों उपन्यासकारों ने हेय दृष्टि से देखा है। प्रेमचन्द ने अपने दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति 'देवप्रिया' (कायाकल्प) के माध्यम से की है। वासना की प्रधानता होने के कारण ही 'देवप्रिया' जीवन में कभी सुख न प्राप्त कर सकी। शरतचन्द्र ने भी 'किरणमयी' (चरित्रहीन) और 'सुरेश' (गृहदाह) के द्वारा वासना की सारहीनता को प्रदर्शित किया है। वस्तुतः प्रेम में वासना का होना अस्वाभाविक नहीं है। यह बात प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों ही [illegible] स्वीकार करते हैं किन्तु वे यह भी मानते हैं कि वासना या यौन जीवन के विकास के लिए होना चाहिए तथा उसकी परिसमाप्ति उसके स्वार्थ पर आधारित न होनी चाहिए।

मानव में प्रेम का अंकुर पल्लवित हो जाने पर उसे दबाया नहीं जा सकता। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने इसे स्पष्टतः स्वीकार किया है। प्रेमचन्द ने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए लिखा है—"प्रेम एक बीज है जो एक बार जम कर फिर बड़ी मुश्किल से उखड़ पाता है। कभी-कभी तो जल और प्रकाश और वायु बिना ही जीवन-पर्यन्त जीवित रहता है।"[12]

शरतचन्द्र के विचार से प्रेम मानव की समस्त चेष्टाओं और आयामों के मूल में विद्यमान है। सामाजिक मान्यताएँ तथा संस्कार उसकी मूल भावना को समाप्त नहीं कर सकते। यही कारण है कि शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों में मानव के प्रेम को विभिन्न परिस्थितियों में तथा विभिन्न रूपों में ढाल कर प्रस्तुत किया है तथा शरतचन्द्र ने प्रेम को प्रच्छन्न रूप से अभिव्यक्त न करके प्रेम की समस्त गरिमा और शुभ्रता के साथ अंकित किया है।

प्रेमचन्द की प्रेम सम्बधी धारणाओं से एक महत्त्वपूर्ण बात स्पष्ट होती है कि प्रेमचन्द का जीवन के प्रति दृष्टिकोण यथार्थवादी होते हुए भी वे प्रेम के सम्बंध में रूमानी और रूढ़िवादी हैं। 'सोफिया', 'सकीना' आदि के प्रेम-प्रसंग इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों में जीवन में सत्य के महत्त्व को.

अपने उपन्यासों में गहराई से अंकित किया है। इन उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में सत्य को जीवन में सर्वोपरि महत्त्व दिया है। सत्य के सम्बन्ध में प्रेमचन्द और शरतचन्द्र का दृष्टिकोण मानव के व्यावहारिक जीवन से अधिक सम्बन्धित है। यही कारण है कि इन उपन्यासकारों की कृतियों में जीवन में सत्य के नव्य दृष्टिकोण को उपस्थित किया गया है।

प्रेमचन्द ने मानव की परिस्थितियों के अनुरूप जीवन में सत्य की स्थापना की है। "होरी (गोदान) बांसों की बिक्री के सम्बन्ध में अपने भाइयों से छल-कपट रखकर कुछ अधिक रुपये ले लेना चाहता है। प्रेमचन्द के अनुसार 'होरी' के जीवन का यही सत्य है। 'सूरदास' (रंगभूमि), 'सुमन' (सेवासदन) आदि पात्रों में भी प्रेमचन्द ने इसी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया है। वस्तुतः मानव-जीवन के साथ सत्यता का अकृत्रिम सम्बंध स्थापित करने के लिए प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में सतत चेष्टावान है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेमचन्द ने जीवन की व्यावहारिकता में समृद्ध मानव के दिन-प्रति-दिन के सम्बन्धों से प्रस्फुटित होने वाले सत्य का समर्थन किया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द ने मानव प्रवृत्तियों में परिवर्तन के साथ-साथ सत्य के रूप में भी परिवर्तन की सम्भावना व्यक्त की है।

शरतचन्द्र भी परिवर्तित होने वाले गतिशील सत्य के समर्थक हैं। शरतचन्द्र के अनुसार एक दिन का सत्य सदैव के लिए सत्य नहीं हो सकता। इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए शरतचन्द्र ने लिखा है—"जगत के आदिम युग में एक दिन विराट् अस्थि, विराट् क्षुधा वाले एक विराट् जीव की सृष्टि हुई थी, उसी देह और क्षुधा से वह संसार को जय करता फिरा था और उस दिन वे थे उसके सत्य उपादान। किन्तु फिर एक दिन ऐसा आया कि उसी देह और क्षुधा ने उसकी मृत्यु ला दी। एक दिन के सत्य के उपादानों ने दूसरे दिन के मिथ्या उपादान बनकर उसे संसार से निश्चिह्न कर दिया—जरा भी दुविधा नहीं की।"[१६]

सत्य को गतिशील रूप में देखने के कारण ही शरतचन्द्र सत्य को शाश्वत और चिरन्तन मानने में संकोच करते हैं। 'सव्यसाची' (पथ के दावेदार) के द्वारा इस मत को अभिव्यक्त करते हुए शरतचन्द्र ने लिखा है—"तुम लोग कहते हो परम सत्य, चरम सत्य, और अर्थहीन निष्फल शब्द तुम लोगों के निकट बड़े मूल्यवान हैं। मूर्खों के बहलाने के लिए इतना बड़ा मन्त्र और कोई नहीं है। तुम सोचते हो कि झूठ को ही बताना होता है, सत्य शाश्वत, सनातन और अपौरुषेय है पर यह झूठ है, मिथ्या की तरह ही सनातन नहीं है, इसका जन्म है, मृत्यु है। मैं झूठ नहीं कहता। मैं प्रयोजन से सत्य की सृष्टि करता हूँ।"[१७] एक अन्य स्थल पर भी शरतचन्द्र ने इस दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है—"इस क्षणिक परिवर्तनशील संसार में सर्वोपरि सत्य नाम की कोई नित्य

अपने उपन्यासो मे प्रेमचन्द ने भाग्य की शक्ति को भी स्वीकार किया है। प्रेमचन्द के अनुसार मनुष्य विधाता के संकेत पर ही काम करता है—"मनुष्य विधाता के हाथो का खिलौना मात्र है। उसके सारे अनुमान, सारी बुद्धिमत्ता, सारी शुभ चिन्ताएँ नैसर्गिक शक्तियो के अधीन है।"[४६] इस दृष्टिकोण को एक अन्य स्थल पर भी अभिव्यक्त किया गया है—"यह सब मेरे प्रारब्ध की कूट-लीला है। मैं समझता था कि मैं स्वयं अपना विधाता हूँ। विद्वानो ने भी कहा है, पर आज मालूम हुआ कि मैं इसके हाथो का खिलौना हूँ।"[४७]

प्रेमचन्द के उपन्यासो मे विधाता की अज्ञात शक्ति को स्वीकार किया गया है तथा मानव के सभी कार्यों मे भाग्य का प्रमुख स्थान माना है—"ऐसा ज्ञात होता है कि कोई अदेख शक्ति मुझे खिला-खिला कर कुचल डालना चाहती है। मैं मछली की तरह् कांटे में फँसा हुआ हूँ। कांटा मेरे कण्ठ में चुभ गया है। कोई हाथ मुझे खीच लेता है, खिचा चला जाता हूँ। फिर जोर ढीली हो जाती है और मैं भागता हूँ। अब जान पडा कि मनुष्य विधि के हाथ का खिलौना है।"[४८]

शरतचन्द्र ने भी अपने उपन्यासो में भाग्य के महत्त्व को स्वीकार किया है। शरतचन्द्र का भाग्य-विषयक दृष्टिकोण उनके उपन्यासो में अनेक स्थलो मे व्यक्त हुआ है। 'अचला' अपने जीवन की विषम परिस्थितियों का कारण भाग्य ही समझती है—"जिस भाग्य-विधाता ने उसके यौवन के प्रथम आनन्द को असत्य से इस तरह विकृत करके और उसे इस तरह उपहास की वस्तु बना कर दुनिया के सामने उद्‌घाटित करने में रत्तीमात्र भी ममता नही की, उस निर्मम-निष्ठुर को उसने बचपन से ही भगवान के रूप में जानने-सोचने की शिक्षा पायी है वह शिक्षा बिलकुल ही व्यर्थ—बिलकुल ही निरर्थक हुई है।"[४९]

भाग्य अथवा नियति का संचालन ईश्वर के द्वारा होने के कारण मनुष्य अपने को सरलता से भाग्य पर ही छोड देता है। शरतचन्द्र ने 'कमल' के माध्यम से इस दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। 'कमल' को ईश्वर के प्रति गहरी आस्था नहीं है किन्तु 'कमल' ने भी भाग्य को स्वीकार करके अपने को ईश्वर पर छोड दिया है। इस प्रकार ईश्वरीय सत्ता की स्वीकारोक्ति भी 'कमल' द्वारा हुई है क्योंकि भाग्य तो बिना विधाता की धारणा के सम्भव नही तथा उसका कोई अर्थ और प्रयोजन नहीं। 'कमल' ऐसा ही दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है—"सोच रही थी कि मनुष्य शूद्र के साथ समझौता करके जीवन की कितनी सम्पदा नष्ट कर डालता है। मुझे अँग्रेजों के जाने में आजकल कितना असीम सन्तोष हो रहा था। मैं भी अगर उसी घर से पीछे हट आती तो मेरे भाग्य में ऐसा आनन्द थोडे ही बदा था।"[५०] 'शिवनाथ' भी अपनी जीवन-स्थिति का कारण भाग्य ही मानता है—"मगर जिसे किसी भी चीज से किसी

दन न बाँध सका उसी मेरे भाग्य में ही क्या भगवान ने अन्ततोगत्वा इतना बड़ा दुर्भाग्य लिख दिया है ?"[५]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की कथा-रचनाओं में 'जीवन के प्रत्येक पक्ष' ठीक उसी रह जुड़े हैं जिस तरह उनकी अन्विति जीवन में है। इसीलिए वे विश्वसनीयता के भ्रम' को सत्य के रूप में स्थापित करती हैं।

टिप्पणियाँ

१. साहित्य का उद्देश्य—प्रेमचन्द, पृ० ७४
२. दि नावल एण्ड दि पीपुल—राल्फ फॉक्स, पृ० ६२
३. दि स्ट्रक्चर आफ दि नावेल—एडविन म्योर, पृ० १०
४. कर्मभूमि, पृ० १४३
५. शेषप्रश्न, पृ० १२८
६. वही, १४१
७. श्रीकान्त (तृतीय पर्व), पृ० ६६
८. गोदान, पृ० ६६
९. शेषप्रश्न, पृ० १४०
१०. कायाकल्प, पृ० १३७
११. वही, पृ० १३७
१२. सेवासदन, पृ० ८४
१३. रंगभूमि, पृ० १००
१४. चरित्रहीन, पृ० १४२
१५. श्रीकान्त, (द्वितीय पर्व), पृ० १०१
१६. शेषप्रश्न, पृ० १६०
१७. श्रीकान्त (द्वितीय पर्व), पृ० ६१
१८. शेषप्रश्न, पृ० १४
१९. वही, पृ० ६१
२०. गोदान, पृ० १७२
२१. सेवासदन, पृ० ४१
२२. श्रीकान्त (तृतीय पर्व), पृ० १४१
२३. देवदास, पृ० ३१
२४. वही, पृ० ४१
२५. सेवासदन, पृ० ४५

२

सामाजिक चेतना : नये आदर्श और वर्ग-सघर्ष

साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। वह अपने युग की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियो से प्रभावित रहता है। परिणामस्वरूप उसकी कृतियो में युगीन परिस्थितियो की स्पष्ट छाप रहती है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र सजग कलाकार हैं। उनकी कृतियो मे उनके युग की परिस्थितियो का गहरा प्रभाव है। अत. प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के सामाजिक विचारो को समझने के लिए उनके युग की परिस्थितियो को जान लेना अत्यत आवश्यक है। साहित्यकार और उसके युग की परिस्थितियो के सम्बध मे प्रेमचन्द ने स्पष्टत कहा है — "साहित्यकार बहुधा अपने देश-काल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश मे उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असम्भव हो जाता है। और विशाल आत्मा अपने देशबन्धुओ के कष्टो से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता मे वह रो उठता है। पर उसके रुदन मे भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है।"[1]

सन् १८५७ ई० के विद्रोह के उपरान्त भारत मे ब्रिटिश शासन की स्थापना पूरी तरह से हो चुकी थी, किन्तु ब्रिटिश शासन की स्थापना से राष्ट्रीय भावनाओ और विचारो का अन्त नही हो गया था। राष्ट्रीय जागरण की प्रेरणा के परिणामस्वरूप १८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना हुई, जिसने भारतीयो को नवीन उत्साह प्रदान किया।

इसी समय रूस और जापान के युद्ध मे जापान की विजय एशियाई देशो के लिए एक महत्त्वपूर्ण घटना सिद्ध हुई। जापान की विजय ने यह सिद्ध कर दिया कि पश्चिम के विज्ञान से ... ाई देश भी योरप की भाति शक्तिशाली बन ... र भी गहरा प्रभाव पडा। भारतीयो में भी ... हुआ तथा अपनी प्रत्येक वस्तु को गर्व की दृष्टि

... निहास मे अपना महत्त्व-
... धार्मिक सुधारो की पृष्ठभूमि
... १९०५ के बग-भग आन्दोलन

सामना विश्व के अधिकांश राष्ट्रों को करना पड़ा। यह आर्थिक संकट १६१४ के महा-युद्ध के रूप में परिणत हुआ। भारत भी पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था से प्रभावित हुआ, जिसके परिणामस्वरूप देश में आर्थिक वैषम्य अधिक स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगा। उच्च वर्ग ने युद्धकाल के मध्य अपनी अर्जित पूँजी को बढ़ाने के लिए औद्योगिक क्षेत्रों को चुना। परिणामतः एक ओर औद्योगिक विकास तो हुआ, किन्तु आर्थिक विषमता-जन्य अशान्ति के लक्षण भी स्पष्ट दिखाई देने लगे।*

शताब्दियों की राजनीतिक परतन्त्रता ने भारत के सामाजिक जीवन को अत्यंत विषाक्त बना डाला। भारतीय समाज अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक अन्धविश्वासों में जकड़ चुका था, किन्तु अंग्रेजों के सम्पर्क और उनकी संस्कृति ने भारतीय समाज को बिना प्रभावित किये नहीं छोड़ा। परिणामस्वरूप भारत के शिक्षित व्यक्ति पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित हुए। इस दृष्टि से राजाराममोहन राय का नाम विशेष उल्लेखनीय है। राजाराममोहन राय ने तत्कालीन बंगाली समाज की परि-स्थितियों तथा उसके दोषों का अनुभव कर एक व्यापक सामाजिक आन्दोलन उत्पन्न किया, जो केवल बंगाल तक सीमित न रह कर सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गया। राजा-राममोहन राय ने भारतीय समाज की संकीर्णताओं को दूर करने का अथक प्रयास किया। उन्होंने यह अनुभव किया कि भारतीय आचार-विचारों में परिवर्तन की आवश्यकता है। सन् १८२८ में राजाराममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना की जिसका उद्देश्य बाल-विवाह, बहु-विवाह, सती-प्रथा, मूर्तिपूजा तथा जाति-पाँति का विरोध करना था।[६] साथ ही हिन्दू-पारिवारिक जीवन में युग के अनुसार परिवर्तन तथा शिक्षा का प्रबल समर्थन भी राजाराममोहन राय ने किया।[७]

राजाराममोहन राय के उपरान्त केशवचन्द्र सेन ने ब्रह्म समाज का संचालन [अ]पने हाथों में लिया, किन्तु केशवचन्द्र सेन पाश्चात्य संस्कृति और ईसाई धर्म से अधिक [प्र]भावित थे, परिणामस्वरूप केशवचन्द्र सेन के समय में ईसाई प्रभाव अधिक गहरा हो [ग]या। भारतीय समाज को सुधारने के लिए आर्य समाज ने भी महत्त्वपूर्ण योग-दान [दि]या।[८] स्वामी दयानन्द ने अनेक प्रचलित सामाजिक मान्यताओं, सामाजिक कुरीतियों [त]था अन्धविश्वासों का विरोध किया, किन्तु स्वामी दयानन्द की वेदों पर गहन आस्था [हो]ने के कारण आर्य समाज का दृष्टिकोण पुनरावर्तनवादी ही रहा, जिससे बीसवीं सदी [मे]ं उसकी सुधार-सम्बन्धी मान्यताएं दब-सी गयीं।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही भारत में एक क्रान्तिकारी झुकाव पैदा हो गया था। विगत सदी के समाज-सुधारकों ने भारतीय समाज को नये प्रकाश में गतिमय कर देने का जो [illegible] दे सके। गांधी जी ने प्रथम बार [illegible] ान किया। वस्तुत

रचना-दृष्टि के अन्तर को ध्वनित करती है।

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही भारत योरप के नव जागरण से प्रभावित हो चुका था। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के पूर्व भी भारत विदेशी संस्कृतियों के सम्पर्क में आया, किंतु उन्नीसवीं सदी के भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति का सम्पर्क अतीत के अन्य सभी विदेशी सम्पर्कों की तुलना में अद्वितीय और क्रांतिकारी था। पाश्चात्य प्रभाव से भारतीय समाज में अनेक आधारभूत परिवर्तन हुए। प्राचीन सामाजिक मान्यताओं के प्रति भारतीयों का दृष्टिकोण परिवर्तित होने लगा। परिणामस्वरूप आचार-विचार, शिष्टाचार तथा जीवन के रहन-सहन के स्तर में भी परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन भारतीय समाज के परम्परागत रूप से नितान्त भिन्न था। विदेशियों के प्रभाव से भारतीय समाज में कुछ कुरीतियां और विकृतियां भी उत्पन्न हुईं। प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र ने पाश्चात्य मान्यताओं के अंधानुकरण तथा पाश्चात्य सामाजिक मान्यताओं की सतही स्वीकारोक्ति का अपने उपन्यासों में विरोध किया है।

सामाजिक जीवन के बदलते हुए मूल्यों के प्रति प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र की दृष्टि सहानुभूतिपूर्ण है। इन उपन्यासकारों में प्राचीनता के प्रति मोह भी नहीं है और नयी मान्यताओं का दुराग्रह भी नहीं है। वस्तुतः नयी मान्यताएं इतनी प्रबल और समयानुकूल नहीं थीं कि उन्हें ग्रहण किया जा सकता। साथ ही प्राचीन सामाजिक मान्यताओं में अनेक दोष उत्पन्न हो चुके थे। प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र ने समाज की स्वस्थ और सबल मान्यताओं का समर्थन एक स्वर से किया है। इसी से योरपीय समाज की सतही मान्यताओं का विरोध इनके उपन्यासों में हुआ। पश्चिम का सब कुछ अच्छा ही है इसे न तो प्रेमचन्द मानते हैं और न शरत्चन्द्र ही स्वीकार करते हैं।

योरपीय समाज और भारतीय समाज में एक मौलिक अन्तर है। विज्ञान की उन्नति के कारण योरपीय समाज में भौतिक वस्तुओं के प्रति विशेष अनुराग है, तथापि योरप वालों का जीवन प्रकृति से दूर यन्त्रचालित सा हो गया है। भारतीय समाज का लक्ष्य समाज के सामान्य उपकरणों के आधार पर जीवन बिताना रहा है। अब भारतीय समाज में आदर्श और आचरण की परिभाषा पर जोर दिया गया है। योरप के प्रभाव से भारतीय समाज में भौतिकता के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ है। परिणामतः भारतीय समाज पश्चिमी मान्यताओं की ओर उन्मुख होने लगा। प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र ने अपनी कृतियों में ऐसे योरपीय प्रभाव का विरोध किया है। 'गोदान' में प्रेमचन्द ने [illegible] के द्वारा भौतिकता के आकर्षण तथा [illegible] के पूर्ण [illegible] का [illegible] किया है। [illegible] 'गोदान' के एक [illegible] पर प्रेमचन्द ने लिखा है—[illegible] के प्रति [illegible] है [illegible]

वर्ग को निम्न स्थिति में पहुँचा दिया। गांधी के सामाजिक आन्दोलन के मूल में इन्हीं अछूतों को प्रतिष्ठा दिलाने का प्रयास था। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में गांधी के अछूत सम्बन्धी विचारों को साकार किया है। 'कर्मभूमि' उसी दृष्टिकोण पर आधारित रचना है। हिन्दू समाज ने अछूतों को सामाजिक उत्सवों में भाग लेने तथा मन्दिर आदि में प्रवेश करने का भी निषेध कर दिया। परिणामतः अछूतों का सामाजिक स्तर बहुत गिर गया। 'कर्मभूमि' में प्रेमचन्द ने अछूतों की सामाजिक समस्याओं को उठाया है। अछूतों की सामाजिक स्थिति का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है—"क्या तुम ईश्वर के घर से गुलामी करने का बीड़ा लेकर आये हो? तुम तन-मन से दूसरों की सेवा करते हो, पर तुम गुलाम हो। तुम्हारा समाज में कोई स्थान नहीं है। तुम समाज की बुनियाद हो। तुम्हारे ऊपर ही समाज खड़ा है। पर तुम अछूत हो। तुम मन्दिरों में नहीं जा सकते। ऐसी अनीति इस अभागे देश के सिवा और कहाँ हो सकती है? क्या तुम सदैव इस भाँति दलित और पतित बने रहना चाहते हो।"[1]

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में जन्म के आधार पर ऊँच-नीच की भावना का खण्डन किया है। अछूतों के विचारों में जिस हीन भावना का प्रादुर्भाव हुआ है उसका बहुत कुछ कारण हिन्दू-संस्थाओं का गठन है। हिन्दू समाज में गुण-कर्म को प्रधानता न देकर जन्म को प्रधानता दी गयी। 'कर्मभूमि' में अछूतों के मन्दिर-प्रवेश की समस्या को प्रेमचन्द ने व्यावहारिक रूप देकर हल किया है। अस्पृश्यता के अतिरिक्त अछूतों के सामाजिक उत्थान और विकास पर भी प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' में विचार किया है। ढोर मारने वाले चमारों के गाँव में पहुँच कर 'अमरकांत' उनमें जागृति उत्पन्न करता है, मांस खाने के प्रति घृणा का भाव पैदा करता है तथा उनको सामाजिक आन्दोलन के स्तर तक उठाकर राष्ट्रीय जीवन का परिचय भी उन्हें कराता है। इस प्रकार प्रेमचन्द ने अछूतोद्धार और अछूतों की सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में ठोस विचार प्रस्तुत किये हैं।

शरतचन्द्र के उपन्यासों में अछूतोद्धार सामाजिक समस्या के रूप में नहीं प्रस्तुत हुआ है। शरतचन्द्र का दृष्टिकोण प्रेमचन्द की अपेक्षा भिन्न रूप में उपस्थित होता है। सामाजिक कुरीतियों और सामाजिक स्थितियों को लेकर प्रेमचन्द की दृष्टि निखरी हुई और सीधी है। इसी से सामाजिक कुरीतियों का चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यासों में अधिक स्पष्ट रूप से हुआ है। शरतचन्द्र सामाजिक कुरीतियों को समस्या के रूप में प्रस्तुत नहीं करते। शरतचन्द्र अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से एक कहानी प्रस्तुत करते हैं और उसी के मध्य समाज के अनेकानेक दोषों की ओर संकेत करते हैं, जिससे सामाजिक कुरीतियाँ स्वतः अनावृत हो जाती हैं।

यौन-सम्बन्ध की कल्पना कर बैठते हैं। 'निर्मला' जीवन भर अपने पति की निर्मूल धारणा को असत्य सिद्ध करने के लिए प्रयास करती रही, किन्तु निरर्थक। अन्ततोगत्वा घुट-घुटकर उसे अपने जीवन की बलि देनी ही पडी। यहाँ यह भी विचार करने योग्य है कि 'निर्मला' के करुण अवसान का उत्तरदायित्व उस समाज पर है जिसमें धन व्यक्ति के जीवन की कसौटी समझा गया। 'सेवासदन' और 'वरदान' मे भी इन्ही समस्याओं को उठाया गया है और भिन्न-भिन्न रूपो द्वारा व्यक्ति की करुणा को व्यंजित किया गया है।

शरतचन्द्र ने 'देवदास' में 'पार्वती' के माध्यम से अनमेल विवाह के कुपरिणामों की ओर संकेत किया है। यद्यपि 'देवदास' की प्रमुख समस्या अनमेल विवाह नही है, किन्तु 'पार्वती' के दुःख और अभाव को उचित वर के साथ उसका वैवाहिक सम्बन्ध करके दूर किया जा सकता था। धन के अभाव मे ऐसा नही किया जा सका। परिणामस्वरूप 'पार्वती' को अपनी अवस्था से अधिक लडकी की माँ बनने का भी दुर्भाग्य प्राप्त हुआ।

अनमेल विवाह का मूल कारण समाज मे प्रचलित दहेज की प्रथा है। 'सेवासदन', 'वरदान', 'गोदान', और 'गबन' में प्रेमचन्द ने दहेज की विकृतियों का चित्रण किया है। 'सुमन' (सेवासदन) का विवाह दहेज के अभाव मे ही उचित वर के साथ न हो सका। प्रेमचन्द ने विवाह के समय होने वाली दलाली की ओर अपने उपन्यासो मे संकेत किया है –"वर की खोज मे दौडने लगे। कई जगह से टिप्पणियाँ मँगाई। वह शिक्षित परिवार चाहते थे। वह समझते थे ऐसे घरो मे लेन-देन की चर्चा होगी। पर उन्हे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वरो का मूल्य उनकी शिक्षा के अनुसार है। राशि-वर्ण के ठीक हो जाने पर भी जब लेन-देन की बाते होने लगती तो कृष्णचन्द्र की आँखों के सामने अँधेरा हो जाता, कोई चार हजार तो कोई पाँच हजार तो कोई इससे भी आगे बढ जाता।"[१०]

शरतचन्द्र ने भी इस प्रकार की सामाजिक कुरीतियों की ओर स्पष्ट संकेत किये हैं। एक स्थल पर लिखा है—"लडकी की माँ ने अपने सारे घर वालो के हाथ-पैर जोडे, पर आप अपने बी० ए० पास लडके का मूल्य ढाई हजार से एक पैसा भी कम करने को राजी नही हुए। लडकी का बाप चालिस रुपये महीने की नौकरी करता है। चालीस पैसे देने की भी उसमे शक्ति नही तब आपने यह भी नही सोचा कि आपके लडके को खरीदने के लिए अचानक उसके पास इतना रुपया कहाँ से आ गया? कुछ भी हो लडके बेचने के रुपये बहुत लोग लेते हैं। आप भी लें तो इसमें बुराई नहीं। पर इसके बाद गाँव वालो को अपने मकान मे बुलाकर और घमण्ड न कीजियेगा।"[११]

विवाह जैसे पवित्र कार्य को अत्यन्त बाजारू ढंग से अपनाये जाने पर शरतचन्द्र

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के संघर्षों, विरोधों तथा विषमताओं का चित्रण किया गया है।

व्यक्ति और समाज के सम्बधों को लेकर प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की पहुँच में अन्तर है। प्रेमचन्द ने मनुष्य के बाह्यगत सामाजिक सम्बधों को लेकर समाज और व्यक्ति पर विचार किया है तथा उसके संघर्ष को चित्रित किया है। किन्तु शरतचन्द्र ने व्यक्ति के आन्तरिक जीवन से सम्बधित भावनाओं को प्रधानता दी है तथा उससे उत्पन्न सामाजिक विरोधों का चित्रण किया है। इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों में व्यक्ति समाज में अन्तर्निहित है जिसमें व्यक्तिगत समस्याओं की अपेक्षा वह अपने वर्ग के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। 'होरी' 'गोदान' का एक पात्र है। 'होरी' में व्यक्ति और समाज का संघर्ष नहीं है, वरन् 'होरी' के साथ समाज का जो संघर्ष है वह उसके वर्ग का है। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'गोदान' किसी एक व्यक्ति की अपेक्षा समाज का व्यापक चित्र है और ऐसा समाज जिसमें व्यक्ति अपने को समाज के विरुद्ध नहीं पाता बल्कि वह स्वयं अनुभव करता है कि समाज की परिस्थितियों ने उसे संघर्ष में डाल दिया है। वह अपने समाज का अंग है—इसे 'होरी' कभी भी नहीं भूलता। यहाँ यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने व्यक्ति और समाज के द्वंद्व को चित्रित न करके वर्ग-संघर्ष को चित्रित किया है। इस प्रकार समाज की युग-प्रसूत परिस्थितियों को प्रेमचन्द के उपन्यास व्यापक स्तर पर लेकर चले हैं तथा सामाजिक समस्याओं की मीमांसा भी प्रेमचन्द के उपन्यासों में गहरी हुई है।

शरतचन्द्र के उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के बीच खोये हुए सन्तुलन तथा उससे उत्पन्न सामाजिक परिस्थितियों की विवेचना हुई है। इस सम्बन्ध में डा० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त का मत उल्लेखनीय है — 'समाज के जटिल प्रश्न ही अगर उनकी दृष्टि में मुख्य होते, वह अगर पुलिस कोर्ट के विचार, सूदखोर के अत्याचार और श्रमिकों आदि की हड़ताल के विषयों के निरूपण में लगे रहते तो फिर [illegible] नाना [illegible] के द्वंद्व के बीच नर-नारी के हृदय का माधुर्य लुप्त हो जाता। उनके साहित्य में वर्तमान युग की विशेष छाप नहीं है। उन्होंने केवल [illegible] से चली आ रही सामाजिक नीति के पहलू से ही समाज का निरीक्षण किया है।'"

शरतचन्द्र ने व्यक्ति के अधिकार का समर्थन किया है—"जीवन यात्रा में मनुष्य का राह चलने का अधिकार कितना व्यापक है—इस सम्पूर्ण सत्य को ही मानव की भूल कहा गया है।"" समाज ने मनुष्य को इस [illegible] का [illegible] रूप [illegible] है। शरतचन्द्र ने व्यक्ति और समाज के सम्बधों पर इसी दृष्टिकोण से विचार किया है। समाज अनेक प्रकार की [illegible] से बना रहता है। वह उन्हीं के अनुसार वह अपना काम करता है। किन्तु व्यक्ति का अपना [illegible] [illegible] के अनुसार

का हृदय व्यथित हो उठा। अन्य एक स्थल पर लड़कियों के दुर्भाग्य का संकेत करते हुए लिखा है—"कैसा दुर्भाग्य लेकर यह हमारे घरों में पैदा होती है।"[११] इतना ही नहीं सामाजिक स्थिति का और भी विचलतापूर्ण चित्र शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों में अंकित किया है—"सुना है कि ठीक यही बात उनकी माँ भी कह रही है—'वह अभागिन हम सब को खाने के बाद जायेगी। इसकी ऐसी तकदीर है कि समुद्र पर दृष्टि डाले तो समुद्र तक सूख जाय और जली हुई सोंठ मछली भी पानी में भाग जाय। इसका ऐसा हाल न होगा तो किस का होगा।'"[१२]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों ही उपन्यासकारों ने सामाजिक कुरीतियों पर अपनी दृष्टि रखी है और समाज की अनेक समस्याओं के बीच उन्हें प्रस्तुत किया है। फलतः उनके उपन्यासों में विधवा, दहेज, अनमेल विवाह आदि पर जो विचार व्यक्त किये गये हैं वे विचारणीय हैं। यहाँ प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की दृष्टि में एक अन्तर स्पष्टत. लक्षित होता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में समाज की किसी समस्या पर नियोजित प्रकाश डाला गया है, किसी न किसी समस्या को उठाया गया है तथा उसके किसी न किसी हल को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। शरतचन्द्र अपने उपन्यासों में सामाजिक कुरीतियों को अनावृत तो करते हैं किंतु उन्हे समस्या के रूप में नहीं प्रस्तुत करते। शरतचन्द्र अपने उपन्यासों मे एक ऐसा सामाजिक वातावरण उपस्थित करते हैं जिससे उनके पात्र सामाजिक तत्त्वों से टकराते हैं। परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की सामाजिक विषमतियां तथा संकीर्णतायें स्वत. प्रकाश में आ जाती हैं। यही कारण है कि शरतचन्द्र के उपन्यासो मे समस्याओ के हल ढूढने का प्रयास नही किया गया है। वस्तुत शरतचन्द्र व्यक्ति के शिल्पी हैं, समाज उनकी दृष्टि में गौण है। जबकि प्रेमचन्द समाज के बहिरंग पर अपनी दृष्टि जमाते हैं।

का हृदय कंपित हो उठा। अत एक स्थल पर लड़कियों के दुर्भाग्य का संकेत क
हुए लिखा है—"कैसा दुर्भाग्य लेकर यह हमारे घरों में पैदा होती है।"[१९] इतना
नहीं सामाजिक स्थिति का और भी विषमतापूर्ण चित्र शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों
अंकित किया है—"सुना है कि ठीक यही बात उनकी माँ भी कह रही है—'यह अभ
गिन हम सब को खाने के बाद जायेगी। इसकी ऐसी तकदीर है कि समुद्र पर दृ
डालें तो समुद्र तक सूख जाय और जली हुई सौंर मछली भी पानी में भाग जाय
इसका ऐसा हाल न होगा तो किस का होगा।'"[२०]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों ही उपन्यासकारों ने सामाजिक कुरीतियों प
अपनी दृष्टि रखी है और समाज की अनेक समस्याओं के बीच उन्हें प्रस्तुत किया हे
फलत उनके उपन्यासों में विधवा, दहेज, अनमेल विवाह आदि पर जो विचार व्यक्
किये गये हैं वे विचारणीय हैं। यहाँ प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की दृष्टि में एक अन्त
स्पष्टत. लक्षित होता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में समाज की किसी समस्या प
नियोजित प्रकाश डाला गया है, किसी न किसी समस्या को उठाया गया है तथा उस
किसी न किसी हल को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। शरतचन्द्र अपने उपन्यासों
सामाजिक कुरीतियों को अनावृत तो करते हैं किन्तु उन्हें समस्या के रूप में नहीं प्रस्तु
करते। शरतचन्द्र अपने उपन्यासों में एक ऐसा सामाजिक वातावरण उपस्थित कर
है जिससे उनके पात्र सामाजिक तत्वों से टकराते हैं। परिणामस्वरूप अनेक प्रकार क
सामाजिक विसंगतियां तथा संकीर्णतायें स्वत प्रकाश में आ जाती हैं। यही कारण
कि शरतचन्द्र के उपन्यासों में समस्याओं के हल ढूढने का प्रयास नहीं किया गया है
वस्तुतः शरतचन्द्र व्यक्ति के शिल्पी हैं, समाज उनकी दृष्टि में गौण है। जबकि प्रेमचन
समाज के बहिरंग पर अपनी दृष्टि जमाते हैं।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र आधुनिक उपन्यासकार हैं और आधुनिक उपन्यास तिलस्म
और रहस्यमय जीवन की कथा से भिन्न व्यक्ति और समाज के संघर्ष का स्पष्ट चित्र है
मनुष्य अपने सभी कार्यों में समाज का अंग है। समाज के बीच रहकर ही वह अपन
कर्म सम्पन्न करता है। अत मनुष्य के कार्यों में समाज अनेक मार्ग से बाधायें भी उप
स्थित करता है क्योंकि समाज किसी एक व्यक्ति के सुख-दुःख की चिन्ता नहीं करत
वरन् अक्सर वह व्यक्ति की उपेक्षा करता है। आधुनिक युग भी विरोधों का युग रह
है। व्यक्ति विरोधों के बीच जी रहा है। आधुनिक उपन्यासकार व्यक्ति और समाज के
सम्बंधों पर भी विचार करता है। इस प्रकार उपन्यास में व्यक्ति के माध्यम से समाज
का जो चित्र प्रस्तुत होता है वह सामाजिक जीवन के विभिन्न सन्दर्भों को उद्घाटित
करता है। "युद्ध, बेकारी तथा विशृंखलित सामाजिक व्यवस्था से पीड़ित होकर मनुष्
संघर्ष करने के लिए बाध्य होता है।"[२१] व्यक्ति का निरंतर संघर्ष ही समाज का निर्माण है

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के संघर्षों, विरोधों तथा विषमताओं का चित्रण किया गया है।

व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को लेकर प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की पहुँच में अन्तर है। प्रेमचन्द ने मनुष्य के बाह्यगत सामाजिक सम्बन्धों को लेकर समाज और व्यक्ति पर विचार किया है तथा उसके संघर्ष को चित्रित किया है। किन्तु शरतचन्द्र ने व्यक्ति के आन्तरिक जीवन से सम्बन्धित भावनाओं को प्रधानता दी है तथा उससे उत्पन्न सामाजिक विरोधों का चित्रण किया है। इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों में व्यक्ति समाज में अन्तर्निहित है जिससे व्यक्तिगत समस्याओं की अपेक्षा वह अपने वर्ग के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। 'होरी' 'गोदान' का एक पात्र है। 'होरी' में व्यक्ति और समाज का संघर्ष नहीं है, वरन् 'होरी' के साथ समाज का जो संघर्ष है वह उसके वर्ग का है। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'गोदान' किसी एक व्यक्ति की अपेक्षा समाज का व्यापक चित्र है और ऐसा समाज जिसमें व्यक्ति अपने को समाज के विरुद्ध नहीं पाता बल्कि यह स्वयं अनुभव करता है कि समाज की परिस्थितियों ने उसे संघर्ष में डाल दिया है। वह अपने समाज का अंग है—इसे 'होरी' कभी भी नहीं भूलता। यहाँ यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व को चित्रित न करके वर्ग-संघर्ष को चित्रित किया है। इस प्रकार समाज की युग-प्रसूत परिस्थितियों को प्रेमचन्द के उपन्यास व्यापक स्तर पर लेकर चले हैं तथा सामाजिक समस्याओं की मीमांसा भी प्रेमचन्द के उपन्यासों में गहरी हुई है।

शरतचन्द्र के उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के बीच खोये हुए सन्तुलन तथा उससे उत्पन्न सामाजिक परिस्थितियों की विवेचना हुई है। इस सम्बन्ध में डा० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त का मत उल्लेखनीय है—"समाज के जटिल प्रश्न ही अगर उनकी दृष्टि में मुख्य होते, वह अगर पुलिस कोर्ट के विचार, सूदखोर के अत्याचार और श्रमिकों आदि की हड़ताल के विषयों के निरूपण में लगे रहते तो फिर रूपहीन नाना शक्तियों के द्वन्द्व के बीच नर-नारी के हृदय का माधुर्य लुप्त हो जाता। उनके साहित्य में वर्तमान युग की विशेष छाप नहीं है। उन्होंने केवल चिरकाल से चली आ रही सामाजिक नीति के पहलू में ही समाज का निरीक्षण किया है।"

शरतचन्द्र ने व्यक्ति के अधिकार का समर्थन किया है—"जीवन यात्रा में मनुष्य का राह चलने का अधिकार कितना पवित्र है—इस सम्पूर्ण सत्य को ही मानव की भूल कहा गया है।" समाज ने मनुष्य की इस असावधानी का अवांछित लाभ उठाया है। शरतचन्द्र ने व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों पर इसी दृष्टिकोण से विचार किया है। समाज अनेक प्रकार की संकीर्णताओं से जकड़ा रहता है। वह उन्हीं के आधार पर अपना काम करता है। किन्तु व्यक्ति का आत्म-पीड़न चाहे वह स्वेच्छाकृत हो अथवा

का हृदय व्यथित हो उठा। अत एक स्थल पर *लड़कियों के दुर्भाग्य का संकेत* करते हुए लिखा है—"कैसा दुर्भाग्य लेकर यह हमारे घरो मे पैदा होती है।"[1] इतना ही नही सामाजिक स्थिति का और भी विवशतापूर्ण चित्र शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासो मे अंकित किया है—"*सुना है कि ठीक यही बात उनकी माँ भी कह रही है—'यह अभागिन हम सब को खाने के बाद जायेगी।* इसकी ऐसी तकदीर है कि समुद्र पर दृष्टि डाले तो समुद्र तक सूख जाय और जली हुई सोल मछली भी पानी में भाग जाय। *इसका ऐसा हाल न होगा तो किस का होगा।*' "[2]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनो ही उपन्यासकारो ने सामाजिक कुरीतियो पर अपनी दृष्टि रखी है और समाज की अनेक समस्याओ के बीच उन्हे प्रस्तुत किया है। फलत. उनके उपन्यासो मे विधवा, दहेज, अनमेल विवाह आदि पर जो विचार व्यक्त किये गये हैं वे विचारणीय हैं। यहाँ प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की दृष्टि मे एक अन्तर स्पष्टतः लक्षित होता है। प्रेमचन्द के उपन्यासो मे समाज की किसी समस्या पर नियोजित प्रकाश डाला गया है, किसी न किसी समस्या को उठाया गया है तथा उसके किसी न किसी हल को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। शरतचन्द्र अपने उपन्यासो मे सामाजिक कुरीतियों को अनावृत तो करते हैं किंतु उन्हे समस्या के रूप मे नही प्रस्तुत करते। शरतचन्द्र अपने उपन्यासो मे एक ऐसा सामाजिक वातावरण उपस्थित करते है जिससे उनके पात्र सामाजिक तत्त्वो से टकराते हैं। परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की सामाजिक विसगतिया तथा सकीर्णतायें स्वत प्रकाश मे आ जाती हैं। यही कारण है कि शरतचन्द्र के उपन्यासो मे समस्याओ के हल ढूढने का प्रयास नही किया गया है। वस्तुत. शरतचन्द्र व्यक्ति के शिल्पी हैं, समाज उनकी दृष्टि मे गौण है। जबकि प्रेमचन्द समाज के बहिरग पर अपनी दृष्टि जमाते है।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र आधुनिक उपन्यासकार हैं और आधुनिक उपन्यास तिलस्मी और रहस्यमय जीवन की कथा से भिन्न व्यक्ति और समाज के सघर्ष का स्पष्ट चित्र है। मनुष्य अपने सभी कार्यों मे समाज का अग है। समाज के बीच रहकर ही वह अपने कर्म सम्पन्न करता है। अत. मनुष्य के कार्यो मे समाज अनेक मार्ग से बाधायें भी उपस्थित करता है क्योंकि समाज किसी एक व्यक्ति के *सुख-दु.ख की चिन्ता नही करता* वरन् अक्सर वह व्यक्ति की उपेक्षा करता है। आधुनिक युग भी विरोधो का युग रहा है। व्यक्ति विरोधों के बीच जी रहा है। आधुनिक उपन्यासकार व्यक्ति और समाज के *सम्बंधो पर भी विचार करता है।* इस प्रकार *उपन्यास मे व्यक्ति के माध्यम से समाज* का जो चित्र प्रस्तुत होता है वह सामाजिक जीवन के विभिन्न सन्दर्भों को उद्घाटित करता है। "युद्ध, वेकारी तथा विशृखलित सामाजिक व्यवस्था से पीड़ित होकर मनुष्य संघर्ष करने के लिए बाध्य होता है।"[1] व्यक्ति का निरतर सघर्ष ही समाज का निर्माण है।

मे हुए है। डा० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त ने शरतचन्द्र की इसी प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हुए लिखा है—"शरतचन्द्र ने समाज-शक्ति पर चोट की है प्रधानतया उसकी नीति की ओर से, अर्थ-नीति की ओर से उतना आघात नही किया है। हमारा देश दारिद्रय से पीडित है और इस दैन्य का हाहाकार उनकी रचनाओ मे प्रकट न हुआ हो यह बात भी नही है। किन्तु उनकी रची हुई अधिकाश प्रणय की कहानियो मे दारिद्रय के पीडन का परिचय नही है।"[1]

अर्थ-नीति को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने मे कार्ल मार्क्स का योगदान आधुनिक युग मे विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। परिणामस्वरूप आधुनिक युग मे साम्यवाद से प्रभावित होकर समाज मे नये सामाजिक विचारो का प्रादुर्भाव हुआ तथा व्यक्ति और समाज के सम्बन्धो को नवीन परिवेश मे उपस्थित किया गया।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र आधुनिक उपन्यासकार हैं। शरतचन्द्र के उपन्यासो मे आधुनिक अर्थ-युग और वर्ग-सघर्ष का चित्रण नही हुआ है। कथा-साहित्य के क्षेत्र मे शरतचन्द्र का वह अभिप्रेत विषय नही रहा है किन्तु शरतचन्द्र ने साहित्य और समाज के इस परिवर्तन को लक्ष्य कर लिया था। अपने साहित्य मे वे उसे स्थान नही दे सके हैं। लेकिन साहित्य मे अभिशप्त और सघर्ष-रत मानव के चित्रण का समर्थन अवश्य किया है। आधुनिक साहित्य के सम्बन्ध मे विचार करते हुए शरतचन्द्र ने लिखा है—"किन्तु एक शिकायत यह की जा सकती है कि पहले की तरह राजे रजवाडो और जमीदारो के दु ख-दैन्य—द्वन्द्वहीन जीवन के इतिहास को लेकर आधुनिक साहित्य-सेवी को सन्तोष नही होता, उसका मन नही भरता। वह नीचे के स्तर मे उतर गया है। यह अफसोस की बात नही है। बल्कि इस अभिशप्त और तमाम दु खो के देश मे, अपने अभिमान को छोड कर रूसी साहित्य की तरह वह और भी समाज के नीचे के स्तर मे उतर कर उनके दुख और वेदना के बीच खडा हो सकेगा, उस दिन यह साहित्य-साधन केवल स्वदेश मे ही नही, विश्व-साहित्य मे भी अपना स्थान ले सकेगा।"[2]

प्रेमचन्द का गत्यात्मक व्यक्तित्व आधुनिक विचारो को ग्रहण करता है और छोड़ता (Discharge) भी है। परिणामत. प्रेमचन्द का साहित्य युग-परिस्थितियो से अत्यधिक प्रभावित है। आधुनिक अर्थ-युग की अनेकानेक समस्याएँ प्रेमचन्द के उपन्यासो मे प्रतिबिम्बित हुई हैं। आज के जीवन मे अर्थ ही सामाजिक विषमता का मूल कारण है और अर्थ पर ही आधारित आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत नये वर्गो का प्रादुर्भाव भी हुआ है। फलत वर्ग-चेतना और वर्ग-सघर्ष आधुनिक युग मे ही विशेष रूप से प्रतिध्वनित हुआ है। सामाजिक विषमता के सम्बन्ध मे विचार करते हुए डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने भी लिखा है—"सामाजिक समस्याओ के मूल मे आर्थिक पहलू विशेष प्रमुख है। समाज की व्यवस्था का आधार धन ही है इसलिए

समाज में जितने वर्ग दिखाई देते हैं वे सभी उत्पादन व वितरण रूप से बने हुए हैं आधारित हैं। इसलिए अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री समाज व्यक्तियों के समाज के निर्माण व वर्ग की स्थिति की बहुत आवश्यकता की है।"

कार्ल मार्क्स के मार्क्सवादी सिद्धान्त के प्रभाव से आधुनिक युग काफी अधिक प्रभावित हुआ है। मार्क्स का आर्थिक सिद्धान्त द्वंद्वीकरण पर आधारित है। उसका विश्वास वर्गहीन समाज की स्थापना में है। इसी से मार्क्स ने आर्थिक वर्गों का विरोध किया है। परिणामतः उसका विश्वास है कि सभी सामाजिक परिवर्तन प्रमुख आर्थिक वर्ग-संघर्षों से सिद्ध हुए हैं।" मार्क्स की विचारधारा आधुनिक युग में वर्ग-संघर्ष को प्रसारित कर रही है। आज प्रत्येक वर्ग में असन्तोष और क्षोभ है। मार्क्स इस वर्ग-संघर्ष की प्रेरणा के केन्द्र हैं।

प्रेमचन्द का युग भारत में संघर्षों का युग रहा है। चारों ओर विषमता, अशान्ति और क्षोभ व्याप्त हुआ था। एक ओर ब्रिटिश शासन की जड़ को उखाड़ फेंकने के लिए भारतीय कटिबद्ध थे तो दूसरी ओर कुछ अपने ही व्यक्तियों द्वारा शोषित और पीड़ित भी थे। योरोप के नवजागरण और औद्योगीकरण का प्रभाव भारत पर भी पड़ा। परिणामस्वरूप जन साधारण ने आर्थिक विषमता का अनुभव गहराई से किया। प्रेमचन्द के उपन्यासों में भारत की तत्कालीन आर्थिक स्थिति का स्पष्ट अंकन हुआ है। वे अपने युग की इन विषमताओं से आँख मूँद कर चलने वाले लेखक नहीं थे। अतः प्रेमचन्द के उपन्यासों में आर्थिक अहिंसाओं से उत्पन्न वर्ग-संघर्ष को व्यापक रूप में ग्रहण किया गया है। वर्ग-संघर्ष के विभिन्न रूपों का सम्बन्ध ग्राम और शहर दोनों से है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष के दोनों रूपों को स्पष्टतः देखा जा सकता है :

(1) जमींदार और किसान का संघर्ष

(2) उद्योगपति और श्रमिक का संघर्ष

प्रेमचन्द के उपन्यासों में जमींदार और किसान का संघर्ष अधिक व्यापक स्तर पर हुआ है। इसका कारण है। प्रेमचन्द गांधी से प्रभावित उपन्यासकार हैं। जिस प्रकार गांधी ने अपने राजनीतिक आन्दोलन के केन्द्र गाँव बनाये और गाँवों में राजनीतिक जागृति पैदा कर रामराज्य की कल्पना की थी उसी प्रकार प्रेमचन्द के साहित्य के चरण भी भारत के गाँव में ही रहे हैं। प्रेमचन्द ने भी यह अनुभव किया है कि बिना ग्रामीण समाज में जागृति पैदा किये, स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त की जा सकती। अतः गांधी से प्रभावित भारतीय गाँव को प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में चित्रित किया है।

जमींदार और किसान के संघर्ष का प्रमुख कारण है जमींदार की शोषक वृत्ति। जमींदार वर्ग किसानों को पनपने नहीं देता चाहता। परिणामतः इजाफा लगान और

डेरासूनी जैसे अधिकारी का यह दुरुपयोग करता है। जमींदार किसान से बेगार लेता है। अफसरों की चाटुकारिता में निमग्न रहने वाला यह वर्ग अफसरों के दौरे पर स्वयं कुत्तों जैसी दुम हिलाया करता है और किसानों के घरों से दूध आदि खाद्य वस्तुएँ बिना मूल्य दिये मंगाता है। मार्क्स जैसे आधुनिक लेखकों के विचारों के प्रभाव से आकर समाज में नयी चेतना का प्रादुर्भाव हुआ है। किसान जमींदारों की शोषण-वृत्ति और उनके अनधिकार कार्यों के विरुद्ध आवाज उठाते हैं। यही उनके संघर्ष का कारण है। प्रेमचन्द ने 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' में इसी संघर्ष को वाणी दी है। 'प्रेमाश्रम' में जमींदारी-प्रथा का नग्न चित्र अंकित हुआ है। 'प्रेमाश्रम' की प्रमुख समस्या भूमि सम्बन्धी है। किसान वर्ग अपने अधिकारों के प्रति अधिक सचेष्ट दिखाई पड़ता है। 'बलराज' द्वारा प्रेमचन्द ने तत्कालीन जमींदारी-प्रथा का गहरा विरोध किया है। वह अफसरों की धांधली के विरुद्ध स्पष्ट कह बैठता है—"मनोहर ने अभी जवाब दिया था कि बलराज बोल उठा, मेरी भैंस बहुत दुधार है, मन-भर दूध देती है। लेकिन बेगार के नाम पर छटांक-भर भी न देगी।"[1]

'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द ने आर्थिक शोषण के अनेक चित्र उपस्थित किये हैं। किसानों की दयनीय स्थिति और 'ज्ञानशंकर' की धूर्तताओं से सम्पूर्ण उपन्यास भरा पड़ा है। किस प्रकार जमींदार वर्ग अधिकारियों से मिलकर किसानों पर अत्याचार करता है इसे 'प्रेमाश्रम' में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है—"फैजुल्ला ने सख्ती करनी शुरू की। किसी को चौपाल के सामने धूप में खड़ा करते, किसी को मुश्कें कस कर पिटवाते, दीन नारियों के साथ और भी पाशविक व्यवहार किया जाता, किसी की चूड़ियाँ तोड़ी जातीं, किसी के जूड़े नोचे जाते।"[1] यह बात केवल 'ज्ञानशंकर' तक ही सीमित नहीं है। 'गोदान' के 'रायसाहब' किसानों पर बेहद सहानुभूति रखते हैं किन्तु बेगार लेने और नजराना वसूल करने में वे भी किञ्चित संकोच नहीं करते।

यहाँ पर एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। प्रेमचन्द ने जमींदार और अधिकारी वर्ग के विरुद्ध जिस संघर्ष को अपने उपन्यासों में उद्भूत किया है, उसमें किसान वर्ग स्वयं दो विचारधाराओं में विभाजित है। एक में प्राचीन परम्परा को मानने वाले किसान हैं, जिसे 'होरी' और 'मनोहर' के रूप में उपस्थित किया गया है तथा दूसरा रूप 'गोबर' और 'बलराज' के रूप में प्रस्तुत हुआ है। 'होरी' और 'मनोहर' संघर्ष के प्रणेता नहीं हैं। जमींदार के अत्याचारों का विरोध करने की शक्ति और जमींदार पर अपने अधिकार को स्थापित करने की भावना 'गोबर' और 'बलराज' में ही है। 'होरी' और 'मनोहर' संघर्षरत नहीं होना चाहते। यही 'बलराज' और 'गोबर' की शक्तियों को अधिक उभरे रूप में प्रेमचन्द नहीं प्रस्तुत कर सके हैं। परिणामतः संघर्ष में तीव्रता का अभाव परिलक्षित होता है।

किन्तु यह निश्चित है कि प्रेमचन्द जमींदारी प्रथा की बुराइयों को अपने यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर सके हैं। उन्होंने जमींदारी प्रथा को 'वर्तमान' सामाजिक व्यवस्था का कलंक चिह्न माना है। इसी से चाहे 'गोदान' हो या 'कर्मभूमि' सभी जगह वे भूमि पर किसान के अधिकार का ही समर्थन करते हैं। किसान की गाढ़ी कमाई पर आश्रित रहने वाले वर्ग के उन्मूलन की कल्पना भी इसी से उन्होंने की है। इस प्रकार प्रेमचन्द की दृष्टि जिस आदर्श को ध्येय बनाकर अग्रसर हुई है वह 'प्रेमाश्रम' के 'लखनपुर' का परिवर्तित ग्राम जीवन है।

'कर्मभूमि' में इजाफा लगान और अनाज के भावों में मंदी के कारण संघर्ष की स्थिति पैदा हुई है। प्रस्तुत उपन्यास में 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' की अपेक्षा किसान आन्दोलन अधिक सशक्त ढंग से चित्रित हुआ है। १६३२ के आसपास लिखा गया यह उपन्यास जमींदार और किसान के संघर्ष के अतिरिक्त तत्कालीन अनाज के भावों में मंदी से उत्पन्न परिस्थितियों से भी सम्बंधित है। डा० डी० पी० मुखर्जी ने तत्कालीन परिस्थिति का चित्रण करते हुए अनाज के भावों में मंदी की ओर भी संकेत किया है।[१] कर्मभूमि में भी इस सम्बध में कहा गया है—"यह मंदी की बात कहाँ से आयी, कौन जाने, यह तो ऐसा ही है कि आँधी में किसी का छप्पर उड़ गया और सरकार उसे दण्ड दे। यह शासन किसके हित के लिए है? इसका उद्देश्य क्या?"[२]

इस प्रकार एक ओर किसान अनाज के भावों की मंदी से त्रस्त था और दूसरी ओर वह जमींदार की लगान सम्बन्धी नीति, उसकी शोषण-वृत्ति, सरकारी क्रूरता और नृशंसता से भी पीड़ित था। कर्मभूमि में 'अमरकांत' के नेतृत्व में जमींदार और सरकारी नीति के विरुद्ध आन्दोलन संगठित किया गया है। 'अमरकांत' अहिंसात्मक ढंग से इस आन्दोलन का नेतृत्व करना चाहता है किन्तु 'आत्मानन्द' उसके कार्यक्रम से सहमत नहीं है। वे उग्र नीति को अपनाते हैं। अंत में सभी लोग जेल जाते हैं और अछूतों की समस्याओं पर सरकार एक समिति की घोषणा करती है। इस प्रकार किसान की सुख-सुविधा की ओर संकेत करते हुए उपन्यास का अन्त होता है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि 'कर्मभूमि' में जिस संघर्ष का सूत्रपात किया गया है उसका नेतृत्व किसान वर्ग का व्यक्ति नहीं करता। यह बात प्रेमचन्द के प्रायः सभी उपन्यासों में पाई जाती है। 'प्रेमाश्रम' में किसान आन्दोलन के नेता हैं 'प्रेमशंकर' और 'गोदान' में किसान आन्दोलन का वह स्वरूप ही नहीं प्रस्तुत हुआ है। किन्तु किसान आन्दोलन के अन्तर्गत 'कर्मभूमि' में 'बलराज' जैसे व्यक्तित्व का अभाव खटकता है।

'गोदान' के वर्ग-संघर्ष की तह अधिक गहरी है। महाजनी सभ्यता के प्रचण्ड संघर्ष के बाद किसान को एक भूमिहीन मजदूर की स्थिति तक प्रेमचन्द ने उपस्थित

किया है। 'गोदान' में जमींदार तो एक ही है पर महाजन तीन-तीन हैं। सहुआइन अलग, मंगरू अलग और दातादीन महाराज अलग। ये तीनों महाजन कृषक-समाज को जोंक की भाँति चूसे ले रहे हैं। 'होरी' के माध्यम से प्रेमचन्द ने किसान-जीवन की संघर्ष-रत स्थिति को स्पष्ट किया है। आर्थिक दृष्टि से ग्रामीण समाज की परिस्थिति शोचनीय है। किसान अपना लगान भी यथासमय नहीं दे पाता। उस पर उसका बेगार, नजराना आदि विभिन्न उपायों से शोषण किया जाता है। इन्हीं परिस्थितियों में 'होरी' के बैल उसके घर पर से खोल लिये जाते हैं। महाजन उसके खेत पर खड़े होकर उसकी फसल एक-एक दाना ब्याज की लम्बी-लम्बी दरों से काट लेते हैं और उसकी दो बीघे जमीन भी चली जाती है। इस प्रकार सब कुछ चले जाने पर भी वह ऋण-मुक्त नहीं हो पाता।

योरप के औद्योगिक विकास का प्रभाव भारत पर भी पड़ा जिससे भारत में भी औद्योगीकरण का प्रारम्भ हुआ। औद्योगीकरण के फलस्वरूप आधुनिक युग में दो नये वर्गों की स्थापना भी हुई—एक उद्योगपति अथवा शोषक और दूसरा श्रमिक वर्ग। प्रेमचन्द के समय में भारत में औद्योगीकरण का आधुनिकतम रूप नहीं हो सका था किन्तु उसका प्रभाव परिलक्षित होने लगा था। प्रेमचन्द औद्योगीकरण के कट्टर विरोधी प्रतीत होते हैं। इस दृष्टि से उन्होंने भारतीय उद्योग-धंधों को प्रोत्साहित किया है। औद्योगिकता की आलोचना करते हुए प्रेमचन्द ने स्पष्ट लिखा है—"योरप में इंडस्ट्रियलिज्म (औद्योगिकता) की जो उन्नति हुई उसके विशेष कारण थे। वहाँ के किसानों की दशा उस समय गुलामों से भी गयी-गुजरी थी, वह जमींदार के बन्दी होते थे। इस कठिन कारावास के देखते हुए धनपतियों की कैद गनीमत थी। हमारे किसानों की दशा चाहे कितनी ही बुरी क्यों न हो, पर वह किसी के गुलाम नहीं हैं। अगर कोई उन पर अत्याचार करे तो वह अदालतों में उससे मुक्त हो सकते हैं। नीति की दृष्टि से किसान और जमींदार दोनों बराबर हैं।"[११]

'रंगभूमि' तो औद्योगीकरण के विरुद्ध संघर्ष की कहानी है। 'सूरदास' की पाँच बीघे भूमि को केन्द्र बनाकर उसके सम्पूर्ण जीवन का औद्योगीकरण के विरुद्ध संघर्ष-रत चित्रण किया गया है। मिल और कारखाने खुलने से किस प्रकार अनैतिकता का बोलबाला हो जाता है तथा उससे कौन-कौन कुरीतियाँ उत्पन्न होती हैं, इसे उन्होंने अपने इस उपन्यास में दृढ़ रूप से चित्रित किया है। इस प्रकार सम्पूर्ण उपन्यास में पश्चिम के पूँजीवादी औद्योगीकरण और भारतीय ग्रामोद्योग तथा प्राचीन ग्राम-व्यवस्था के बीच सीधी टक्कर हुई है। 'जानसेवक' पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित, स्वार्थ और प्रतियोगिता के आधार पर औद्योगीकरण को विकसित करना चाहता है तथा 'सूरदास' उसके इस प्रयत्न का विरोध करता है। औद्योगीकरण से उत्पन्न परिस्थितियों के प्रति

'सूरदास' अत्यन्त सचेष्ट है। उसने उत्पन्न कुरीतियों की ओर उसने स्पष्ट संकेत किया है। "सरकार गरीब की घरवाली गांव भर की भावज होती है। साहब किरस्तान हैं, धर्मशाले में तमाकू का गोदाम बनायेंगे, मन्दिर में उनके मजदूर सोयेंगे, कुंए पर उनके मजदूरों का अड्डा होगा, बहू-बेटियाँ पानी भरने न जा सकेंगी। साहब न करेंगे, साहब के लड़के करेंगे। मेरे बाप दादों का नाम डूब जायेगा। सरकार मुझे इस दल-दल में न फँसाइए।''[1]

इस प्रकार उद्योगपति अथवा पूंजीपति, साधारण किसान को मजदूर बनाकर उसे थोड़ा वेतन देकर उसके श्रम का शोषण करता है तथा अपने प्रासादों की अट्टालिकाएँ दिन-प्रतिदिन ऊँची करता रहता है। वस्तुतः औद्योगीकरण के मूल में छिपी उद्योगपति की इसी वृत्ति का विरोध विशेष रूप से किया है। जिसे 'गोदान' के मजदूर आन्दोलन में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'खन्ना' उस पूंजीवादी वर्ग के प्रतिनिधि हैं जो पूंजी के आधार पर मजदूरों को प्रपीड़ित करते रहते हैं। अपने आश्रित श्रमजीवियों के श्रम का वास्तविक मूल्य न देकर उनकी दुरावस्था का कारण बने रहते हैं। उत्पादन की शक्ति उनके हाथ में न होने पर भी धन के आधार पर मिल का अधिकांश लाभ स्वयं ले लेते हैं और अत्यन्त साधारण पूंजी श्रमिकों को देते हैं। 'गोदान' में 'खन्ना' के विरुद्ध श्रमजीवियों के गहरे असन्तोष और संघर्ष का यही कारण है। 'गोबर' के रूप में श्रमिक वर्ग का अभ्युदय प्रेमचन्द ने दिखाया है और उसकी सक्रियता को हड़ताल के रूप में प्रस्तुत किया है। किन्तु प्रेमचन्द के समय में आधुनिक पद्धति के श्रमिक संगठनों का सूत्रपात नहीं हुआ था इसी से उस युग की श्रमिक शक्ति भी बिखरी हुई अंकित हुई है। उस हड़ताल के परिणामस्वरूप श्रमिकों को क्या लाभ हुआ इसे प्रेमचन्द नहीं अंकित कर सके हैं। वस्तुतः इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द की पहुँच गांधीवादी प्रतीत होती है और ऐसा लगता है कि रूस आदि देशों के श्रमिक आन्दोलनों का उन्हें ठीक-ठीक पता न था। इतना अवश्य है कि प्रेमचन्द ने तत्कालीन श्रमिक-जीवन और उसके असन्तोष को चित्रित कर श्रमिकों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न की है।

प्रेमचन्द ने आधुनिक समाज को व्यापक अर्थनीति की दृष्टि से देखा है तथा आर्थिक वैषम्य से उत्पन्न परिस्थितियों पर विचार किया है। शरतचन्द्र के उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष का चित्रण न होने पर भी ग्रामीण-समाज का चित्रण हुआ है। प्रेमचन्द किसान की स्थिति को जितनी गहराई तक जानते हैं उतना शरतचन्द्र अवश्य नहीं जानते।

इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों के ग्रामीण जीवन में विभिन्न रूपों को चित्रित किया गया है। आर्थिक पहलू से सामाजिक संघर्ष का जो चित्रण प्रेमचन्द ने किया

उसमें भारतीय ग्रामीण समाज की वास्तविकता का पता चलता है। किसान की दयनीय आर्थिक स्थिति, उसकी दरिद्रता, अधिकारियों का क्रूर और पाशविक व्यवहार, जमींदार की शोषण वृत्ति ने वर्ग-संघर्ष के कारणों को उपस्थित किया है। अतः प्रेमचन्द ने जिस सामाजिक व्यवस्था की कल्पना अपने उपन्यासों में की है उसमें भूमि पर किसान के अधिकार का बड़े शक्तिपूर्ण ढंग से समर्थन किया है तथा उसको पराधीनता से मुक्ति दिलाने के लिए स्थल-स्थल पर संकेत किया है।

शरतचन्द्र के उपन्यासों में भी ग्रामीण-समाज की समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। शरतचन्द्र ने किसान वर्ग को ग्रामीण-समाज से पृथक् करके नहीं देखा है। शरतचन्द्र का किसान अथवा ग्रामीण वर्ग प्रेमचन्द की भाँति जमींदार से संघर्ष करने के लिए योजनायें नहीं बनाता। अतः शरतचन्द्र के उपन्यासों में ग्रामीण-समाज की स्वार्थान्वेषी प्रवृत्तियों को ही अधिक प्रस्तुत किया गया है। 'ग्रामीण-समाज', 'श्रीकान्त', 'दत्ता', 'गृहदाह' आदि उपन्यासों में शरतचन्द्र ने ग्रामीण-समाज की निर्धनता, अशिक्षा तथा उनके अन्दर ईर्ष्या, द्वेष और जलन को उद्घाटित किया है। ग्रामीणों के अर्थाभाव की ओर संकेत करते हुए शरतचन्द्र ने ग्रामीणों की दयनीय स्थिति का अत्यन्त संवेदनापूर्ण चित्रण किया है—"बेचारों ने अपने घरों को जी-जान से छोटा बनाने की कोशिश करने में कुछ उठा नहीं रखा है, फिर भी इतने छोटे-छोटे घरों को छाने लायक सूखा घास भी इस सोने के देश में उनके भाग्य में नहीं जुटता। बीता भर जमीन भी किसी के पास नहीं, सिर्फ डलिया, टोकनी-सूप बनाकर और दूसरे गाँवों में सद्गृहस्थों को पानी के मोल बेचकर किस तरह इन लोगों की गुजर होती है। मैं तो सोच नहीं सका।"[1]

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में सामन्ती वर्ग की स्थिति महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। ब्रिटिश शासन की नीति इस वर्ग को पुष्ट करने की रही है फलस्वरूप समाज के अन्य वर्गों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों में सामन्ती समाज का चित्रण भी हुआ है। उत्तर प्रदेश और बंगाल की सामाजिक परिस्थितियों में भिन्नता होते हुए भी राजनैतिक व्यवस्था में अन्तर नहीं रहा है अतः दोनों प्रदेशों में सामन्ती समाज का प्रभुत्व सामाजिक जीवन पर छाया रहा है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामन्ती समाज की शोषण-प्रवृत्ति तथा आम अशिक्षित किसान वर्ग पर अत्याचार करने की भावना को प्रदर्शित किया गया है। 'रंगभूमि', 'प्रेमाश्रम' में इसे स्पष्ट देखा जा सकता है। शरच्चन्द्र के उपन्यासों में सामन्ती समाज अपनी नैतिक मर्यादाओं की ही दुहाई में आबद्ध है। किसानों पर अत्याचार तथा उत्पीड़न के चित्र शरच्चन्द्र के उपन्यासों में नहीं अंकित हुए हैं। लेकिन, 'ग्राम्य-समाज' तथा 'देहात' को इस समर्थन के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है।

उन्नीसवी सदी मे ब्रिटिश भारत मे मध्यवर्ग की उत्पत्ति एक महत्वपूर्ण घटना है। मध्यवर्ग की उत्पत्ति से भारतीय समाज मे पाश्चात्य संस्कृति की प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। मध्यवर्ग मे शिक्षा का प्रसार होने के कारण प्रारम्भ से ही उसमे एक नव्य चेतना का सचार दृष्टिगत होता है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासो मे मध्यवर्गीय समाज का व्यापक चित्रण हुआ है। किन्तु दोनो उपन्यासकारों मे निश्चित अन्तर है। प्रेमचन्द मध्यवर्गीय समाज को भली-भाँति समझते हैं किन्तु शरतचन्द्र की तुलना मे उनकी दृष्टि अधिक परिमार्जित है—यह नहीं कहा जा सकता। शरतचन्द्र के अधिकाश उपन्यास मध्यवर्ग से सम्बन्धित हैं। वस्तुत, मध्यवर्गीय समाज शरतचन्द्र का अधिक समझा हुआ है। यही कारण है कि शरतचन्द्र के उपन्यासो में मध्यवर्ग की सामाजिक स्थिति का सूक्ष्म चित्रण हुआ है।

प्रेमचन्द ने मध्यवर्गीय समाज को भी आर्थिक दृष्टिकोण के पार्श्व में प्रस्तुत किया है। परिणामस्वरूप प्रेमचन्द के उपन्यासों में मध्यवर्ग मे अर्थाभाव स्पष्टत अंकित हुआ है तथा अर्थ पर आधारित मध्यवर्ग के विभिन्न स्तरो का आकलन हुआ है। 'सेवासदन' मे मध्यवर्ग के विभिन्न वर्ग के रूपों को स्पष्टत देखा जा सकता है। 'गजाधर' और 'पद्मसिह' दोनों ही मध्यवर्गीय व्यक्ति हैं किन्तु दोनो के रहन-सहन मे पर्याप्त अन्तर है। यद्यपि यह निश्चित है 'पद्मसिह' और 'गजाधर' दोनों ही अर्थाभाव से पीड़ित है। 'रगभूमि' के 'ताहिर अली' का चित्रण भी इसी सदर्भ मे प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रेमचन्द ने 'ताहिर अली' के द्वारा मध्यवर्गीय समाज की अर्थहीनता तथा मध्यवर्ग की आर्थिक चिन्ताओं को व्यक्त किया है। यहाँ यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि मध्यवर्गीय समाज के चित्रण मे प्रेमचन्द की दृष्टि प्राय आर्थिक वैषम्य पर ही रही है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द के ये मध्यवर्गीय चित्र उनके सूक्ष्म निरीक्षण के साक्षी है।

शरतचन्द्र के उपन्यासों मे मध्यवर्ग की आर्थिक समस्याओं को अभिव्यक्त अवश्य किया गया है किन्तु मध्यवर्ग की आर्थिक चिन्ताओं को गहरा रूप नहीं दिया गया है। 'विराजबहू' और 'सुभदा' की आर्थिक समस्याओं को सामाजिक धरातल पर [illegible] प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह भी उल्लेखनीय है कि शरतचन्द्र ने मध्यवर्गीय समाज को मनुष्य की व्यक्तिगत पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत किया है जिसमें मध्यवर्ग की सूक्ष्म प्रवृत्तियाँ भी अंकित हुई है किन्तु मध्यवर्ग के सामाजिक स्वरूप का [illegible] विवेचन नहीं है। वस्तुत शरतचन्द्र के उपन्यासों में मध्यवर्ग की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि [illegible] अंकित हुई है। इसी से शरतचन्द्र के उपन्यासों में मध्यवर्गीय समाज का जो चित्रण हुआ है वह सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। 'श्रीकान्त', 'गृहदाह' तथा 'चरित्रहीन' आदि उपन्यासों में [illegible] देखा जा सकता है।

भारत में संयुक्त पारिवारिक जीवन को सदैव आदर्श माना गया है। अंग्रेजों के साथ्राज्य सम्पर्क ने भारतीय पारिवारिक प्रणाली पर भी गहरा प्रभाव डाला, जिससे भारतीय पारिवारिक जीवन में भी विशृंखलता उत्पन्न हुई। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की सूक्ष्म और पैनी दृष्टि ने इस परिवर्तन को भी लक्ष्य किया है। परिणामत उनके उपन्यासों में विशृंखलित होने वाले पारिवारिक जीवन की अनेक विसंगतियों का चित्रण हुआ है।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने सम्मिलित परिवार के अनेक रूपों को अपने उपन्यासों में दिखाया है तथा टूटते हुए सम्मिलित परिवार के प्रति अपनी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि उपस्थित की है। योरप के प्रभाव से भारतीय पारिवारिक जीवन में जो विशृंखलता उत्पन्न हुई उसके दुष्परिणामों को प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने अनुभव किया है। यही कारण है कि टूटते और बिखरते हुए पारिवारिक जीवन को पुन प्राचीन मान्यताओं के आधार पर गठित करने का आग्रह प्रेमचन्द और शरतचन्द्र में समान रूप में पाया जाता है। 'गोदान' में 'होरी', 'हीरा' और 'शोभा' के बीच परिवार के बटवारे से उत्पन्न दुष्परिणामों को दिखाया गया है—"जब से अलगौझा हुआ है, दोनों घरों में एक जून रोटी पकती है। नहीं तो सब को दिन में चार बार भूख लगती थी।"[1] 'प्रेमाश्रम' में भी प्रेमचन्द का यही दृष्टिकोण उपस्थित हुआ है। 'ज्ञानशंकर' (प्रेमाश्रम) के अवांछनीय व्यवहार करने पर भी उनके चाचा प्रभाशंकर अलग-अलग रहना पसन्द नहीं करते थे।

शरतचन्द्र ने 'विराजबहू', 'बैंकुठ का दानपत्र', 'मझली दीदी' आदि उपन्यासों में संयुक्त कुटुम्ब-प्रणाली का समर्थन किया है तथा बटवारे से उत्पन्न परिस्थितियों को व्यापक रूप से अंकित किया है। शरतचन्द्र का यह दृष्टिकोण उनकी छोटी कहानियों 'बिन्दो का लल्ला' और 'सुमति' में भी स्पष्टत देखा जा सकता है। शरतचन्द्र ने संयुक्त कुटुम्ब-प्रणाली का ही समर्थन किया है।

कहना न होगा कि पारिवारिक प्रणाली के सम्बन्ध में प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों ही रूढ़िवादी हैं। इसका कारण भी है। भारतीय कौटुम्बिक प्रणाली के छिन्न-भिन्न होने से समाज में एक मौलिक परिवर्तन की आशंका उत्पन्न हो जाती है और वह परिवर्तन समस्त प्राचीन परम्पराओं को समाप्त कर समाज को नया रूप प्रदान कर सकता है। परिवार का बदला हुआ वह रूप न तो प्रेमचन्द को मान्य है और न शरतचन्द्र ही उसका समर्थन करते हैं।

पारिवारिक जीवन में जो विशृंखलता आधुनिक युग में उत्पन्न हुई उसमें कौटुम्बिक जीवन में अनेक संघर्षों का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों में कौटुम्बिक जीवन की विषमता तथा संघर्ष का भी चित्रण हुआ है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में कौटुम्बिक संघर्ष प्रायः आर्थिक कठिनाइयों से उत्पन्न हुए हैं। 'कर्मभूमि' में पिता और पुत्र के बीच जो संघर्ष है उसका प्रमुख कारण धन-सम्पत्ति है। 'अमरकांत' (कर्मभूमि) को धन-सम्पत्ति से अगाध प्रेम है। 'अमरकान्त' (कर्मभूमि) अपने पिता के विचारों से सहमत नहीं है। परिणामतः पारिवारिक जीवन में कलह उत्पन्न हुई है—"मैंने सबको घर से निकाल दिया। मैंने धन इसलिए नहीं कमाया कि लोग मौज उड़ायें, जो धन को धन समझे वह मौज उड़ाये। जो धन को मिट्टी समझे उसे धन का मूल्य सीखना होगा।"[16] 'सेवासदन' में 'गजाधर' के कौटुम्बिक संघर्ष और विषमता का कारण अर्थाभाव ही है। विवाह के पूर्व 'सुमन' (सेवासदन) का जीवन सुख और वैभव में बीता था, किन्तु धनाभाव से उसका विवाह उच्च घराने में न हो सका। 'गजाधर' के साथ 'सुमन' अपनी स्थिति को ठीक-ठीक न बैठा सकी। 'गजाधर' की आर्थिक हीनता के कारण ही उसका परिवार छिन्न-भिन्न हो गया। 'गबन' के विघटित कौटुम्बिक जीवन का भी यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। 'जालपा' का आभूषण-प्रेम और उच्चवर्गीय महिला 'रतन' से होड़ करने का आग्रह ही उसके कौटुम्बिक विश्रृंखलता का कारण बना है। 'जालपा' का पति 'रमानाथ' अपनी पत्नी की आवश्यकता की पूर्ति करने में अपने को असमर्थ पाता है। परिणामतः पति-पत्नी के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। 'रमानाथ' (गबन) संघर्ष को समाप्त करने के लिए ही गबन करता है। अपनी पत्नी के आभूषणों की चोरी भी करता है, पर इन सब में सफल न होने पर पलायन करता है।

पति-पत्नी के सामञ्जस्य के अभाव में भी कौटुम्बिक जीवन में संघर्ष उत्पन्न होता है। 'सुखदा' और 'अमरकान्त' (कर्मभूमि) के द्वारा प्रेमचन्द ने इसी ओर संकेत किया है। 'अमरकान्त'(कर्मभूमि)और 'सुखदा' (कर्मभूमि) के बीच सैद्धान्तिक मतभेद है। 'सुखदा' भोग-विलास को पसन्द करने वाली स्त्री है, किन्तु 'अमरकान्त' इसे पसन्द नहीं करता। इसी भावना को लेकर दोनों में मतभेद उत्पन्न होता है।

शरत्चन्द्र ने भी 'गृहदाह' में पति-पत्नी के सामञ्जस्य के अभाव में कौटुम्बिक संघर्ष उपस्थित किया है। 'महिम' की असाधारण गम्भीरता और उदासीनता ने 'अचला' (गृहदाह) के हृदय में अनिश्चित प्रेम और रोमांस को उत्पन्न किया है जिसमें कौटुम्बिक जीवन छिन्न-भिन्न हुआ है। व्यक्ति के विद्रोहपन और असन्तुलन के अभाव में उत्पन्न पारिवारिक-संघर्ष का संकेत 'गोदान' में 'गोविन्दी' और 'खन्ना' के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। यहाँ प्रेमचन्द ने यह दिखाया है कि पुरुष की विवेकहीनता के कारण पारिवारिक जीवन किस प्रकार दुःखद बन जाता है। 'गोविन्दी' और 'खन्ना' के बीच 'गोविन्दी' में असाधारण सहनशीलता है। 'मि० खन्ना' अपनी उच्छृंखल प्रवृत्तियों के कारण अपनी पत्नी को असभ्य समझते हैं। किन्तु जीवन में असफल व निराश

होने पर वे उच्छृंखल प्रवृत्तियों को त्याग कर सुखद पारिवारिक जीवन की ओर उन्मुख होते हैं। 'निर्मला' में पति की असाधारण भ्रांति को लेकर पारिवारिक सम्बन्धों का विशद चित्रण किया गया है। वस्तुतः निर्मला का पारिवारिक संघर्ष पति-पुत्र और पत्नी सब को आवृत किये हुए है। अपने पिता की भ्रांति से पीड़ित होकर पुत्र को घर छोड़ना पड़ता है, तथा पत्नी को अपने पति की भ्रान्ति को दूर करने में ही अपने को विनष्ट कर देना पड़ता है। इस प्रकार 'निर्मला' में एक सम्पूर्ण परिवार के दुःखद अवसान को स्पष्टतः देखा जा सकता है।

प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' और 'कायाकल्प' उपन्यासों में भी कौटुम्बिक संघर्ष और विषमताओं के चित्र अंकित किये हैं। धन का असाधारण लोभ और धार्मिक मतभेद ही 'सोफिया' (रंगभूमि) के परिवार में कौटुम्बिक संघर्ष के कारण हुए हैं। 'जान सेवक' (रंगभूमि) और उनकी पत्नी में धन के प्रति अगाध मोह है। 'सोफिया' और 'प्रभुसेवक' (रंगभूमि) अपने माता-पिता के विचारों से पूर्णतः सहमत नहीं है, परिणामस्वरूप 'सोफिया' को अपना घर भी त्यागना पड़ता है तथा 'प्रभुसेवक' घर में रह कर भी घर के प्रति अन्यमनस्क रहता है।

शरतचन्द्र के कौटुम्बिक समस्या-प्रधान उपन्यासों में जो संघर्ष उपस्थित हुआ है उसके मूल में आर्थिक विषमता न होकर मनुष्य की निजी समस्याएँ हैं, परिणामस्वरूप पारिवारिक जीवन के जो चित्र शरतचन्द्र के उपन्यासों में अंकित हुए हैं वे मर्मस्पर्शी, भावपूर्ण और रूमानी हैं। शरतचन्द्र ने कौटुम्बिक जीवन में प्रेम को अत्यधिक महत्त्व दिया है। अतः पारिवारिक जीवन की घुटनपूर्ण यातना को अस्वीकार कर जब कभी नारी ने विद्रोह किया है तो संघर्ष की उत्पत्ति हुई है। 'गृहदाह' सम्पूर्ण पारिवारिक जीवन का एक ऐसा ही चित्र है, जिसमें शरतचन्द्र ने दिखाया है कि पति में प्रेम के अभाव में किस प्रकार पारिवारिक जीवन छिन्न-भिन्न हो जाता है। 'अचला' (गृहदाह) ने स्पष्ट कहा है—"जिससे प्रेम नहीं है उसकी गृहस्थी चलाने के लिए मुझे तुम लोग यहाँ मत डाल जाओ।"[1] 'कमल' और 'शिवनाथ' (शेषप्रश्न) के सम्बन्ध में भी यही बात ध्वनित होती है। 'शिवनाथ' के साथ प्रेम के अभाव में 'कमल' उसके पारिवारिक जीवन को स्वीकार नहीं करती है।

शरतचन्द्र के उपन्यासों में कौटुम्बिक जीवन में संघर्ष और विषमताओं के प्रधान कारण भाभी, देवर, सास, बहू तथा देवरानी, जेठानी के पारस्परिक मनभेद हैं। 'मझली बहन' 'सुमति' में इस प्रकार के संघर्षों को स्पष्टतः देखा जा सकता है। 'चरित्रहीन', में 'किरणमयी' और उसकी सास 'अघोरमयी' के पारस्परिक मनभेद से सदैव कौटुम्बिक संघर्ष उपस्थित हुआ है।

...त्र के अन्तर्गत पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण भी संघर्ष की स्थिति

प्रेमचन्द के उपन्यासों में कौटुम्बिक संघर्ष प्रायः आर्थिक कठिनाइयों में उत्पन्न हुए हैं। 'कर्मभूमि' में पिता और पुत्र के बीच जो संघर्ष है उसका प्रमुख कारण धन-सम्पत्ति है। 'अमरकांत' (कर्मभूमि) को धन-सम्पत्ति में अगाध प्रेम है। 'अमरकान्त' (कर्मभूमि) अपने पिता के विचारों से सहमत नहीं है। परिणामतः पारिवारिक जीवन में कलह उत्पन्न हुई है—"मैंने सबको घर से निकाल दिया। मैंने धन इसलिए नहीं कमाया कि लोग मौज उड़ायें, जो धन को धन समझे वह मौज उड़ाये। जो धन को मिट्टी समझे उसे धन का मूल्य सीखना होगा।"[१८] 'सेवासदन' में 'गजाधर' के कौटुम्बिक संघर्ष और विषमता का कारण अर्थाभाव ही है। विवाह के पूर्व 'सुमन' (सेवासदन) का जीवन सुख और वैभव में बीता था, किन्तु धनाभाव से उसका विवाह उच्च घराने में न हो सका। 'गजाधर' के साथ 'सुमन' अपनी स्थिति को ठीक-ठीक न बैठा सकी। 'गजाधर' की आर्थिक हीनता के कारण ही उसका परिवार छिन्न-भिन्न हो गया। 'गबन' के विघटित कौटुम्बिक जीवन का भी यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। 'जालपा' का आभूषण-प्रेम और उच्चवर्गीय महिला 'रतन' से होड़ करने का आग्रह ही उसके कौटुम्बिक विशृंखलता का कारण बना है। 'जालपा' का पति 'रमानाथ' अपनी पत्नी की आवश्यकता की पूर्ति करने में अपने को असमर्थ पाता है। परिणामतः पति-पत्नी के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। 'रमानाथ' (गबन) संघर्ष को समाप्त करने के लिए ही गबन करता है। अपनी पत्नी के आभूषणों की चोरी भी करता है, पर इन सब में सफल न होने पर पलायन करता है।

पति-पत्नी के सामञ्जस्य के अभाव में भी कौटुम्बिक जीवन में संघर्ष उत्पन्न होता है। 'सुखदा' और 'अमरकान्त' (कर्मभूमि) के द्वारा प्रेमचन्द ने इसी ओर संकेत किया है। 'अमरकान्त' (कर्मभूमि) और 'सुखदा' (कर्मभूमि) के बीच सैद्धान्तिक मतभेद है। 'सुखदा' भोग-विलास को पसन्द करने वाली स्त्री है, किन्तु 'अमरकान्त' इसे पसन्द नहीं करता। इसी भावना को लेकर दोनों में मतभेद उत्पन्न होता है।

शरत्चन्द्र ने भी 'गृहदाह' में पति-पत्नी के सामञ्जस्य के अभाव में कौटुम्बिक संघर्ष उपस्थित किया है। 'महिम' की असाधारण गम्भीरता और उदासीनता 'अचला' (गृहदाह) के हृदय में अनिश्चित प्रेम और रोमान्स को उत्पन्न किया है जिसमें कौटुम्बिक जीवन छिन्न-भिन्न हुआ है। व्यक्ति के छिछोरेपन और सन्तुलन के अभाव में उत्पन्न पारिवारिक-संघर्ष का अंकन 'गोदान' में 'गोविन्दी' और 'खन्ना' के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। यहाँ प्रेमचन्द ने यह दिखाया है कि पुरुष की विलासिता के कारण पारिवारिक जीवन किस प्रकार दुःखद बन जाता है। 'गोविन्दी' और 'खन्ना' के बीच 'गोविन्दी' में असाधारण सहनशीलता है। 'मि० खन्ना' अपनी उच्छृंखल प्रवृत्तियों के कारण अपनी पत्नी को नगण्य समझते हैं।

स्पष्टतः ध्वनित होती है। शरतचन्द्र ने भी युग की परिस्थितियों से प्रभावित होकर समाज की नयी मान्यताओं का प्रतिपादन किया है। अतः यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों ही उपन्यासकार सामाजिक जीवन में परिवर्तन के पक्षपाती हैं। शरतचन्द्र ने अपने विचार को स्पष्ट करते हुए कहा है—"जो जाने को नहीं सो नहीं जायेंगे। मनुष्य की आवश्यकता के अनुसार फिर वे नवीन रूप, नवीन सौंदर्य, नवीन मूल्य लेकर दिखाई देंगे। यही होगा उनका सच्चा परिचय।"[७]

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में युगीन समस्याओं को व्यापक रूप में अपनाया है। शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों में समाज के मध्य व्यक्ति की परिस्थितियों का चित्रण किया है। इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में सम्पूर्ण युग के स्पन्दन को ध्वनित किया है। वस्तुतः प्रेमचन्द युग और युग की परिस्थितियों के कुशल कलाकार हैं।

शरतचन्द्र ने समाज की परम्परागत संस्थाओं पर दृष्टि रख कर उनका अपने उपन्यासों में चित्रण किया है, परिणामतः युग की समस्याओं की अपेक्षा कुटुम्ब और व्यक्ति उनके उपन्यासों के केन्द्र रहे हैं। व्यक्ति और कुटुम्ब के माध्यम से समाज को परखने का यह आग्रह निश्चित ही प्रेमचन्द की अपेक्षा सीमित है। किंतु शरतचन्द्र में दृष्टि की जो गहनता है उसमें उनके उपन्यासों में उनका सम्पूर्ण युग सिमट आया है। शरतचन्द्र की दृष्टि समाज के परिवर्तित मूल्यों की अपेक्षा परिवार के घुटनपूर्ण वातावरण की ओर अधिक रही है जिससे शरतचन्द्र के उपन्यासों में बंगाल के पारिवारिक जीवन का सूक्ष्म और अति सूक्ष्म चित्रण हुआ है।

टिप्पणियाँ

१. हंस (अप्रैल १९३२), पृ० ४०
२. माडर्न रिलीजस मूवमेंट इन इंडिया—डा० जे० एन० फर्कुहर, पृ० २८
३. कांग्रेस का इतिहास—डा० पट्टाभिसीतारमैया—खण्ड १, पृ० ६५
४. वही खण्ड—२, पृ० ३-४
५. सोशल बैक ग्राउण्ड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म—ए० आर० देसाई, पृ० १६५
६. भारतवर्ष और उसका स्वातन्त्र्य संग्राम—सुखसम्पतराय भंडारी, पृ० १३-१४
७. ऐन आटोबायग्राफी—पं० जवाहरलाल नेहरू, पृ० ४०

उत्पन्न होती है। शरत्चन्द्र ने 'बैकुठ का दानपत्र' मे इस प्रवृत्ति को स्पष्टत. अंकित किया है। 'गोकुल' के चरित्र द्वारा शरत्चन्द्र ने यह दिखाया है कि व्यक्ति का बडप्पन और उसकी गम्भीरता पारिवारिक जीवन को किस प्रकार सुखमय बना सकती है। 'गोकुल' का अपने विमातृ भाई 'विनोद' के प्रति सद्भाव उसके कौटुम्बिक जीवन को कारुणिक होने से बचा लेता है। सम्पत्ति के बटवारे को लेकर जो कलह 'विनोद' ने उत्पन्न की थी वह भी 'गोकुल' के सरल स्वभाव के कारण समाप्त हो जाता है।

'पंडित जी' मे पति-पत्नी मे कौटुम्बिक झगडो को शरत्चन्द्र ने सामाजिक स्तर पर उठाया है। 'कुसुम' और 'वृन्दावन' के मध्य झगडे का प्रमुख कारण धार्मिक एव सामाजिक रूढियाँ है। 'कुसुम' मे सस्कार पति को पुन. प्राप्त करने मे सदा बाधक हुए है। परिणामस्वरूप 'कुसुम' और 'वृन्दावन' दोनों ही पारिवारिक जीवन के सुख का अनुभव नही कर सके।

कहने का अभिप्राय यह है कि शरतचन्द्र ने कौटुम्बिक सघर्ष और विषमताओ के जो चित्र अपने उपन्यासो मे अकित किये हैं उनके द्वारा उन्होंने यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि कौटुम्बिक जीवन मे किन कारणो से सुख और शान्ति का अनुभव होता है। इसके साथ ही उन्होंने सुखमय कौटुम्बिक जीवन का प्रतिपादन भी किया है। 'शेषप्रश्न' को 'कमल' के द्वारा शरतचन्द्र ने सुखमय कौटुम्बिक जीवन की कामना को अभिव्यक्त किया है। 'श्रीकात' मे भी उन्होंने दिखाया है कि व्यक्तित्व की अपरिमेय शक्ति ने किस प्रकार 'राजलक्ष्मी' और 'श्रीकात' के जीवन-सम्बन्धो को मिला कर उनके कौटुम्बिक जीवन को प्लावित नही होने दिया। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि शरतचन्द्र ने समाज-शक्ति के उत्पीडन को भी कौटुम्बिक जीवन के सघर्ष का कारण माना है। 'अरक्षणीया', 'बाम्हन की बेटी' और 'ग्रामीण-समाज' मे कौटुम्बिक जीवन पर होने वाले समाज के कुठाराघातो की तीव्र आलोचना शरतचन्द्र ने की है। 'बाम्हन की बेटी' मे 'ज्ञानदा' और 'अतुल' के सम्बन्धो को लेकर शरतचन्द्र ने पारिवारिक कलह और अशान्ति का मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। वस्तुत. 'ज्ञानदा' (अरक्षणीया) के परिवार की करुणा का कारण समाज का निर्मम आघात ही है जो 'अतुल' के द्वारा साकार हुआ है।

प्रत्येक युग मे दो प्रकार की समस्याएँ होती हैं—बाह्य और आन्तरिक। मनुष्य का चिन्तन जिस स्वरूप को ग्रहण करता है उसमे सामयिक रग भी अवश्य होता है। नि सन्देह विगत युग की क्रान्तियो, परिवर्तनों और सुधारो का प्रभाव प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के चिन्तन पर भी पडा है। यही कारण है कि इनकी कृतियो मे युग-जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। प्रेमचन्द समाजवाद का समर्थन भले ही न करें, किंतु समाजवादी समाज की कल्पना वे अवश्य करते है। प्रेमचन्द की कृतियों मे

स्पष्टत ध्वनित होती है। शरतचन्द्र ने भी युग की परिस्थितियो से प्रभावित होकर समाज की नयी मान्यताओं का प्रतिपादन किया है। अत यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनो ही उपन्यासकार सामाजिक जीवन मे परिवर्तन के पक्षपाती हैं। शरतचन्द्र ने अपने विचार को स्पष्ट करते हुए कहा है—"जो जाने को नही सो नही जायेंगे। मनुष्य की आवश्यकता के अनुसार फिर वे नवीन रूप, नवीन सौंदर्य, नवीन मूल्य लेकर दिखाई देंगे। यही होगा उनका सच्चा परिचय।"[¹]

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो मे युगीन समस्याओं को व्यापक रूप मे अपनाया है। शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासो मे समाज के मध्य व्यक्ति की परिस्थितियो का चित्रण किया है। इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों मे सम्पूर्ण युग के स्पन्दन को ध्वनित किया है। वस्तुत प्रेमचन्द युग और युग की परिस्थितियों के कुशल कलाकार हैं।

शरतचन्द्र ने समाज की परम्परागत सस्थाओ पर दृष्टि रख कर उनका अपने उपन्यासो मे चित्रण किया है, परिणामत युग की समस्याओं की अपेक्षा कुटुम्ब और व्यक्ति उनके उपन्यासो के केन्द्र रहे है। व्यक्ति और कुटुम्ब के माध्यम से समाज को परखने का यह आग्रह निश्चित ही प्रेमचन्द की अपेक्षा सीमित है। किंतु शरतचन्द्र में दृष्टि की जो गहनता है उसमे उनके उपन्यासो मे उनका सम्पूर्ण युग सिमट आया है। शरतचन्द्र की दृष्टि समाज के परिवर्तित मूल्यो की अपेक्षा परिवार के घुटनपूर्ण वातावरण की ओर अधिक रही है जिससे शरतचन्द्र के उपन्यासों मे बगाल के पारिवारिक जीवन का सूक्ष्म और अति सूक्ष्म चित्रण हुआ है।

उत्पन्न होती है। शरतचन्द्र ने 'वैकुंठ का दानपत्र' से इस प्रकृति को स्पष्टतः अंकित किया है। 'गोकुल' के चरित्र द्वारा शरतचन्द्र ने यह दिखाया है कि व्यक्ति का बड़प्पन और उसकी गम्भीरता पारिवारिक जीवन को किस प्रकार सुखमय बना सकती है। 'गोकुल' का अपने विमातृ भाई 'विनोद' के प्रति सद्भाव उसके कौटुम्बिक जीवन को दारुणिक होने से बचा लेता है। सम्पत्ति के बटवारे को लेकर जो कलह 'विनोद' ने उत्पन्न की थी वह भी 'गोकुल' के सहज स्वभाव के कारण समाप्त हो जाता है।

'पंडित जी' में पति-पत्नी के कौटुम्बिक झगडों को शरतचन्द्र ने सामाजिक स्तर तक उठाया है। 'कुसुम' और 'वृन्दावन' के मध्य झगडे का प्रमुख कारण धार्मिक एवं सामाजिक रूढ़ियाँ हैं। 'कुसुम' के संस्कार पति को पुनः प्राप्त करने में सदा बाधक हुए हैं। परिणामस्वरूप 'कुसुम' और 'वृन्दावन' दोनों ही पारिवारिक जीवन के सुख का अनुभव नहीं कर सके।

कहने का अभिप्राय यह है कि शरतचन्द्र ने कौटुम्बिक संघर्ष और विषमताओं के जो चित्र अपने उपन्यासों में अंकित किये हैं उनके द्वारा उन्होंने यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि कौटुम्बिक जीवन में किन कारणों से सुख और शान्ति का अनुभव होता है। इसके साथ ही उन्होंने सुखमय कौटुम्बिक जीवन का प्रतिपादन भी किया है। 'शेषप्रश्न' की 'कमल' के द्वारा शरतचन्द्र ने सुखमय कौटुम्बिक जीवन की कामना को अभिव्यक्त किया है। 'श्रीकांत' में भी उन्होंने दिखाया है कि व्यक्तित्व की अपरिमेय शक्ति ने किस प्रकार 'राजलक्ष्मी' और 'श्रीकांत' के जीवन-सम्बन्धों को मिला कर उनके कौटुम्बिक जीवन को प्लावित नहीं होने दिया। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि शरतचन्द्र ने समाज-शक्ति के उत्पीडन को भी कौटुम्बिक जीवन के संघर्ष का कारण माना है। 'अरक्षणीया', 'बाम्हन की बेटी' और 'ग्रामीण-समाज' में कौटुम्बिक जीवन पर होने वाले समाज के कुठाराघातों की तीव्र आलोचना शरतचन्द्र ने की है। 'बाम्हन की बेटी' में 'ज्ञानदा' और 'अतुल' के सम्बन्धों को लेकर शरतचन्द्र ने पारिवारिक कलह और अशान्ति का मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। वस्तुतः 'ज्ञानदा' (अरक्षणीया) के परिवार की करुणा का कारण समाज का निर्मम आघात ही साकार हुआ है।

प्रत्येक युग में दो प्रकार की समस्याएँ होती हैं ...
मनुष्य का चिन्तन जिस स्वरूप को ग्रहण करता है ...
होता है। निःसन्देह विगत युग की क्रान्तियाँ, परिवर्तनों
और शरतचन्द्र के चिन्तन पर भी पड़ा है। यहाँ ...
जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। प्रेमचन्द ...
समाजवादी समाज की कल्पना वे अवश्य करने

३

लोक-संस्कृति और नवचेतना

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की संस्कृति सम्बन्धी धारणाओं को तत्कालीन भारत की सांस्कृतिक स्थिति और उनके उपन्यासों में वर्णित 'सांस्कृतिक संकट' दोनों आधारों पर समझा जा सकता है। भारतीय संस्कृति की मध्यकालीन धारा में पुनर्जागरण की जो सांस्कृतिक और राजनैतिक कोशिशें हुई हैं उन्हें भी इस संदर्भ में भूला नहीं जा सकता इसीलिए मध्यकाल से आधुनिक काल में भारतीय 'शासक' की सत्ता का परिवर्तन या हस्तान्तरण सामन्तवाद से पूंजीवाद की यात्रा का ही नहीं अपितु शुद्धतावादी संस्कृति का मिश्रित संस्कृति में प्रत्यान्तरण भी है। गहराई से देखा जाय तो प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की कथावृत्तियों में वह विलुप्त सूत्र बहुत ही मार्मिक प्रतिरूप में अभिव्यक्त हुआ है। सांस्कृतिक संचरण की यह यात्रा, प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की औपचारिक शिल्प की ही यात्रा नहीं, उस मानवीय संवेदन की भी यात्रा है जो स्वाधीनता की लड़ाई के पूरे समय में एक व्यापक समूह की 'मानसिकता' बनी है।

बीसवीं सदी में भारतीय संस्कृति का विकास राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ हुआ। रूस पर जापान की विजय एशियाई देशों के लिए एक महत्त्वपूर्ण घटना सिद्ध हुई। एशिया के अन्य देशों ने यह अनुभव किया कि वैज्ञानिक साधनों की उपलब्धि कर लेने पर योरुप का सामना आसानी से किया जा सकता है। भारत भी इस विचारधारा से प्रभावित हुआ। भारतीयों में भी आत्म-सम्मान की भावना प्रबल हुई और अपनी प्रत्येक बात पर गर्व करने की भावना का विकास हुआ।' सन् १९०५ के बंग-भंग आन्दोलन ने राष्ट्रीय चेतना की चिंगारी को और अधिक उद्दीप्त किया। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय जागृति के साथ-साथ अपनी संस्कृति के महत्त्व की ओर पुनः ध्यान आकृष्ट होने लगा। भारत में अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के सूत्रपात होने के परिणामस्वरूप भारतीयों को विदेशी विचारों और उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों से अवगत होने का अधिक अवसर प्राप्त हुआ। विज्ञान की इस उन्नति ने आवागमन की सुविधाएँ उत्पन्न कर दीं जिससे अन्तर्प्रान्तीय संस्कृतियों से परिचित होने तथा विचार-विनिमय करने के अनेक अवसर प्राप्त हुए।

३

लोक-संस्कृति और नवचेतना

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की संस्कृति सम्बन्धी धारणाओं को तत्कालीन भारत की सांस्कृतिक स्थिति और उनके उपन्यासों में वर्णित 'सांस्कृतिक संकट' दोनों आधारों पर समझा जा सकता है। भारतीय संस्कृति की मध्यकालीन धारा में पुनर्जागरण की जो सांस्कृतिक और राजनैतिक क्रान्तियाँ हुई हैं उन्हें भी इस संदर्भ में भूला नहीं जा सकता इसीलिए सामन्तवाद से आधुनिक काल में भारतीय 'शासक' की सत्ता का परिवर्तन या हस्तान्तरण सामन्तवाद से पूँजीवाद की यात्रा का ही नहीं अपितु शुद्धतावादी संस्कृति का मिश्रित संस्कृति में प्रत्यारोपण भी है। गहराई से देखा जाय तो प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की कथाकृतियों में यह विलुप्त सूत्र बहुत ही मार्मिक प्रतिबिम्ब में अभिव्यक्त हुआ है। सांस्कृतिक संक्रमण की यह यात्रा, प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की औपचारिक शिल्प की ही यात्रा नहीं, उस मानवीय संवेदन की भी यात्रा है जो स्वाधीनता की लड़ाई के पूरे समय में एक व्यापक समूह की 'मानसिकता' बनी है।

बीसवीं सदी में भारतीय संस्कृति का विकास राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ हुआ। रूस पर जापान की विजय एशियाई देशों के लिए एक महत्वपूर्ण घटना सिद्ध हुई। एशिया के अन्य देशों ने यह अनुभव किया कि वैज्ञानिक साधनों की उपलब्धि कर लेने पर योरप का सामना आसानी से किया जा सकता है। भारत भी इस विचारधारा से प्रभावित हुआ। भारतीयों में भी आत्म-सम्मान की भावना प्रबल हुई और अपनी प्रत्येक बात पर गर्व करने की भावना का विकास हुआ।[1] सन् १६०५ के बंग-भंग आन्दोलन ने राष्ट्रीय चेतना की चिंगारी को और अधिक उद्दीप्त किया। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय जागृति के साथ-साथ अपनी संस्कृति के महत्व की ओर पुनः ध्यान आकृष्ट होने लगा। भारत में अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के सूत्रपात होने के परिणामस्वरूप भारतीयों को विदेशी विचारों और उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक संगठनों से अवगत होने का अधिक अवसर प्राप्त हुआ। विज्ञान की द्रुत उन्नति ने आवागमन की सुविधाएँ उत्पन्न कर दीं जिससे अन्तर्प्रान्तीय संस्कृतियों से परिचित होने तथा विचार-
के अनेक अवसर प्राप्त हुए।

बीसवीं शताब्दि का प्रारम्भिक काल भारत के इतिहास में अत्यन्त उथल-पुथल का रहा है। एक ओर नवीन सांस्कृतिक परिस्थितियों का प्रभाव परिलक्षित होने लगा था तथा दूसरी ओर प्राचीन भारतीय संस्कृति का ह्रास भी हो रहा था। गांधी ने समकालीन वायसराय को लिखित अपने पत्र (२ मार्च १९३०) में सांस्कृतिक ह्रास का स्पष्ट उल्लेख किया है —"राजनीतिक दृष्टि से हमारी स्थिति गुलामों से अच्छी नहीं है। हमारी संस्कृति की जड़ ही खोखली कर दी गई है।"[1]

पाश्चात्य संस्कृति एक ऐसी चमकदार टोपी थी जिसके प्रति लोगों का असीमित आकर्षण था तथा जिसे कुछ लोग पहनने का प्रयास करते थे किन्तु वह ठीक बैठ नहीं पाती थी। परिणामस्वरूप पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावों से आक्रान्त वर्ग दोष-मुक्त नहीं रह गया। प्राचीनता का अकारण विरोध ईर्ष्या-द्वेष तथा दिखावे की प्रवृत्ति से तथा-कथित नया वर्ग आक्रान्त हो गया। उस वर्ग के व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं को छोड़ बैठे तथा व्यंग्य और उपहास करके उन्हें उपेक्षित दृष्टि से देखने लगे।

उपन्यास व्यापक स्तर पर सांस्कृतिक जीवन को व्यक्त करने में समर्थ होता है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र आधुनिक उपन्यासकार हैं अतः युगीन सांस्कृतिक परिस्थितियों का प्रभाव उनकी कृतियों में निश्चित रूप से बिम्बित हुआ है। ऐतिहासिक पुनर्जागरण के समय संस्कृति का जो स्वरूप था उसी आधार पर दोनों लेखकों की रचनाओं में सांस्कृतिक परिस्थितियों को देखा जा सकता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव संघर्ष के रूप में नहीं प्रस्तुत हुआ है। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियों को लेकर प्रेमचन्द के मन में संघर्ष भी नहीं है। प्रेमचन्द स्पष्ट रूप से भारतीय संस्कृति के समर्थक थे। यह बात प्रेमचन्द के प्रत्येक उपन्यास में ध्वनित हुई है। इसी कारण प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति का चित्रण संघर्ष के रूप में प्रस्तुत न होकर, विरोध में हुआ है। भारतीय संस्कृति के सामने, पाश्चात्य संस्कृति की त्रुटियों, उसकी स्वतन्त्रताओं को तथा उसके दोषों को प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचन्द को अपने उपन्यासों में जब कभी अवसर मिला है पाश्चात्य संस्कृति का विरोध किया है। परिणामस्वरूप प्रेमचन्द में भारतीय संस्कृति के सच्चे स्वरूप की अवतारणा हुई है। 'गोदान' की 'मालती' के माध्यम से पाश्चात्य संस्कृति की चपलता तथा भौतिकता को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। वस्तुतः 'गोदान' के नागरिक जीवन के चित्रण में प्रेमचन्द ने पाश्चात्य संस्कृति की दुर्बलताओं को ही अंकित किया है।

प्रेमचन्द में अपनी संस्कृति के प्रति असीमित आस्था और विश्वास है। अर्थ पर आधारित पाश्चात्य संस्कृति का समर्थन प्रेमचन्द नहीं करते। धन, समाज और संस्कृति को प्रगति देने में साधक अवश्य है किन्तु जिस संस्कृति का आधार धन होगा,

छोड़ उन्हें पहचाना भी नहीं जाता।

शरतचन्द्र ने 'नवविधान' में योरोपीय संस्कृति के प्रभाव का विरोध किया है। इसमें इस लघु उपन्यास में शरतचन्द्र ने समाज की उस वास्तविकता की ओर संकेत किया है जिसे समाज के कुछ शिक्षित व्यक्ति विदेशी चश्मा लगाकर अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं को उपेक्षित कर देते हैं। योरोपीय संस्कृति से प्रभावित वर्ग अपनी संस्कृति को एक कोने में डाल दम्भ, दिखावा और बनावटीपन का शिकार बन जाता है किन्तु उस वर्ग में कितनी विकृतियाँ हैं उसे शरतचन्द्र ने उद्घाटित किया है। शरतचन्द्र ने 'ऊषा' के माध्यम से भारतीय संस्कृति की भावमय झाँकी प्रस्तुत की है जिससे स्पष्ट होता है कि शरतचन्द्र की भारतीय संस्कृति पर कितनी आस्था है।

'विप्रदास' में भी शरतचन्द्र ने भारतीय संस्कृति के महत्त्व और उसके गौरव को प्रतिष्ठित किया है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के बीच से 'वंदना' को निकाल कर शरतचन्द्र ने पाश्चात्य संस्कृति पर भारतीय संस्कृति के महत्त्व को अंकित किया है। प्रस्तुत उपन्यास में शरतचन्द्र ने पाश्चात्य संस्कृति से आक्रान्त समाज की विकृतियों को अनावृत किया है। 'वंदना' की मौसी का समाज पाश्चात्य संस्कृति की जिन सतही मान्यताओं पर आधारित है, शरतचन्द्र ने उसका विरोध किया है। शरतचन्द्र ने 'वंदना' को उस वर्ग से निकाल कर भारत की प्राचीन संस्कृति पर विश्वास करने वाले 'विप्रदास' के सम्पर्क में ला उपस्थित किया है। 'विप्रदास' के द्वारा भारतीय संस्कृति का समर्थन शरतचन्द्र ने अत्यन्त सुदृढ़ शब्दों में किया है—"संसार के साधारण नियमों को सिर्फ मानती हो तुम लोग उनके व्यतिक्रम को नहीं मानना चाहती। और मजा यह कि इस व्यतिक्रम के बल पर ही टिका हुआ है धर्म, टिका हुआ है पुरुष, काव्य साहित्य, अविचलित श्रद्धा और विश्वास, सब-कुछ। इसके न रहने से तो पृथ्वी बिलकुल मरुभूमि हो जाती है। इस सत्य को तुम आज तक नहीं जानती।"[१]

भारत की परम्परागत संस्कृति का यथार्थ रूप गाँवों में ही सुरक्षित रहा है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों में लोक-संस्कृति के अनेक चित्र अंकित हुए हैं किन्तु दोनों उपन्यासकारों के चित्रण में अन्तर है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में ग्रामीण समाज की सांस्कृतिक परम्पराओं का चित्रण नवीन प्रभावों से युक्त है किन्तु शरतचन्द्र के ग्रामीण समाज के सांस्कृतिक जीवन में नवीन की छाया नहीं है। साथ ही प्रेमचन्द में लोक-संस्कृति के प्रति असीमित श्रद्धा और सहानुभूति है। शरतचन्द्र में ऐसा नहीं है। शरतचन्द्र के कथानक गाँव के वातावरण से कम सम्बंधित रहे हैं। ...ी कारण है कि लोक-संस्कृति का चित्रण भी शरतचन्द्र के उपन्यासों में कम ...ा है। दोनों उपन्यासकारों की कृतियों में इसे विस्तार से देखा जा सकता है।

...स्वभाव से ग्रामीण है। उनकी सहानुभूति भी ग्रामीण से है। यही कारण

भारतीय संस्कृति की स्थापना मे सलग्न दिखाई पड़ते है।

शरतचन्द्र के विचारो का यह द्वद्व उनके 'शेषप्रश्न' उपन्यास मे स्पष्टत अभिव्यक्त हुआ है। 'कमल' के माध्यम से शरतचन्द्र ने भारतीय संस्कृति की तीव्र आलोचना की है तथा 'आशुबाबू' के द्वारा भारतीय संस्कृति का अत्यंत शालीनता के साथ समर्थन किया है। 'कमल' ने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहा है—"पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान और सभ्यता के सामने भारतवर्ष को आज अगर नीचा देखना पड़े तो उसमे उसके दम्भ को चोट जरूर पहुँचेगी, किन्तु यह मैं निश्चय से कह सकती हूँ कि उसमे उनके कल्याण को चोट न पहुँचेगी।"[१] 'कमल' के विचारो पर सम्पूर्ण उपन्यास मे कही गहरा आघात 'आशुबाबू' ने नही किया है किंतु 'कमल' के दृष्टिकोण को भी उन्होंने नही स्वीकार किया है इसका कारण 'आशुबाबू' ने स्वय बताया है—"सत्य का मूलगत संस्कार तुम्हारे और मेरे जीवन का एक नही है।"[२] इस प्रकार 'आशुबाबू' ने अत्यन्त सयत रूप से अपने दृष्टिकोण की भिन्नता को व्यक्त किया है। साथ ही यदि कही 'कमल' के विचारो का समर्थन किया है तो उसी के लिए। एक अन्य स्थल पर 'आशुबाबू' ने 'कमल' के विचारो का खण्डन बड़ी युक्ति से किया है। 'कमल' के सम्पूर्ण दृष्टिकोण से पाश्चात्य संस्कृति की सराहना हुई है। 'आशुबाबू' ने अवसर पड़ने पर एक बार 'कमल' से कहा है—"तुमसे मुझे एक वास्तविक तत्त्व का पता लगा कमल। अनुकरण से मुक्ति नही मिलती, मुक्ति मिलती है ज्ञान से।"[३]

भारत और योरप की संस्कृतियों को लेकर शरतचन्द्र के मन मे जो संघर्ष था उसका समाधान वे 'शेषप्रश्न' मे नही कर सके है। 'शेषप्रश्न' मे शरतचन्द्र योरपीय संस्कृति से प्रभावित और भ्रान्त प्रतीत होते है। किन्तु पाश्चात्य संस्कृति का समर्थन शरतचन्द्र का लक्ष्य नही है। वस्तुत शरतचन्द्र मे भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था है। योरपीय संस्कृति के प्रभाव से नितान्त मुक्त न होने पर भी योरप के प्रभाव का विरोध किया है। प्रेमचन्द की भांति शरतचन्द्र ने भी पाश्चात्य संस्कृति की उपलब्धियों को स्वीकार किया है किन्तु पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण तथा उसकी गलत मान्यताओं का विरोध किया है। इस बात के समर्थन के लिए शरतचन्द्र के एक निबंध को उद्धृत किया जा सकता है—"एक दिन हमारे देश के लोगों के एक दल ने बिना विचारे यह मत बना लिया था कि ठीक उन लोगों की तरह बने बिना अब हमारी मुक्ति न होगी। उनमे जाति-भेद नही है अतएव वह उठा देना चाहिए। उनमे स्त्रियों की स्वाधीनता है अतएव उसके बिना काम ही नही चल सकता, उनके यहाँ खाने-पीने का कोई विचार या परहेज नही है, अतएव उसे उठा दिये बिना हमारी उन्नति नही है अतएव हमारे यहाँ अत्यन्त आवश्यक है। इसी तरह से है। केवल शरीर का चमड़ा बदलने का कोई उपाय उन्होंने नही ढूँ

'गोदान' में 'होरी' भी 'साहुयादन' में हँसी-मजाक करता है। 'होरी' दूसरों को शीघ्र ही अपने विश्वास में ले लेता है। 'सूरदास' में भी यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। ऐसी प्रवृत्तियाँ ग्रामीणों की सुरुचि की परिचायक हैं। ग्रामीण बालकों में हास्य का आनन्द लेने की प्रवृत्ति का वर्णन भी प्रेमचन्द ने किया है। प्राय: अन्धे बालकों के लिए विनोद की वस्तु हुआ करते हैं। 'सूरदास' को पीडित करने में 'घीसू' को आनंद आता है—"मगर बजरंगी का लडका घीसू इतना दुष्ट था कि सूरदास को छेड़ने के लिए घडी-भर रात रहते ही उठ पडता। उसकी लाठी छीनकर भागने में उसे बड़ा आनंद मिलता था।" इसी प्रकार बालक कभी-कभी किसी व्यक्ति-विशेष को अपना लक्ष्य बनाकर उसके सम्बंध में कुछ तुक मिलाकर पद-रचना कर लेते हैं और फिर उसी व्यक्ति के समक्ष गा-गा कर उसे चिढ़ाते हैं। 'मिठुआ' और 'घीसू' दोनों ही अपने सरस गान से 'जगधर' और 'भैरो' को चिढ़ाते रहते हैं—

(१) "लालू का लाल मुँह, जगधर का काला,
जगधर तो हो गया लालू का साला।
(२) भैरो, भैरो ताड़ी बेच,
या बीवी की साड़ी बेच।"

ग्रामीणों के जीवन में सांस्कृतिक रुचियों की विविधता उनके उत्सव और पर्वों में प्राय: अभिव्यक्त होती है। कठिनाइयों से पूर्ण ग्रामीणों के जीवन में सांस्कृतिक उल्लास के अनेक चित्र प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में खींचे हैं। लोक-संस्कृति की ओर संकेत करते हुए प्रेमचन्द ने स्वयं लिखा है—"देहातों में साल के छ: महीने किसी-न-किसी उत्सव में ढोल-मजीरा बजता रहता है। होली के एक महीना पहले से एक महीना बाद तक फाग उड़ती है, आषाढ़ लगते ही आल्हा शुरू हो जाता है और सावन-भादों में कजलियाँ होती हैं। कजलियों के बाद रामायण-गान होने लगता है। सेमरी भी अपवाद नहीं है। महाजन की धमकियाँ और कारिंदे की बोलियाँ इस समारोह में बाधा नहीं डाल सकतीं। घर में अनाज नहीं है, कोई परवाह नहीं। जीवन की आनन्द-वृत्ति तो दबाई नहीं जा सकती, हँसे बिना तो जिया नहीं जा सकता।" यहाँ यह देखा जा सकता है कि अभाव और दरिद्रता में भी गाँव के लोग अपने जीवन में कितना रस बनाये रखते हैं। होली के त्यौहार और फागुन की चहल-पहल का चित्रण प्रेमचन्द ने अनेक स्थलों पर किया है—"फागुन का महीना आया, ढोल-मजीरे की आवाजें कानों में आने लगीं। कहीं रामायण की मण्डलियाँ बनीं, कहीं फाग और चौताल का बाजार गर्म हुआ। पेड़ों पर कोयल कूकी, घरों में [illegible] लगी। सारा संसार मग्न है, कोई राग में कोई रंग में।" [illegible] उल्लास से पूर्ण जीवन, ग्रामीणों के लिए [illegible] है। [illegible]
[illegible], ग्रामीणों के उत्सव के [illegible]

है कि प्रेमचन्द के उपन्यासों में लोक-संस्कृति के विभिन्न रूप अंकित कि
अंकित हुए हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों में अलाव तापने और गप करने के केन्द्र के
जा सकता है। ऐसे केन्द्रों पर एक दूसरे की निन्दा करने, अनुत्तरदायित्वपूर्ण
करने, गाँव की दिन-प्रति-दिन की घटनाओं पर चर्चा करने तथा परस्पर हास्य
और विनोद करने की प्रवृत्ति, ग्रामीणों में प्राय: देखी जाती है। प्रेमचन्द के उप
में ग्रामीण संस्कृति के ऐसे चित्र अंकित हुए हैं—"सन्ध्या हो गई है। दिन-भर के
मांदे बैल खेत से आ गये हैं। घरों में धुएं के बादल उठने लगे। लखनपुर में
परगने के हाकिम की पड़ताल थी। गाँव के नेतागण दिन-भर उनके घोड़े के पीछे
दौड़ते रहे थे। इस समय वह अलाव के पास बैठे हुए नारियल पी रहे हैं और हा
के चरित्र पर अपना-अपना मत प्रकट कर रहे हैं।"[१]

पाडेपुर में 'ठाकुरदीन', 'दयागिरि', 'भैरों', 'नायकराम', 'बजरंगी' और सुभा
शाम को केवल भजन करने के लिए ही नहीं एकत्रित होते वरन् एक दूसरे की नि
करने और गाँव में दिन-भर में होने वाली घटनाओं की टीका-टिप्पणी के लि
इकट्ठे होते हैं, जहाँ हास्य, व्यंग्य और मजाक भी होता है—"नायकराम तुम भैरों
धमकाते क्या हो? क्या कोई भगोड़ा समझ लिया है? तुमने जब दण्ड मारे थे,
तब मारे थे, अब तुम वह नहीं हो। आजकल भैरों की दुहाई है।

भैरों नायकराम के व्यंग्य हास्य पर झल्लाया नहीं, हँस पड़ा। व्यंग्य में ति
नहीं था, रस था। रसिकता मर कर रस हो जाती है।

की दरिद्रता, अभाव और जमीदारो के आतक की ओर स्पष्ट सकेत किया है (देखिये 'गोदान', पृ० २२७)। शरतचन्द्र के उपन्यासो मे ग्रामीण सास्कृतिक जीवन मे यह सघर्ष नही पाया जाता।

शरतचन्द्र के उपन्यासो मे प्रेमचन्द के उपन्यासो की भाति लोक-सस्कृति के विविध रूप नही अकित हुए हैं। इसका कारण है। शरतचन्द्र की दृष्टि कुलीन-वर्ग और मध्यवर्ग की समस्याओ को अकित करने की ओर रही है, ग्रामीण-समाज की विभिन्न स्थितियों पर अधिक विचार नही किया गया है। इसी से शरतचन्द्र के उपन्यासो मे लोक-सस्कृति का चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यासो की तरह विविध रूपो मे नही हुआ है। 'ग्रामीण-समाज' के अतिरिक्त 'श्रीकान्त' और 'पण्डित जी' मे कही-कही बगाल की लोक-सस्कृति की झलक देखी जा सकती है। गांव के लोगो के रहन-सहन तथा उनके घरो का उल्लेख करते हुए शरतचन्द्र ने लिखा है—"कुसुम को नित्य तडके उठ कर घर के काम करने पडते। सारा घर और आगन गोबर से लीपना पडता, आगन खूब अच्छी तरह से बुहार कर साफ करना पडता, नदी मे स्नान करके जल भर लाना पडता और तब अपने भाई के लिए रसोई बनानी पडती।"[१६]

लोक-सस्कृति के सदर्भ मे ग्रामीणो की अनेक प्रवृत्तियो को शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासो मे व्यक्त किया है। ग्रामीणो मे झूठी गवाही देना, अवसर पडने पर चाटु-कारिता करना तथा भोजो मे खाने के लिए अत्यधिक उत्साह प्रदर्शित करने की आदतो को यहा प्रस्तुत उद्धरणो मे देखा जा सकता है। "अब धर्मदास ने जी-जान लडा कर अपनी खासी रोकी और चिढ कर कहा—गोविन्द, क्यों व्यर्थ की बकवाद करते हो। खक् खक् खक्। मैं कोई आज का तो हूं ही नही। क्या नहीं जाना ? उस साल गवाही देने की बात चलाने पर तुमने कहा कि मेरे पैर मे जूता नहीं है, मैं नगे पैर कैसे चलूंगा ? खक् खक् खक्। तारिणी भइया ने तुरन्त ढाई रुपये निकाल कर एक जोडा नया जूता खरीदवा दिया और फिर तुम वही जूता पहन कर वेणी की तरफ से गवाही दे आये। खक् खक् खक्।"[१७]

"इतना कह कर गोविन्द ने उनके हाथ मे हुक्का थमा दिया। दीनू भट्टाचार्य ने आसन ग्रहण करके जले हुए हुक्के से व्यर्थ ही दो कश खींच कर कहा—अरे भाई, मैं तो यहाँ था ही नही। तुम्हारी बहू को लाने के लिए उसके बाप के घर गया था। भइया कहाँ है ? सुना है कि बहुत बडा आयोजन हो रहा है। रास्ते मे उस गाँव के बाजार से सुनता आ रहा हू कि सब को भिगोने भिगोने के बाद छोटे-बडे सबके हाथ मे सोलह-सोलह पूरियाँ और चार-चार जोडी सन्देश भी दिये जायेंगे।"[१८]

गाव की नारियो का सरल व्यवहार तथा हृदय-[illegible] भावना भी लोक-सस्कृति का अग है। 'श्रीकान्त' मे कुलटा-कुलीनो के विवाह से [illegible]

सास्कृतिक वातावरण के बीच भी उनके सघर्षमय जीवन की ओर संकेत कर ही दिया। वस्तुत प्रेमचन्द के उपन्यासो का 'किसान' जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे सघर्ष करते है। अत सास्कृतिक परिवेश में भी किसानों के संघर्ष से भरे हुए जीवन की झाँकी देखी जा सकती है।

ग्राम-समाज मे ऋतु-अनुकूल पर्वों और सांस्कृतिक उत्सवों का बहुविध [illegible] है। लोक-संस्कृति के इन चित्रो द्वारा प्रेमचन्द ने ग्रामीणों की सुरुचि-सम्पन्नता की ओर भी सकेत किया है। फागुन में यदि ढोल और मंजीरा अधिक बजता है तो बरसात [illegible] आयोजन उससे भिन्नता लिये हुए रहता है। बरसात की ऐसी ही सुरम्य झाँकी प्रेमचन्द ने निम्नांकित उद्धरण में खींची है—"बरसात का दिन है, सावन का महीना। आकाश में सुनहरी घटाएँ छाई हुई हैं। रह-रहकर रिम-झिम वर्षा होने लगती है। अभी तीसरा पहर है, पर ऐसा मालूम हो रहा है, शाम हो गयी। आमों के बाग में झूला पड़ा हुआ है। लड़किया भी झूल रही हैं और उनकी माताएं भी। दो-चार झूल रही हैं, दो-चार झुला रही हैं। कोई कजली गाने लगती है, कोई बारहमासा। इस ऋतु मे महिलाओ की बाल-स्मृतिया भी जाग उठती हैं। ये फुहारें मानो चिन्ताओं को हृदय से धो डालती हैं। सबके हिये उमगों से भरे हुए हैं। धानी साड़ियो ने प्रकृति की हरियाली से नाता जोड़ा है।"[१]

यहा एक बात पर विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रेमचन्द के उपन्यासो मे लोक-सस्कृति का जो चित्रण है वह सम्पूर्ण भारत का न होकर उत्तर प्रदेश का ही है। भारत मे सभी प्रदेशो की भिन्न-भिन्न सामाजिक प्रथायें है। उन सामाजिक प्रथाओ एव परम्पराओ पर आधारित उन प्रदेशो का सास्कृतिक जीवन भी भिन्न है। बगाल की सामाजिक प्रथायें उत्तर प्रदेश की सामाजिक परम्पराओं से भिन्न हैं। अतः यह नही कहा जा सकता कि लोक-संस्कृति का जो स्वरूप उत्तर प्रदेश के गावों में पाया जाता है वही बगाल मे भी है। ऐसी स्थिति मे प्रेमचन्द को सम्पूर्ण भारतीय ग्राम्य सस्कृति का प्रतिनिधि उपन्यासकार भी नही कहा जा सकता। इसके साथ ही सम्बद्ध प्रत्येक प्रदेश की शासन-व्यवस्था मे कुछ अन्तर रहा है। बगाल मे भूमि का स्थायी बन्दोबस्त रहा है तथा उत्तर प्रदेश मे इजारा प्रथा का प्रचलन रहा है। इस [illegible] [illegible] व्यवस्था ने दोनो प्रदेशों के किसान-जीवन एव ग्राम्य-जीवन की [illegible] भिन्नता पैदा की है। स्थायी बन्दोबस्त के कारण बगाल मे किसान और जमींदार के बीच सघर्ष के अधिक अवसर ही नहीं उत्पन्न हुए हैं। उत्तर प्रदेश मे इजारा [illegible] के कारण जमींदारों और किसानों के बीच सतत् सघर्ष हुआ है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों में भी यह अन्तर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। प्रेमचन्द ने भारतीय [illegible] सस्कृति के चित्रण मे ग्रामीणों के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

जीवन स्पष्ट अंकित हुआ है—"गँवई-गाँव में, खास कर ऐसे सुदूर गाँव में, किसी स्त्री के मुँह से इस तरह की सहज-सुन्दर स्वाभाविक बातें सुनने की मैंने कल्पना भी न की थी। और कभी स्वप्न में भी यह बात न सोची थी कि अब भी, इस गँवई-गाँव में भी इससे बढ़ कर एक और बहुत आश्चर्यजनक नारी का परिचय मिलना बाकी है। मेरे भोजन परोसने का भार अपनी विधवा कन्या को सौंप कर कुमारी-गृहिणी पंखा हाथ में लिए मेरे सामने आकर बैठी थी। शायद उमर में मुझसे बहुत बड़ी होने के कारण माथे पर पल्ले के सिवा उनके मुँह पर किसी तरह का परदा नहीं था। वह सुन्दर था या असुन्दर, मुझे कुछ मालूम नहीं, सिर्फ इतना ही मालूम हुआ कि वह साधारण भारतीय माता के समान स्नेह और करुणा से परिपूर्ण था।"[११]

लोक-जीवन पर अर्थाभाव कितना बुरा असर डालता है इस ओर भी शरतचन्द्र ने संकेत किया है। लोक-संस्कृति का परम्परागत स्वरूप दरिद्रता और अभाव के कारण कितना विपन्न हो गया है, इसका उल्लेख करते हुए शरतचन्द्र लिखते हैं—"रमेश ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कर मन ही मन कहा—हाय ! यही हमारे गर्व का धन—बंगाल का शुद्ध, शान्त और न्याय-निष्ठ ग्राम्य समाज है। कोई वह दिन भी शायद रहा हो, जब इसमें प्राण थे। उस समय इसमें शक्ति थी कि यह दुष्टों का शासन करता था और अपने आश्रित पुरुषों और स्त्रियों को निर्विघ्न रूप से संसार की यात्रा करने में सहायता देता था। लेकिन आज यह मृत है। फिर भी अन्धे ग्रामवासी इस भारी और विकृत शव को नहीं छोड़ते और अपनी झूठी ममता के कारण इसे सिर पर लादे हुए दिन-पर-दिन क्लान्त, अवसन्न और निर्जीव होते जा रहे हैं।"[१२]

किसानों के साथ सामन्ती वर्ग भी अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ रहा है। किन्तु दोनों के सांस्कृतिक परिवेश में भिन्नता रही है। किसान सदैव संघर्ष से पिसता रहा है किन्तु जमींदार-वर्ग का सांस्कृतिक स्तर किसान के शोषण पर निखरा है। इसी से प्रेमचन्द के उपन्यासों में जमींदार-वर्ग की सांस्कृतिक परिस्थितियों का किसानों के साथ संघर्ष के रूप में ही प्रस्तुतीकरण हुआ है। 'रायसाहब' (गोदान) का वैभव किसानों के शोषण पर ही निर्भर करता है। भोज, दावतें और नाटकों का आयोजन सामन्ती-वर्ग की सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के द्योतक हैं जिनमें अफसरों की चाटुकारिता और स्वार्थ सिद्धि की भावना प्रबल रूप से विद्यमान रहती है। किसानों के प्रति कृत्रिम सहानुभूति, परस्पर ईर्ष्या, द्वेष और जलन से वे पीड़ित रहते हैं। अच्छे महल, अच्छी सवारियाँ और अच्छा भोजन प्राप्त करने के लिए वे किसानों के साथ अमानवीय व्यवहार भी कर सकते हैं। 'प्रेमाश्रम' के 'ज्ञानशंकर' को इस बात के समर्थन के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। किन्तु सामन्ती समाज की इन प्रवृ
साथ सामन्तों अथवा कुलीन वर्ग के व्यक्तियों के पास ठोस सामग्री

जिनका संकेत 'प्रभाशंकर' (प्रेमाश्रम) के माध्यम से प्रेमचन्द ने किया है। किन्तु इन सांस्कृतिक परम्पराओं का विस्तार से चित्रण, प्रेमचन्द के उपन्यासों में नहीं हुआ है। 'प्रभाशंकर' में अपने आश्रितों का शोषण करने की वृत्ति के साथ-साथ पोषण करने की प्रवृत्ति है तथा अपनी मान-मर्यादा और सम्मान का विशेष ध्यान है।

शरतचन्द्र के उपन्यासों में कुलीन-वर्ग के सांस्कृतिक जीवन का चित्रण विस्तार से हुआ है। बंगाल के कुलीन-वर्ग के व्यक्तियों के पास प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराएँ सुरक्षित रही हैं। शरतचन्द्र के उपन्यासों में बंगाल के कुलीन-वर्ग की अपनी संस्कृति के प्रति गहरी आस्था अभिव्यक्त हुई है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने उनकी परम्पराओं के प्रति आस्था में कोई मूलभूत अन्तर नहीं पैदा किया है। इस बात की ओर शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों में स्थल-स्थल पर संकेत किये हैं। आचार-व्यवहार से कुलीन-वर्ग ने अपनी प्राचीन परम्पराओं को अक्षुण्ण रखा है। 'विप्रदास' में कुलीन-वर्ग की संस्कृति को स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। 'विप्रदास' के समस्त आचार-व्यवहार कुलीन-वर्ग के सांस्कृतिक जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं।

अर्थाभाव से उत्पन्न परिवर्तित परिस्थितियों में भी कुलीन-वर्ग में अपनी पुरानी प्रतिष्ठा और अपने परम्परागत आचार-व्यवहार को स्थित रखने की प्रबल भावना रहती है। धन के अभाव में भी कुलीन भावना से पूर्ण हृदय शुष्क नहीं हो जाता। 'श्रीकान्त' में 'चक्रवर्ती' की उपकथा के संदर्भ में कुलीन-वर्ग की इसी भावना को व्यक्त किया गया है। 'चक्रवर्ती' के पास किसी समय जमीन-जायदाद कम नहीं थी। किन्तु परिस्थितियों के कारण सब कुछ चला गया। अर्थाभाव होने पर भी अपनी पूर्ववत् प्रतिष्ठा तथा कुलीनता की भावना को स्थापित रखने का प्रयास 'चक्रवर्ती' ने किया है। 'श्रीकान्त' को देखते ही 'चक्रवर्ती' अपने हाथ से ही चटाई बिछा कर और हुक्का भर कर बोले—"नौकर-चाकर सब बुखार में पड़े हैं—क्या किया जाय"[11] इसके उपरान्त कलसा लेकर अपने अतिथि का स्वागत किया है—"फिर प्रसन्नचित्त से हुक्का मेरे हाथ में थमा कर कलसा लेकर चले गये। चावल आये, दाल आयी, घी आया, नमक आया और यथासमय रसोई-घर में मेरी पुकार हुई।"[12] यद्यपि 'चक्रवर्ती' का स्तर 'विप्रदास' की भांति ऊंचा नहीं रहा है किन्तु इतना स्पष्ट है कि शरतचन्द्र कुलीन-वर्ग की इस भावना को भी सामने लाए हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर की एक कहानी—'ठाकुरदार के बाबू'[13] में 'कैलाश बाबू' द्वारा कुलीन-वर्ग के विघटित सांस्कृतिक जीवन को बहुत सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है।

पूंजीवाद और साम्यवाद के संघर्ष से प्रेरित नव्य सांस्कृतिक चेतना का प्रभाव भी प्रेमचन्द के उपन्यासों में अंकित हुआ है। पूंजीवाद और साम्यवाद के आधार पर आधुनिक युग में नयी चेतना उत्पन्न हुई जिसने समाज में नये वर्गों की स्थापना हुई है

हुआ है तथा उनके सांस्कृतिक दृष्टिकोण को बताते हुए संदर्भ में देखा जा सकता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में मध्यवर्गीय संस्कृति का चित्रण अनेक रूपों में हुआ है। किन्तु यहाँ मध्यवर्गीय व्यक्ति का अपनी प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति मोह व्यक्त हुआ है। 'पद्म सिंह' (सेवासदन) में सुधारवादी दृष्टिकोण के साथ-साथ उसकी प्राचीन सांस्कृतिक मान्यताओं के प्रति गहरी आस्था है। सम्मान की लालसा इस वर्ग की प्रमुख प्रवृत्ति है। 'रमानाथ' (गबन) में सम्पन्नता का मिथ्या प्रदर्शन करता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में मध्यवर्ग की सांस्कृतिक स्थिति अर्थाभाव के संदर्भ में चित्रित हुई है जिसमें मध्यवर्गीय व्यक्ति की सांस्कृतिक चेतना भी छिन्न-भिन्न हुई है। 'पद्म सिंह' और 'रमानाथ' में इसे अत्यन्त स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में चित्रित मध्यवर्ग का सांस्कृतिक स्तर शरतचन्द्र के उपन्यासों की तुलना में साधारण है। शरतचन्द्र के उपन्यासों में मध्यवर्ग की सांस्कृतिक चेतना अधिक प्रबुद्ध है। शरतचन्द्र के उपन्यासों के मध्यवर्ग में, उच्च शिक्षा के कारण प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं पर अनास्था व्यक्त हुई है। इसी कारण आचार-व्यवहार की रूढ़ मान्यताओं का विरोध हुआ है तथा पाश्चात्य संस्कृति के रहन-सहन और शिष्टाचार को शरतचन्द्र के उपन्यासों में स्वीकार किया गया है। समय के अनुसार परम्पराओं का परिवर्तन, शरतचन्द्र के मध्यवर्ग का आग्रह है—"किसी विशेष भाव के लिए या किसी वैशिष्ट्य के लिए आदमी नहीं है बल्कि आदमी के लिए ही उस वैशिष्ट्य का आदर है, मूल्य है।"[1] *शरतचन्द्र के उपन्यासों में मध्यवर्गीय व्यक्ति की यह स्वीकारोक्ति* उसके सांस्कृतिक जीवन का आधार है। 'कमल' में मध्यवर्गीय व्यक्ति का आचार-विचार तथा शिष्टाचार अत्यन्त स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। परिष्कृत सांस्कृतिक रुचि होने के कारण 'कमल' में आश्चर्यजनक सूझ-बूझ और स्पष्टवादिता परिलक्षित होती है। 'हरेन्द्र' के मन के चोर को उसकी कुशल बुद्धि ने पकड़ लिया। तभी तो 'कमल' कहती है—"सूने घर में अनात्मीय नर-नारी का सिर्फ एक सम्बन्ध आपको मालूम है—

अपनी निश्चित परिधि को छोड़कर यह बाहर नहीं जाना चाहता। प्रेमचन्द के उपन्यासों में तत्कालीन युवक की यह स्थितिचाहट सर्वत्र देखी जा सकती है। 'गोबर' (गोदान) परिस्थितियों से बाध्य होकर अपना गाव छोड़ सका है अन्यथा उसमें बाहर जाने की स्वय कभी इच्छा नहीं हुई है।

शरतचन्द्र के उपन्यासों में बगाल का युवक सक्रान्ति के बीच चित्रित हुआ है। शिक्षा का प्रचार बगाल में अधिक होने के कारण वहा के युवक का बौद्धिक स्तर भी ऊचा है। किन्तु प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ देने की क्षमता शरतचन्द्र के 'युवक' में नहीं पायी जाती। अपनी बौद्धिकता का उपयोग शरतचन्द्र का युवक ठीक-ठीक नहीं कर पाया है क्योंकि शरतचन्द्र के 'युवक' में प्रेमवृत्ति की प्रबलता है। मध्यवर्गीय युवक की इस प्रेम-वृत्ति को शरतचन्द्र ने रोमान्स के साथ प्रस्तुत किया है। अत शरतचन्द्र के उपन्यासों में अकित 'युवक' वैयक्तिक होकर आहत और पीडित दिखाई पड़ता है। नवीन सस्कृति के प्रभाव के कारण प्राचीन सास्कृतिक और सामाजिक
हीन दिखाई पडते हैं तथा धार्मिक भावनायें उसे सन्तुष्ट नहीं कर पा
शरतचन्द्र के 'युवक' में सन्देह और अनिश्चितता दिखाई पडती है। 'अ
प्राचीन परम्पराओं को सन्देह की दृष्टि से देखता है। 'सुरेश' (गृहदाह)
प्रति गहरी अनास्था है तथा 'सतीश' (चरित्रहीन) वैयक्तिक समस्याओं से
दिखाई पडता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में शिक्षित वर्ग का चित्रण शहरी समाज के बीच
है। प्रेमचन्द के शिक्षित वर्ग में प्राचीन . की
का अभाव व्यक्त हुआ है। साथ ही
कारण शिक्षित वर्ग उन्हें ठीक से ग्रह
के उपन्यासों में शहरी समाज का क्र
मे गाव का समाज भी सक्रान्ति के बीच चि
नहीं होने पाया है। 'गोदान' में इस अन्तर को
राष्ट्रीयता की नवीन भावनाओं के साथ-साथ प्राचीन
पूर्ववत् हैं। किन्तु नगर के शिक्षित वर्ग में राष्ट्रीय
है। 'मि० मेहता' और 'मालती' (गोदान) के
सकता है।

शरतचन्द्र की तुलना में प्रेमचन्द के
न होने के कारण भद्रता और विदेशी शिष्टाचार
कहीं-कहीं 'मि० मेहता' और 'रायसाहब' के बीच अग्रेज
प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में पाश्चात्य संस्कृति से प्र

की भी शोभा है। अपने घर आई हुई स्त्री के साथ अशिष्ट व्यवहार करने की भावना 'मनोरमा' द्वारा अभिव्यक्त की गयी है। पाश्चात्य संस्कृति की सतही मान्यताओं को ही सब कुछ समझने के कारण 'मृगदा' का अपमान अपने घर पर कर बैठना है ने 'मृगदा' के द्वारा 'मनोरमा' के अशिष्ट व्यवहार की तीव्र आलोचना की ... अंग्रेजी सभ्यता के बड़े भक्त बनते हैं। क्या आप समझते हैं कि अंग्रेजी ... सिंगार ही उस सभ्यता के मुख्य अंग है? उसका प्रधान अंग है महिलाओं का और सम्मान। वह अभी आपको सीखना बाकी है।"[६]

शरतचन्द्र के उपन्यासों में सर्वत्र शिक्षित समाज की सुरुचि-सम्पन्नता का ... हुआ है। 'श्रीकान्त', 'सतीश' (चरित्रहीन) और 'विप्रदास' आदि सभी की ... एक निश्चित सांस्कृतिक स्तर तक उठी हुई है। जीवन की सतही ... कुरुचि की ओर इनका आकर्षण नहीं है। उनका प्रेम, रूप और गुण पर होता है। 'शिवनाथ' के साथ 'कमल' का वरण भी इसी सन्दर्भ में प्रस्तुत ... सकता है। 'शिवनाथ' ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है—"अक्षर बोध ... तो ब्याह किया नहीं, किया है रूप के लिए। और इस चीज का शायद उसमें ... नहीं है।"[७] 'वंदना' का 'विप्रदास' की ओर आकर्षण 'विप्रदास' की सुरुचि-सम्पन्नता तथा उसके शिष्ट आचार-व्यवहार के कारण ही हुआ है। 'अचला' का प्रारम्भिक जीवन अत्यन्त शिष्ट और सुरुचिपूर्ण अंकित हुआ है। शिक्षित समाज की भद्रता, शिष्टता और सुरुचि-सम्पन्नता से शरतचन्द्र के उपन्यास परिपूर्ण हैं।

भारतीय संस्कृति का सम्बन्ध धर्म से भी रहा है। रामलीला, कृष्णलीला, दुर्गा-पूजा, मन्दिरों के उत्सव-समारोह तथा भजन-कीर्तन आदि भारतीय सांस्कृतिक जीवन का प्रमुख अंग है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों में इस प्रकार के चित्रण उल्लेखनीय है। प्रेमचन्द, 'कर्मभूमि' में ठाकुर जी के ब्यालू के आयोजन का चित्रण करते हुए लिखते हैं—"कहीं बड़ी कढ़ाइयों में कचौड़ियां बन रही हैं, कहीं भाँति-भाँति की साक-भाजी चढ़ी हुई है, कहीं दूध उबल रहा है, कहीं मलाई निकाली जा रही है। बरामदे के पीछे, कमरे में खाद्य-सामग्री भरी हुई थी। ऐसा मालूम होता था कि अनाज, साक-भाजी, मेवे, फल, मिठाई की मण्डियां है। एक पूरा कमरा तो केवल परवलों से भरा हुआ था। इस मौसम में परवल कितने महँगे होते हैं, पर यहां वह भूसे की तरह भरे हुए थे। अच्छे-अच्छे घरों की महिलाएं भक्ति-भाव से व्यंजन पकाने में लगी हुई थीं। ठाकुर जी के ब्यालू की तैयारी थी।"[८]

शरतचन्द्र ने भी मन्दिरों के सांस्कृतिक जीवन का ऐसा ही चित्रण किया है— ... आवाज के साथ मंगल आरती शुरू हो गयी। प्रभाती के सुर में

मिलता है। मुस्लिम संस्कृति की प्रवृत्तियों का उल्लेख भी 'ताहिर अली' तथा उसके परिवार के द्वारा हुआ है। उनके अन्दर अभिमान और कट्टरपन्थी प्रवृत्तियों की भी विवेचना हुई है। 'जैनब' और 'रकिया' के अन्दर पान खाने तथा मिठाई खाने की आदतों का वर्णन करने में भी प्रेमचन्द नहीं चूके हैं। 'कर्मभूमि' में 'सकीना' 'पठानिन' तथा 'सलीम' के माध्यम से, तथा 'गोदान' में 'मिर्जासाहब' के द्वारा मुस्लिम संस्कृति का परिचय दिया गया है। इन पात्रों के द्वारा प्रेमचन्द ने मुस्लिम समाज के आचार-व्यवहार तथा उनकी रुचियों का संकेत किया है। 'सलीम' और 'मिर्जासाहब' में मुस्लिम संस्कृति के शिष्ट वार्तालाप तथा सम्भाषण को परिष्कृत रूप में देखा जा सकता है। शरतचन्द्र के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना का इतना विराट् फलक चाहे नहीं है फिर भी उपन्यास में गयी सांस्कृतिक चेतना का सचरण देखा जा सकता है।

टिप्पणियाँ

१. माडर्न रिलीजस मूवमेंट इन इण्डिया—डॉ० जे० एन० फर्कुहर, पृ० ३८
२. कांग्रेस का इतिहास—डॉ० पट्टाभि सीतारमैया, पृ० ३२२
३. गोदान, पृ० १५१
४. सेवासदन, पृ० १४६
५. शेषप्रश्न, पृ० २८१
६. वही, पृ० २१३
७. वही, पृ० ३१४
८. शरत निबन्धावली
९. विप्रदास, पृ० १
१०. प्रेमाश्रम, पृ० ५
११. रंगभूमि, पृ० ७
१२. वही, पृ० १८
१३. वही, पृ० ५६
१४. वही, पृ० ५८
१५. गोदान, पृ० ७२

को अनेक प्रकार से देखा जा सकता है । धर्म का नाम लेकर समाज ने विदेश यात्रा का निषेध कर दिया फलस्वरूप हिन्दू धर्मशास्त्रियों ने विदेश यात्रा करने वाले तथा जहाज पर चढ़ कर समुद्र पार जाने वाले व्यक्ति को धर्म-च्युत कर देने का विधान बना डाला । धर्म के ऐसे पाखण्डों का विरोध प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों में किया है । प्रेमचन्द ने 'प्रेमाश्रम' में 'प्रेमशंकर' के माध्यम से उसी दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है । 'प्रेमशंकर' को अमेरिका से वापस आने पर धर्म-च्युत कर दिया गया । उनके घर वालों ने उन्हें अपने साथ रखने तथा उनके साथ भोजन करने में उनका बहिष्कार किया । इतना ही नहीं 'प्रेमशंकर' की पत्नी 'श्रद्धा' भी विदेश से लौटे अपने पति को सामाजिक बहिष्कार के कारण नहीं स्वीकार करती है—"वह जो उनकी याद पर जान देती थी अब उनकी सत्ता से भयभीत थी, क्योंकि वह कल्पना धर्म और सतीत्व की पोषक थी और यह सत्ता उनकी घातक ।"[1] धर्म के इस बाह्य स्वरूप का खंडन प्रेमचन्द ने किया है । 'ज्ञानशंकर' जैसे पाखण्डी व्यक्तियों का सृजन कर प्रेमचन्द ने मनुष्य की नितान्त स्वार्थपरता का उद्घाटन किया है । 'ज्ञानशंकर' जैसे स्वार्थी व्यक्ति धर्म की ऐसी रूढ़ियों पर कितनी आस्था रखते हैं, इसका उल्लेख करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं—"लेकिन इतना तो आपको भी मानना पड़ेगा कि हिन्दू धर्म कुछ रीतियों और प्रथाओं पर अवलम्बित है । विदेश में आप उनका पालन समुचित रूप से नहीं कर सकते । आप वेदों से इन्कार कर सकते हैं, ईसा या मूसा के अनुयायी बन सकते हैं किन्तु इन रीतियों को नहीं त्याग सकते ।"[1] इन रीतियों और प्रथाओं को मानने वाले व्यक्तियों ने नितान्त अपने स्वार्थ के कारण ही 'श्रद्धा' के जीवन पर विचार नहीं किया । ऐसे ही आडम्बरपूर्ण धार्मिक वातावरण ने 'श्रद्धा' के विचारों को भी रूढ़िगत बना दिया । फलत वह हिम्मत हार गयी । रूढ़ि को मान कर चलना ही उसे अधिक हितकर प्रतीत हुआ । धर्म के इस दृष्टिकोण से उत्पन्न परिस्थिति का चित्रण 'प्रेमाश्रम' के इस उद्धरण में प्रेमचन्द ने किया है । धर्म की ऐसी विचारधारा पर व्यंग्य करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं—"प्रेमशंकर भूल गये थे कि समुद्र में जाते ही हिन्दू धर्म घुल जाता है । अमेरिका में बरसों रहने पर उन्हें ध्यान भी न था कि बिरादरी मेरा बहिष्कार करेगी यहाँ तक कि मेरा सहोदर भाई भी मुझे अलग समझेगा ।"[1]

धर्म की ऐसी रूढ़िगत भावनाओं का शरतचन्द्र ने भी विरोध किया है । 'अपूर्व' की माँ 'करुणामयी' (पथ के दावेदार) अपने पुत्र का विदेश [illegible] नहीं [illegible] नहीं थी कि उसमें मनुष्य का धर्म नष्ट हो जाता है—[illegible] है, उस देश में क्या कोई आदमी जाता है । [illegible] हुई ? [illegible] ।"[1] शरतचन्द्र ने पथ

के इस आडम्बर का खण्डन बडी ही चतुरता से इस उपन्यास में किया है। 'अपूर्व' की विदेश यात्रा हो जाती है। यद्यपि उसके साथ बहुत-सी शर्तें हैं जिसमें एक यह भी है कि उसे एक शुद्ध ब्राह्मण रसोइया भी साथ ले जाना पड़ेगा तथा केवल उसी का बनाया हुआ भोजन ही वह करेगा। किन्तु विदेश में 'अपूर्व' का अतिशुद्ध रसोइया अस्वस्थ पडता है। उसकी अस्वस्थता के समय ईसाई 'भारती' उसकी रक्षा करती है, उसे पानी पिलाती है तथा उसके लिए बार्ली तैयार करती है। इस घटना को लेकर शरतचन्द्र ने धर्म की रूढि पर व्यंग्य किया है—"अपूर्व खुद कुछ कहता नही, और उससे पूछने मे तिवारी को सबसे ज्यादा डर इस बात का है कि पूछताछ करने से कही पिछला सब भेद खुल न जाय। लडाई-झगड़े की बात चूल्हे में गयी, पर उसने जो उसके हाथ का पानी पिया है, उसका बनाया हुआ दूध, सागू और बार्ली खाई है, हो सकता है कि इससे भी भयकर रूप से जात मारी गयी हो कि जिसका कोई प्रायश्चित ही न हो तिवारी ने तय कर रखा था कि किसी तरह यहा से कलकत्ता जाकर वह सीधा घर चला जायगा और वहा गगा स्नान करके छिपी तौर से गोबर आदि खाकर किसी बहाने से ब्राह्मण-भोजन कराके, अपनी देह को काम-चलाऊ शुद्ध कर लेगा। लेकिन छेड-छाड करने से कही किसी तरह बात अगर मा जी के कान तक पहुच गयी, तो क्या होगा, कोई ठीक नही। हालदार घर की नौकरी तो जायगी ही, साथ ही उसके गाँव के समाज तक को मालूम हो जाय तो आश्चर्य नही।"[1]

हिन्दू सामाजिक जीवन में धार्मिक रूढियो तथा अन्धविश्वासों को ग्रहण करने वाली केवल नारी ही है तथा कुछ सीमा तक भारतीय गाँव भी अन्धविश्वासों से जकडे हुए हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासो मे धर्म की विकृतियो का चित्रण नारी पात्रों के माध्यम से तथा ग्रामीण समाज के बीच हुआ है। अशिक्षित और अज्ञान होने के कारण हिन्दू अबला धर्म के सही अर्थ को नही समझ पाती। युग-युग से जो रूढिया समाज मे विकसित हो जाती रही हैं उन्ही को वह धर्म समझ बैठती थी। परिणाम-स्वरूप अनेक कुरीतियो को धार्मिक निष्ठा से ग्रहण करके भारतीय नारी ने आजीवन उन्ही का निर्वाह किया है। विदेश से लौटे हुए अपने पति से मिलने की असीमित आकाक्षा होने पर भी 'श्रद्धा' के मार्ग मे धर्म की ऐसी ही रूढियों ने बाधाए उत्पन्न की हैं। वस्तुत 'श्रद्धा' जिसे धर्म समझती है, वह धर्म न होकर मनुष्य के स्वार्थी हृदय की अभिव्यक्ति है। 'श्रद्धा' की स्थिति का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं—"श्रद्धा को सामाजिक अवस्था और समयोचित आवश्यकताओ का ज्ञान था। परम्परागत बन्धनो को तोड़ने के जिस विचार-स्वातन्त्र्य और दिव्य ज्ञान की जरूरत थी उससे वह रहित थी। वह एक साधारण और हिन्दू अबला थी। वह अपने प्राणो से, अपने प्राणप्रिय स्वामी से हाथ धो सकती थी किन्तु अपने धर्म की अवज्ञा करना अथवा लोकनिन्दा को सहन करना

उसके लिए असम्भव था।"[1] रूढ़ि को ही धर्म समझ बैठना मानव-मन की सबसे बड़ी भूल है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में ऐसी धार्मिक रूढ़ियों का विरोध किया है।

शरतचन्द्र के उपन्यासों में भी नारी पात्रों के माध्यम से रूढ़ियों की ओर संकेत किया गया है। 'करुणामयी' (पथ के दावेदार), 'दयामयी' (विप्रदास) तथा 'विश्वेश्वरी' (ग्रामीण समाज) धर्म-परायण नारियाँ हैं। शरतचन्द्र ने उनके धार्मिक विचारों के प्रति अश्रद्धा भी नहीं ज्ञापित की है। किन्तु उनके इस धर्म की रूढ़िगत मान्यताओं का विरोध किया गया है। 'करुणामयी' आचार-विचार वाली रमणी है। वह किसी दूसरे का बनाया हुआ नहीं खाती। शरतचन्द्र 'करुणामयी' के इस विचार पर आघात नहीं करते। किन्तु इस बात का समर्थन शरतचन्द्र नहीं करते कि 'करुणामयी' के धार्मिक दृष्टिकोण के कारण 'अपूर्व' विदेश न जाय। इसी प्रकार 'दयामयी' की धार्मिक भावनाओं को भी अस्वीकार नहीं किया गया है किन्तु उसके पुत्र 'द्विजदास' का विवाह 'वन्दना' से इस कारण न हो सका, कि 'वन्दना' 'दयामयी' की भाँति धर्म की मान्यताओं को स्वीकार नहीं करती। 'वन्दना' को अन्धविश्वासों पर अनास्था है। यहाँ यह बात स्पष्ट है कि शरतचन्द्र धार्मिक कार्यों तथा अनुष्ठानों को, प्रेमचन्द की भाँति गहराई से अपने उपन्यासों में आक्षेप न करके उन्हें सहानुभूतिपूर्वक प्रस्तुत करते हैं किन्तु धर्म की रूढ़ियाँ अथवा तथाकथित मान्यताएँ जब व्यक्ति के सामाजिक जीवन पर आघात करने लगती हैं तो शरतचन्द्र नहीं सहन कर सकते। अतः अवसर पड़ने पर अपने उपन्यासों में शरतचन्द्र ने रूढ़ियों का विरोध भी किया है। 'शेषप्रश्न' की 'कमल' के माध्यम से शरतचन्द्र ने अनेक सामाजिक प्रश्नों के विवेचन के साथ धार्मिक रूढ़ियों की भी आलोचना की है। 'कमल' का व्यक्तिगत जीवन ही धार्मिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का ज्वलन्त उदाहरण है। उसका पहला विवाह एक ईसाई के साथ हुआ तथा दूसरा शैवमत के आधार पर 'शिवनाथ' के साथ किन्तु 'अजित' के साथ अपने तीसरे वैवाहिक सम्बन्ध को किन्हीं रूढ़ियों और मान्यताओं में बाँधने की चेष्टा नहीं की। 'कमल' की विचारधारा से शरतचन्द्र भले ही सहमत न हों किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि उसके द्वारा रूढ़ियों के प्रति उनकी अनास्था व्यक्त हुई है। यह ठीक है कि शरतचन्द्र के उपन्यासों में धर्म के प्रति उदारतापूर्ण दृष्टि अपनाई गयी है किन्तु धर्म की मूल भावना को वह कहीं भी नहीं छोड़ पाते। 'अन्नदा दीदी' (श्रीकान्त, प्रथम पर्व) के सतीत्व-धर्म तथा त्याग की प्रशंसा शरतचन्द्र ने की है किन्तु नृशंस पति के चरणों में ही अपने सम्पूर्ण जीवन को व्यर्थ कर देने की पीड़ा, शरतचन्द्र के हृदय में अवश्य हुई है। यही कारण है कि सती धर्म का भी विरोध शरतचन्द्र के उपन्यासों में हुआ है। 'अभया' (श्रीकान्त, तृतीय पर्व) के माध्यम से शरतचन्द्र ने धर्म की ऐसी रूढ़ियों पर चोट की है। 'अभया' ने

धर्म-कर्म को नही माना है तथा 'कमल' का सृजन भी रूढ़ियो का विरोध करने के लिए ही हुआ है।

भारत का ग्रामीण समाज रूढ़ियो को ही धर्म समझता है तथा रूढ़ियों के प्रति उसका लगाव होता है। अन्धविश्वास भारतीय गावों में अच्छी तरह जड़ जमाये हुए है। ग्रामीण व्यक्ति का धर्म-भीरु हृदय उनके प्रति क्रान्ति करने से डरता है। धर्म के वास्तविक तत्त्व को ग्रामीण व्यक्ति प्राय अशिक्षा और अज्ञान के कारण नही जान पाता। इसी से प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों मे ग्रामीण समाज में प्रचलित धार्मिक रूढ़ियो, कुरीतियो तथा विकृतियो को अनावृत किया गया है। दोनो उपन्यासकारो ने इन प्रवृत्तियो को प्रायः समान संदर्भों मे प्रस्तुत किया है तथा उनके प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया गया है वह भी एक जैसा है।

प्रेमचन्द ने 'गोदान' मे ग्रामीण समाज के धार्मिक अन्धविश्वासो और रूढ़ियो का चित्रण विस्तार से किया है। 'दातादीन' और 'मातादीन' गाव के धार्मिक नेता माने जाते है। अपनी धर्म-सम्बन्धी मान्यताओ को स्पष्ट करता हुआ 'दातादीन' कहता है—"कोई हमारी तरह नेमी बन तो ले। कितनो को जानता हूँ जो कभी सन्ध्या-वन्दन नही करते। न उन्हे धर्म से मतलब, न करम से, न कथा मे मतलब, न पुरान मे। वह भी अपने को ब्राह्मण कहते है। हमारे ऊपर हँसेगा कोई, जिसने अपने जीवन मे एक एकादशी भी नागा नही की, कभी बिना स्नान-पूजन किए मुंह मे पानी नही डाला। नेम का निभाना कठिन है। कोई बता दे हमने कभी बाजार की कोई चीज खाई हो या किसी दूसरे के हाथ का पानी पिया हो, तो उसकी टाग की राह से निकल जाऊ।"* यहा 'दातादीन' के द्वारा धार्मिक भावनाओ का खोखलापन प्रदर्शित किया गया है। वह वाह्याडम्बरो को ही धर्म समझता है। नियम और व्रत रखकर भी धर्म के नाम पर शोषण करने मे वह नही चूकता। वस्तुत धर्म के इस विकृत रूप को ग्रामीण समाज के अधिकाश लोग अपने जीवन का प्राण समझते है तथा वे उसी मे चिपके रहना चाहते हैं। इसी सदर्भ मे प्रेमचन्द ने किसान के धर्मबोध को विशेष रूप से दिखाया है। भारतीय किसान की दयनीय स्थिति का कारण, धर्म के अन्ध-विश्वासो तथा रूढ़ियो के प्रति आस्था भी है। 'गोदान' मे प्रेमचन्द ने किसान की दयनीय स्थिति के अनेक कारणो मे धार्मिक रूढ़ियो को प्रमुख स्थान दिया है। 'होरी' के माध्यम से धार्मिक विचारो को अभिव्यक्त कर प्रेमचन्द ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यदि किसान के जीवन से धार्मिक विकृतियो को दूर कर दिया जाय तो उसका जीवन अधिक सरल तथा सुखमय हो सकता है। धार्मिक रूढ़ियो को मानकर चलने के कारण ही 'होरी' आजीवन कष्ट मे रहा है। 'होरी' की , का दिखाते हुए प्रेमचन्द लिखते है—"मगर होरी के पेट मे धर्म की ।

थी। अगर ठाकुर या बनिये के घर होते तो उसे ज्यादा चिन्ता न होती, लेकिन ब्राह्मण के घर! उसकी एक पाई दब गई तो हड्डी तोडकर निकलेगी। भगवान न करे किसी ब्राह्मण का कोप किसी पर गिरे। वश मे कोई चिल्लू भर पानी देने वाला, घर मे दिया जलाने वाला भी नही रहता। उसका धर्मभीरु मन त्रस्त हो उठा। उसने दौडकर पण्डितजी के चरण पकड लिए और आर्त स्वर मे बोला—"महाराज जब तक जीता हूँ तुम्हारी एक-एक पाई चुकाऊगा।"[1] प्रेमचन्द का यह दृष्टिकोण उनकी छोटी कहानियो मे भी कही-कही व्यक्त हुआ है। 'सुजान महतो'[2] मे किसान की धार्मिक आस्थाओ के कारण उत्पन्न परिस्थितियो का चित्रण हुआ है। 'सुजान महतो' की गाढी कमाई व्यर्थ की रूढियो को पूरा करने मे उडायी जाती है। प्रेमचन्द किसान के ऐसे अन्धविश्वासो को समाप्त करने का आग्रह करते हैं तथा धर्म के कल्याणकारी रूप का समर्थन करते हैं।

शरतचन्द्र के उपन्यासो मे भी ग्रामीण समाज के धार्मिक वातावरण के बीच धार्मिक रूढियो तथा धर्म की आड मे होने वाले दोषो का चित्रण हुआ है। प्रेमचन्द ने धार्मिक कुरीतियो का उल्लेख किसान के दुर्दशा-ग्रस्त जीवन के सदर्भ मे किया है किन्तु शरतचन्द्र के उपन्यासो मे सम्पूर्ण ग्रामीण समाज की अन्धी धार्मिक मान्यताओ को दिखाया गया है। ग्रामीण समाज की दयनीय धार्मिक स्थिति का उल्लेख करते हुए शरतचन्द्र लिखते हैं—"नगर के सजीव चचल मार्ग पर जब कभी पाप का कोई चिन्ह उन्हे दिखाई पड गया है, तभी उन्होने सोचा है कि अगर मैं किसी तरह अपनी जन्मभूमि वाले गाव मे पहुच जाऊ तो ये सब दृश्य देखने से सदा के लिए बच जाऊ। वह समझते थे कि वहा पर ससार मे जो सबसे बडा है वह धर्म है, और सामाजिक चरित्र भी आज वही अक्षुण्ण होकर विराज रहा है। परन्तु हे भगवान कहा है वह चरित्र ? और कहा है वह जीता-जागता धर्म हमारे इन सारे प्राचीन एकान्त ग्रामो मे ? और यदि तुमने धर्म के प्राण ही खीच लिए हैं, तो फिर उसका मृत शरीर क्यो इस प्रकार डाल रखा है ? धर्म के इस विवर्ण और विकृत शव को इस अभागे ग्राम्य समाज ने वास्तविक धर्म समझ कर खूब कसकर पकड रखा है और उसी की विषाक्त और दुर्गन्धमय फिसलन पर दिन-रात फिसलता हुआ यह अध पतन की ओर बढता जा रहा है। और सबसे बढकर धर्म पर आघात करने वाले परिहास की बात यह है कि बाहर वालो के प्रति ये लोग यह समझ कर हद से ज्यादा अवज्ञा और अश्रद्धा का भाव रखते हैं कि उनमे जाति-धर्म नहीं रह गया है।"[1]

'बाम्हन की बेटी' मे रूढिगत धार्मिक विचारो के कई चित्र अकित हुए हैं। 'रास बाह्मणी' अपनी नातिन को सध्या के समय एक अछूत लडकी से छू जाने पर ... विधवा 'ज्ञानदा' के साथ 'गोलोक' के अवाछित सम्बन्ध हो जाने

पर 'ज्ञानदा' को समझाती हुई कहती है —"बहन तकदीर के फेर से जो दुश्मन तेरे पेट मे आ गया है उस आफत-बला को टाल, मामला ही कितनी देर का है ? उसके बाद जैसे पहले थी वैसे फिर रह, खा-पी, घूम-फिर, तीर्थ-व्रत-उपवास कर, इस बात को कौन सुनेगा और कौन जानेगा ।""[1] यहा शरतचन्द्र ने धर्म की आड मे होने वाले दुष्कर्मो पर तीव्र व्यग्य किया है । 'गोलोक' की पाखण्डपूर्ण धर्म-निष्ठा मे छिपे पापाचार को उद्‌घाटित किया गया है । 'ग्रामीण समाज' के 'गोविन्द गांगुली' द्वारा भी धार्मिक विकृतियो तथा रूढियों का दिग्दर्शन कराया है तथा धर्म के नाम व्यक्ति की स्वार्थान्वेषी वृत्ति तथा असामाजिकता की ओर ध्यान खीचा है ।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों मे धर्म के मिथ्या आदर्शों के खोखलेपन को विविध रूपों मे दिखाया गया है । आचार-अनुष्ठान तथा मिथ्या आदर्शों को प्रोत्साहित करने वाली सस्थाओ, परम्पराओ एव व्यक्तियो पर तीक्ष्ण आक्षेप भी इन उपन्यासकारों ने अपनी कृतियो मे किये हैं । इस प्रकार के सदर्भ प्रस्तुत करते समय वर्णाश्रम प्रथा, धार्मिक आचार-अनुष्ठान पर विशेष दृष्टि रखी है । प्रेमचन्द वर्णाश्रम प्रथा के अन्तर्गत वर्णों की ऊच-नीच की भावना को स्वीकार नही करते । 'गोदान' मे 'मातादीन' और 'सिलिया' के सम्बन्ध का समर्थन करके ब्राह्मण की श्रेष्ठता पर गहरा आघात किया है । वर्णाश्रम-धर्म का विरोध प्रेमचन्द ने कहीं नही किया है किन्तु उनकी रचनाओ मे निहित उद्देश्य से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रेमचन्द जन्म के आधार पर मनुष्य को ऊचा और नीचा प्रतिष्ठित करने की अपेक्षा, मनुष्य की श्रेष्ठता का आकलन कर्म पर करते हैं तथा उसी का समर्थन करते हैं । यही कारण है कि प्रेमचन्द के उपन्यासो में यहीं-वहीं ब्राह्मणो पर गहरे आक्षेप किये गये हैं । वस्तुतः ब्राह्मणो का अन्य वर्गो को हेय समझने की भावना की आलोचना की गयी है ।

शरतचन्द्र मे भी वर्ण-व्यवस्था से उत्पन्न बुराइयो का प्रदर्शन अपने उपन्यासो मे किया है किन्तु वर्णाश्रम-प्रथा का विरोध नही किया है । शरतचन्द्र ने ब्राह्मण की श्रेष्ठता को भी स्वीकार किया है किन्तु ब्राह्मण की श्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए अन्य वर्ग वाले को हेय सिद्ध किया जाय, इसे शरतचन्द्र ने नहीं माना है । 'बाम्हन की बेटी', 'ग्रामीण समाज', 'श्रीकान्त', 'पथ के दावेदार' आदि उपन्यासो मे [illegible] वर्णाश्रम-प्रथा से उत्पन्न कुरीतियो का चित्रण किया है । यहा प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की दृष्टि मे एक अन्तर बहुत स्पष्ट है । हिन्दू-समाज का गठन जिस वर्ण-व्यवस्था पर आधारित है उसमे अनेक विकृतियो के होते हुए भी उसका अपना महत्त्व है । प्रेमचन्द ने उसके महत्त्व पर दृष्टि नही डाली है । इसलिए जब भी उन्हे मौका मिलता है वे उस पर आघात करने मे नही चूकते । चाहे 'रामादीन सिलिया' का मामला हो या '[illegible]' और 'मुन्नी' का ।

'गृहदाह' की 'मृणाल' के बहुत से विचारों का शरतचन्द्र ने समर्थन किया है। किन्तु 'अचला' द्वारा बनाये गये भोजन को जो 'मृणाल' अस्वीकार करती है उसे शरतचन्द्र ने मान्यता नहीं दी है। 'मृणाल' हिन्दू धर्म की रूढ़ियों और रीतियों को मानने वाली स्त्री है और 'अचला' का बनाया हुआ भोजन इसलिए नहीं खाती क्योंकि वह ब्रह्मसमाजी है। किन्तु 'मृणाल' के चरित्र में यदि कोई निर्बलता 'अचला' के सम्मुख प्रस्तुत हो सकी है तो यही, जिसके कारण 'अचला' ने 'मृणाल' के संस्कारों पर आघात किया है। दूसरों को भोजन कराने में निहित पुण्य की भावना को भी शरतचन्द्र अस्वीकार करते हैं—"यह हुआ साधु-सज्जनों का भलाई-बुराई का विचार, पुण्यात्माओं की धर्म-बुद्धि की युक्तियां, परलोक के खाते में वे लोग इसी को सार्थक व्यय मानकर लिख रखना चाहते हैं। यह नहीं समझते कि असल में यह अन्न सारशून्य थोथा व्यय है।"[17]

प्रेमचन्द के उपन्यासों में आचार-विचार सम्बन्धी भावनाओं को धर्म के रूप में नहीं स्वीकार किया गया है। भोजनादि में धर्म की भावना को अनुस्यूत करना प्रेमचन्द अनुचित मानते हैं। प्रेमचन्द के अधिकांश उपन्यासों में भोजन के सम्बन्ध में आचार-विचार की उपेक्षा की गई है तथा उसे अत्यन्त उदारतापूर्ण दृष्टि से देखा गया है। 'अमरकांत' (कर्मभूमि) चमारों के गांव में पहुंच कर 'सलोनी काकी' के हाथ की बनी रोटियां खाने में संकोच का अनुभव नहीं करता—"सलोनी ने पुकारा—भैया रोटी तैयार है, आओ गरम-गरम खा लो। अमरकान्त ने हाथ-मुंह धोया और अन्दर पहुंचा। पीतल की थाली में रोटियां थीं, पथरी में दही, पत्ते में अचार, लोटे में पानी रखा हुआ था।"[18] 'अमरकांत' ने सलोनी काकी के भोजन को अत्यन्त श्रद्धा के साथ स्वीकार किया है।

शरतचन्द्र के उपन्यासों में आचार-अनुष्ठान को धर्म के अन्तर्गत नहीं माना है। आचार-अनुष्ठान धर्म से भिन्न है। धर्म का नाम लेकर आचार-अनुष्ठान का मूल्य बढ़ाना शरतचन्द्र उचित नहीं समझते। आचार-विचार को धर्म का रूप देकर व्यक्ति के गतिमय जीवन में अवरोध उपस्थित कर देने की तथा व्यक्ति के जीवन को कंटकाकीर्ण बना डालने की शरतचन्द्र ने आलोचना की है। शरतचन्द्र ने इस दृष्टिकोण को 'कमल' के माध्यम से अत्यन्त स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है। 'कमल' का सारा विद्रोह धार्मिक आचारों, अनुष्ठानों तथा मिथ्या आदर्शों के प्रति हुआ है। इस विचारधारा का प्रतिपादन करती हुई 'कमल' कहती है—"आचार-अनुष्ठानों को मैं झूठा बता कर उड़ा देना नहीं चाहती, मैं करना चाहती हूं सिर्फ उसमें परिवर्तन। समय के धर्मानुसार आज जो अचल हो रहा है चोट पहुँचा कर मैं उसी को सचल कर देना चाहती हूँ।"[19]

यहां यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि शरतचन्द्र आचार-विचार का [illegible]

करते किन्तु समय और धर्म के अनुसार उसमे परिवर्तन के पक्षपाती है।

आचार-विचार के विकृत रूप की आलोचना शरतचन्द्र ने अपनी रचनाओ मे सर्वत्र की है। 'सन्ध्या' और 'अरुण' के सम्बन्ध मे आचार-विचार के विकृत रूप का ही अकन किया गया है। 'सन्ध्या' के हृदय मे धार्मिक सकीर्णताओ की प्रतिक्रिया मे उत्पन्न "घृणा और असुचिता इतनी दूर तक पहुच गयी कि उसे छूने मात्र से ही दूसरो को मुह का पान थूक देना पडता है।"[1] शरतचन्द्र ने 'विप्रदास' मे भी आचारनिष्ठा के मिथ्या आदर्शों पर तीव्र व्यग्य किया है। जिस 'वदना' को 'दयामयी' ने म्लेच्छ लडकी समझ रखा था तथा 'दयामयी' के आचार-विचार को देखकर ही 'वदना' को कहना पडा था कि "मै आपकी म्लेच्छ लडकी हू तो क्या, आपके इतने बडे काम मे मुझे कोई भी भार नही मिलेगा। सिर्फ चुपचाप बैठी रहूगी? ऐसी तो बहुत सी चीजे हैं जिनके छूने-छाने मे कुछ बनता बिगडता नही।"[2] उसी को अपने आचल से चाबियों का गुच्छा खोल कर 'दयामयी' ने दिया है तथा 'विप्रदास' की उस गृहस्थी मे वह सदा के लिए सम्मिलित कर ली गयी जिसके विषय मे 'विप्रदास' ने कहा था—"हमारी यह पुण्य की गृहस्थी है, धर्म का परिवार है, यहा अनाचार सहन नही होगा। हमारा घर नियमों की कडियो से बधा है।"[3] इस प्रकार प्राचीन आचार-विचारो से पूर्ण परिवार मे पाश्चात्य सस्कृति से प्रभावित 'वदना' को वहू रूप मे प्रतिष्ठित कर शरतचन्द्र ने आचारनिष्ठा के पाखड पर गहरा आघात किया है। 'अचला' और 'रामचरण बाबू' के सन्दर्भ मे भी शरतचन्द्र ने आचार-विचार से उत्पन्न हृदयहीनता का सकेत किया है। 'अचला' के जीवन की वास्तविकता के सम्बन्ध मे भ्रम उत्पन्न होने पर 'रामचरण बाबू' 'अचला' के सरल व्यवहार को भूल कर उसके प्रति निर्मम और कठोर आचरण करने मे भी सकोच नही करते। आचार-विचार को ही धर्म मानने वाले 'रामचरण बाबू' की निर्ममता का उल्लेख करते हुए शरतचन्द्र लिखते है—"जिस धर्म ने स्नेह की मर्यादा नही रखने दी, जिस धर्म ने नि सहाय आर्त्त नारी को मृत्यु के मुह मे डाल आने मे जरा भी दुविधा नही की, चोट खाकर जिस धर्म ने इतने बडे स्नेहशील वृद्ध को भी ऐसा चचल और प्रतिहिंसा से ऐसा निष्ठुर कर दिया वह कैसा धर्म है। जिसने उसे अगीकार किया है वह कौन सी सत्य वस्तु को खो रहा है? जो धर्म है वह तो वर्म की तरह आघात सहने के लिए ही है।"[4]

आचार-विचार को धर्म का रूप देकर जो विकृतिया उत्पन्न हुई हैं उनका विरोध प्रेमचन्द और शरतचन्द दोनों उपन्यासकारों ने अपनी-अपनी कृतियो मे किया है। धर्म के इस अन्त सारशून्य तथा निष्प्राण स्वरूप की कटु आलोचना प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के [illegible] है। दोनों उपन्यासकार, धर्म के थोथे रूप को, आचारनिष्ठा से [illegible] करते। प्रेमचन्द ने आचार-विचार की आलोचना, समाज-

जिक विषमताओं के सदर्भ में की है । शरत्चन्द्र ने व्यक्ति की अनुभूतियों और मानसिक स्थितियों के परिवेश में आचार-धर्म की तीव्र आलोचना की है । जो धर्म जीवन की अनुभूतियों से मिलकर नहीं चलता अथवा जो आचार व्यक्ति की परिस्थितियों का ध्यान नहीं रखता तथा जहां आचार-धर्म की ही प्रतिष्ठा की गयी है और व्यक्ति की भावनाओं को उपेक्षित किया गया है, उसे शरत्चन्द्र का समर्थन प्राप्त नहीं हो पाता है। व्यक्ति की भावनाओं को छोड़कर आचार-विचार जब अपनी राह अलग बनाने लगते हैं शरत्चन्द्र के उपन्यासों में यही विरोध व्यक्त हुआ है ।

प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र के उपन्यासों में मन्दिरों की पूजा-विधि, प्रधान पर्वो, विभिन्न सम्प्रदायों, मठों तथा विभिन्न धार्मिक गद्दियों के दृश्य आदि धर्म के बाह्य रूप चित्रित हुए हैं । यह दोनों लेखकों की जीवन-दृष्टि का परिचायक भी है । इस आधार पर कहा जा सकता है कि 'धर्म' के इन रूपों की उपस्थिति का कोई विशेष प्रयोजन लेखकों की दृष्टि में है । यह 'धर्म' या तो मध्यकालीन मानसिकता का द्योतक या सामन्ती शोषण का यन्त्र बनकर आया है । प्रेमचन्द के उपन्यासों में मठ, मन्दिर तथा धार्मिक गद्दियां पाखंड और धूर्तता के केन्द्रों के रूप में चित्रित हुए हैं । धर्म के इन रूपों को लेकर प्रेमचन्द की दृष्टि तीव्र और आलोचनात्मक है । प्रेमचन्द ने मन्दिरों तथा गद्दियों के विकृत रूपों का चित्रण किया है । धर्म की इन एजेंसियों में उत्पन्न हो गयी कुरूपताओं को अनावृत करना प्रेमचन्द का प्रमुख उद्देश्य रहा है । 'सेवासदन' में 'महन्त रामदास' का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं—"वह साधुओं के एक गद्दी के महन्त थे । उनके यहां सारा कारोबार श्री बांकेबिहारी जी के नाम पर होता था । श्री बांकेबिहारी जी लेन-देन करते थे और ३२) सैंकड़ा से कम सूद न लेते थे । वही माल-गुजारी वसूल करते थे, वही रेहननामे, बैंहनामे लिखाते थे – महन्त जी का अधिकारियों में खूब मान था—"श्री बांकेबिहारी जी, उन्हें खूब मोतीचूर के लड्डू और मोहनभोग खिलाते थे ।"[११] प्रेमचन्द ने धर्म के इन केन्द्रों को मनुष्य के शोषण में प्रवृत्त दिखाया है। 'कर्मभूमि' में 'महन्त आशाराम गिरि' का उल्लेख प्रेमचन्द के इस दृष्टिकोण के समर्थन के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है । 'महन्त आशाराम गिरि' के आश्रम के ऐश्वर्य का वर्णन प्रस्तुत उपन्यास में विस्तार से किया गया है । धर्म के अधिष्ठाता 'महन्त जी' किस प्रकार जनता का शोषण करते है, इसका चित्रण करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं—"इस इलाके के जमींदार एक महन्त जी थे । कारकुन और मुख्तार उन्हीं के चेले-चापड़ थे । इसलिए लगान बराबर वसूल होता जाता है । ठाकुरद्वारे में कोई न कोई उत्सव होता ही रहता था । कभी ठाकुर जी का जन्म है, कभी ब्याह है, कभी यज्ञोपवीत है, कभी झूला है, कभी जल-विहार है । आसामियों को इन अवसरों पर बेगार देनी पड़ती थी, भेंट न्यौछावर पूजा-चढ़ावा आदि नामों से दस्तूरी चुकानी पड़ती थी, लेकिन धर्म

के झगड़ों में कौन मत घोलेगा । धर्म-संकट सबसे बड़ा है ।"[१]

धर्म के बाह्य रूपों को लेकर उनकी विकृतियों का चित्रण शरतचन्द्र के उप-न्यासों में अवश्य हुआ है किंतु साथ ही उनके उज्ज्वल स्वरूप को महत्त्वतापूर्वक प्रस्तुत किया है । शरतचन्द्र के उपन्यासों में प्रेमचन्द के उपन्यासों की भांति धार्मिक-सम्प्रदाय अथवा मठ शोषण के केन्द्रों के रूप में चित्रित न होकर महिमापूर्ण अंकित हुए हैं । इस सम्बन्ध में शरतचन्द्र की दृष्टि प्रेमचन्द की भांति तीक्ष्ण और आलोचनात्मक नहीं है । शरतचन्द्र ने धर्म के नाम पर शोषण करने वाले इन अड्डों के भीतरी भाग पर अपनी दृष्टि नहीं डाली है वरन् ऊपर की चमक-दमक से प्रभावित प्रतीत होते हैं । इसी से उनके उपन्यासों में मन्दिरों तथा धार्मिक सम्प्रदायों की सार्थकता तथा उनकी पवित्रता का चित्रण हुआ है । 'श्रीकांत' के वैष्णव आश्रम का चित्रण शरतचन्द्र ने इसी संदर्भ में किया है । 'आश्रम और 'धर्म सम्प्रदाय' जिस धर्म को लेकर चलते हैं वह तो पवित्र होता ही है, उनके वातावरण में विकार हो सकता है । 'वैष्णव आश्रम' के दैनिक कार्यक्रम पूजा-अर्चना आदि का वर्णन शरतचन्द्र ने अत्यन्त भव्यता के साथ प्रस्तुत किया है । *'श्रीकांत' ने 'वैष्णवी' से उनके धर्म की आस्था के सम्बन्ध में जो प्रश्न किया है* तथा 'वैष्णवी' के उत्तर से आश्रम के जीवन को जाना जा सकता है—"कल वैष्णवी से पूछा था कि तुम भजन करती हो ? उसने जवाब में कहा था, कि यही तो साधना और भजन है । सविस्मय प्रश्न किया था—यह कोई रसोई बनाना, फूल चुनना, माला गूंथना, दूध औटाना—क्या इसी को साधना कहती हो ? उसने उसी वक्त सिर हिला-कर जवाब देते हुए कहा था, हां हम इसी को साधना कहती है—हमारी और कोई भजन-साधना नहीं है ।

आज पूरे दिन का हाल देखकर समझ गया कि उसकी बात का एक-एक अक्षर सच है । कहीं भी अतिरंजन या अत्युक्ति नहीं । दोपहर को जरा मौका पाकर बोला, मैं जानता हूं कमललता, कि तुम और सब जैसी नहीं हो । सच तो कहो, भगवान की प्रतीक यह पत्थर की मूर्ति—वैष्णवी ने हाथ उठाकर मुझे रोक दिया और कहा—प्रतीक क्या जी, वे तो साक्षात् भगवान हैं । ऐसी बात कभी जबान पर भी न लाना नए गुसाईं ।"[२]

धर्माचरण में अधिक रुचि और विश्वास न होने पर भी शरतचन्द्र ने अपने उप-न्यासों में धर्म के इन बाह्यरूपों की अवहेलना नहीं की है। 'श्रीकांत' में इस दृष्टिकोण को स्पष्टतः देखा जा सकता है—"हालांकि धर्माचरण में ही मेरी रुचि और विश्वास नहीं है किंतु जिनका विश्वास है उनको बाधा नहीं पहुंचाता । मन में बिना संशय के गुरुतर विपत्ति का छोर कभी न खोज पाऊंगा । तथापि धार्मिकों को सुविख्यात साधु जी—किसी को भी छोटा नहीं

कहना, दोनों की वाणी मेरे कानों में समान मधु की वर्षा करती है।''[१७] वस्तुत शरत्चन्द्र के उपन्यासों में मठ, सम्प्रदाय एवं मन्दिरों आदि के जो चित्रण हैं वे मध्यकालीन मानसिकता के ही परिचायक हैं। यहां प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र की दृष्टि में अन्तर को भी देखा जा सकता है। प्रेमचन्द इन स्थलों को लेकर अधिक आलोचनात्मक हैं तथा उनकी दृष्टि आधुनिक विचारों को ग्रहण करके अधिक यथार्थ और ठोस प्रतीत होती है। शरत्चन्द्र बदलते हुए सदर्भों को नहीं भांप सके हैं अतः इन स्थलों की उपादेयता ही सिद्ध की है।

धर्म के सदर्भ में दानादि का उल्लेख भी इन उपन्यासकारों ने किया है। दान के नाम पर होने वाले कुत्यों और उसके दुष्परिणामों को उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है। 'वरदान' के 'शालिग्राम' का परिवार दान देने में तथा मन्दिर बनवाने के कारण ही छिन्न-भिन्न हो गया। 'शालिग्राम' ने अपनी सामर्थ्य से बाहर दान देकर अपने जीवन को तो दुखमय कर ही लिया किंतु उसका परिणाम उनकी पत्नी को सर्वाधिक भोगना पडा। इस प्रकार प्रेमचन्द ने प्रस्तुत उपन्यास में दान देने की प्रवृत्ति में उत्पन्न कठिनाइयों को प्रदर्शित कर यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि दान देने में निहित धार्मिक भावना सामर्थ्य पर निर्भर करती है अन्यथा उससे धोखा उठाना पडता है। शरत्चन्द्र के उपन्यासों में भी दान देने की प्रवृत्ति का समर्थन नहीं किया गया है। 'कमल' के द्वारा, दान देने में निहित धार्मिक दृष्टिकोण का खण्डन भी किया गया है किंतु 'राजलक्ष्मी' के दानकर्म की भावना को प्रभावशाली ढग से व्यक्त किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि शरत्चन्द्र 'दान' देने की भावना में छिपी सदाशयता के समर्थक हैं। दान देने में निहित दिखावे की प्रवृत्ति का विरोध 'कमल' द्वारा किया गया है। 'राजलक्ष्मी' के सदर्भ में यह बात स्पष्ट हो जाती है। निर्धन क्लर्क की बेटी के लिए धोती निकालकर देती हुई 'राजलक्ष्मी' कहती है—"वर्दवान नजदीक आते ही ट्रक खोलकर उसमें से चुनकर एक सब्ज रग की रेशम की साडी बाहर निकाली और कहा—'सरस्ता' को उसके खिलौने के बदले में साड़ी दे देना।''[१८] शरत्चन्द्र ने 'राजलक्ष्मी' के दान देने की इस भावना का कई स्थलों पर समर्थन किया है। 'राजलक्ष्मी' धर्म-कर्म में दान तो करती ही है साथ ही वह निर्धन छात्रों को भी सहायता करती रहती है। शरत्चन्द्र इस प्रकार के दान के समर्थक हैं। वस्तुत यह दान न होकर अनुदान है और असहाय को अनुदान देना शरत्चन्द्र 'धर्म' मानते हैं।

यहां यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि प्रेमचन्द तथा शरत्चन्द्र ने धर्म के बाह्य रूपों को किस दृष्टि से प्रस्तुत किया है। धर्म के बाहरी रूपों के विध्वंसात्मक तथा अकल्याणकारी पक्ष का चित्रण कर उनके दोषों की विवेचना, प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में की है। किंतु शरत्चन्द्र ने बाह्य रूपों को लेकर उनके दोष-गुणों पर विचार कि**

है। उनके अन्दर की विकृतियों का भी उल्लेख किया है साथ ही उनके मूल्यों को भी स्वीकार किया है। यद्यपि प्रेमचन्द ने धर्म को कर्म से पृथक् नहीं माना है—"धर्म के विषय में मैं कर्म को वचन के अनुकूल ही रखना चाहती हूं। चाहती हूं दोनों से एक ही स्वर निकले। धर्म का स्वांग भरना मेरी क्षमता के बाहर है।"[१] किंतु यह विचार प्रेमचन्द के उपन्यासों में दृढ़तापूर्वक नहीं प्रस्तुत हुआ है। इस विचार के अनुरूप एक भी व्यक्ति उनके उपन्यासों में नहीं मिलता। धर्म के इन बाह्य रूपों के प्रति सहृदयतापूर्ण दृष्टि का प्रेमचन्द के उपन्यासों में अभाव है। 'सोफिया', जिसके द्वारा यह विचार प्रस्तुत किया गया है, स्वयं अनेक स्थलों पर स्खलित होती है तथा 'स्वांग' बन जाती है। 'दाता-दीन' (गोदान), 'ज्ञानशंकर' (प्रेमाश्रम), समरकांत (कर्मभूमि) तथा महन्तों आदि के द्वारा धर्म के विकृत रूपों को ही प्रस्तुत किया गया है। 'मिसेज जानसेवक' (रंगभूमि) गिरजा जाने को ही 'धर्म' समझती है। 'ज्ञानशंकर' की सारी धार्मिक आस्था एक बहुत बड़ा पाखंड है। उसके धर्माचरण, कीर्तन-भजन का उद्देश्य 'गायत्री' को फँसाना-भर है। शरतचन्द्र ने धर्म की विकृतियों की ओर संकेत कर धार्मिक रूपों में कल्याण-कारी पक्ष को भी प्रतिबिम्बित किया है। 'राजलक्ष्मी' (श्रीकांत), 'सावित्री' (चरित्र-हीन) 'मृणाल' (गृहदाह) की आस्थाएं तथा विश्वास इसी संदर्भ में प्रस्तुत किये गये हैं।

धर्म की रूढ़ियों का प्रत्यक्ष प्रेमचन्द की कृतियों में मिलता है। 'रंगभूमि' की ईसाई 'सोफिया' मूर्तिपूजा का समर्थन करती है। 'सोफिया' को मूर्तिपूजा की भावना ने कितना अभिभूत कर दिया था इसका उल्लेख करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं "मैं मूर्तिपूजा को सर्वथा मिथ्या समझती थी। मेरा विचार था कि ऋषियों ने केवल मूर्खों की आध्यात्मिक शांति के लिए यह व्यवस्था कर दी है लेकिन इस ग्रंथ में मूर्तिपूजा का समर्थन ऐसी विद्वत्तापूर्ण युक्तियों से किया गया है कि आज से मैं मूर्तिपूजा की कायल हो गयी। लेखक ने इसे वैज्ञानिक सिद्धान्तों से सिद्ध किया है। यहां तक कि मूर्तियों का

का भव्य वर्णन किया गया है—"सुन रे श्रीकांत, तेरे जाने के बाद मैंने काली माता को अनेक दफे पुकारा था जिससे तुझे कोई न मारे। काली माता बड़ी जाग्रत देवी हैं। उन्हें मन लगाकर पुकारने से कभी कोई मार नही सकता।"[11] 'राजलक्ष्मी' के 'ठाकुर बाबा' उसके साथ ही रहते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनो उपन्यासकार मूर्तिपूजा मे निहित भावना को उच्च स्तर पर चित्रित करते है। धर्म के इस रूप का समर्थन दोनो उपन्यासकारो ने समान दृष्टि मे किया है। उसके महत्त्व को भी दोनो उपन्यासकारो की रचनाओ मे स्वीकार किया गया है।

भारतीय धार्मिक चिंताधारा मे सिद्धि तथा तन्त्र-मन्त्र का एक विशेष स्थान है। अशिक्षित तथा अज्ञान जनता मे तन्त्र-मन्त्र तथा सिद्धियो के प्रति सदैव गहरी आस्था रही है। तन्त्र-मन्त्र तथा सिद्धियो पर आधारित अनेक सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव भी भारत मे हुआ है। प्रेमचन्द के उपन्यासो मे तन्त्र-मन्त्र तथा सिद्धियो का भी उल्लेख किया गया है। 'सूरदास' के सम्बन्ध मे प्रेमचन्द ने जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है वह इस बात के समर्थन के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है—"सूरदास को अवश्य किसी देवता का इष्ट है, उसने जरूर कोई मन्त्र सिद्ध किया है नही तो उसकी इतनी कहा मजाल कि ऐसे-ऐसे प्रतापी आदमियो का सिर झुका देता। लोग कहते है, जन्त्र-मन्त्र सब ढकोसला है। यह कौतुक देखकर भी आखें नही खुलती।"[12] 'प्रेमाश्रम' मे भी 'रायसाहब कमलानन्द' के चरित्र-चित्रण करते हुए यौगिक क्रियाओ और सिद्धियो का उल्लेख किया गया है—"इस प्याले मे वह पदार्थ है, जिसका एक चमचा किसी योगी को भी उन्मत्त कर सकता है, पर मेरे लिए सूखे साग के तुल्य है। आजकल यही मेरा आहार है। मैं गर्मी मे आग खाता हू और आग ही पीता हूं, मैं शिव और शक्ति का उपासक हू, विष को दूध घी समझता हू। जाडे मे हिम कणों का सेवन करता हू और हिमालय की हवा खाता हू। हमारी आत्मा ब्रह्म का ज्योति स्वरूप है। उसे मैं देश तथा इच्छाओ और चिंताओ से मुक्त रखना चाहता हू। आत्मा के लिए पूर्ण अखड स्वतन्त्रता सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। मेरे लिए किसी काम का कोई निर्दिष्ट समय नही है।"[13] शरतचन्द्र ने भी 'श्रीकांत' उपन्यास मे 'अन्नदा दीदी' और 'इन्द्रनाथ' के प्रसग मे तन्त्र-मन्त्र का उल्लेख किया है। 'इन्द्रनाथ' को विश्वास था कि 'शाहजी' और 'अन्नदा दीदी' मुर्दे को जीवित कर सकते हैं तथा साप को पकड़ने का मन्त्र जानते हैं। किंतु शरतचन्द्र ने ऐसी मिथ्या धारणाओ का खण्डन किया है। "हम लोग मन्त्र-तन्त्र कुछ नही जानते, मुर्दे को भी नही जिला सकते, कौड़ी फेंक कर साप को भी पकड़ कर नही ला सकते और कोई कर सकता है या नही सो तो मैं नही जानती, परन्तु हम लोगो मे ऐसी कोई भी शक्ति नही है।"[14]

सिद्धि तथा तन्त्र-मन्त्र के विकृत रूप को भूत-प्रेत की कल्पना करके अनेक अन्ध-विश्वासो का जन्म होता है। पीपल के पेड़ पर, अथवा किसी अन्य पेड़ पर या श्मशान

के भूत-प्रेतों के निवास की कल्पना ग्रामीण-समाज में प्राय की गयी है। भूत-प्रेतों की परिकल्पना को भी धार्मिक भावना का रंग दे दिया गया। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने ऐसे अन्धविश्वासों का खण्डन, अपने उपन्यासों में किया है। भूत-प्रेत सम्बन्धी मिथ्या धारणाओं की परिकल्पना को दोनों उपन्यासकार अत्यन्त हेय दृष्टि से चित्रित करते है। 'सेवासदन' में 'सदन' द्वारा प्रेमचन्द ने भूत-प्रेत की कल्पना की निस्सारिता का चित्रण अत्यन्त आकर्षक रूप में किया है—"गाँव से दो मील पर पीपल का एक वृक्ष था। यह जनश्रुति थी कि वहां भूतों का अड्डा है। सबके सब उसी वृक्ष पर रहते हैं। एक कमली वाला भूत उनका सरदार है। वह मुसाफिरों के सामने काली कमली ओढ़े, खड़ाऊ पहने आता है और हाथ फैलाकर कुछ मांगता है। मुसाफिर ज्यों ही देने के लिए हाथ बढ़ाता है, वह अदृश्य हो जाता है। मालूम नहीं इस क्रीड़ा से उसका क्या प्रयोजन था। रात को कोई मनुष्य उस रास्ते में अकेले न आता और जो कोई साहस करके चला जाता वह कोई न कोई अलौकिक बात अवश्य देखता।"[१०] प्रेमचन्द के 'सदन' द्वारा पीपल के तने को हिलवा कर ऐसे अन्धविश्वासों की जड़ को भी हिला दिया है—"उसने पीपल की परिक्रमा की और उसे दोनों हाथों से बलपूर्वक हिलाने की चेष्टा की। यह विचित्र साहस था। ऊपर पत्थर, नीचे पानी, एक जरा-सी आवाज़, एक जरा-सी पत्ती की खड़कन उसके जीवन का निपटारा कर सकती थी। इससे निकल कर सदन अभिमान से सिर उठाए आगे बढ़ा।"[११]

शरतचन्द्र के उपन्यासों में भी भूत-प्रेत सम्बन्धी लोक-प्रचलित धारणाओं का वर्णन प्रेमचन्द के उपन्यासों की ही तरह हुआ है। "यह तो मैं अपने ही गाँव के दक्षिण के मुहल्ले के किनारे से जा रहा हूँ। उसने न जाने कब शूल की व्यथा के मारे इस इमली के पेड़ की ऊपर की डाल में रस्सी बाँधकर आत्महत्या कर ली थी। की थी नहीं, नहीं जानता, पर प्राय, और सब गाँवों की तरह यहाँ भी यह जनश्रुति है। पेड़ रास्ते के किनारे है, बचपन में इस पर नजर पड़ते ही शरीर में काँटे उठ आते थे, आँखें बन्द करके एक ही दौड़ में उस स्थान को पार कर जाना पड़ता था।"[१२] 'श्रीकान्त' के प्रथम पर्व में भूत-प्रेत तथा श्मशान का विस्तार से वर्णन हुआ है। जिसमें शरतचन्द्र ने यही दिखाया है कि भ्रान्ति और गलत मनोविज्ञान के कारण ही रात्रि की निर्जनता में भूत-प्रेत का आभास होता है। वस्तुत शरतचन्द्र ने उसे मन का विकार माना है। अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए शरतचन्द्र ने लिखा है—"किस तरह उस सूची-भेद्य अंधकारपूर्ण आधी रात को मैं अकेला, रास्ते को पहचानता हुआ तालाब के टूटे घाट से इस महाश्मशान के समीप आ उपस्थित हुआ, और किसके कदमों की वह आवाज इस स्थान को बुलाती और इशारा करती हुई, इतनी ही देर में सामने विलीन हो गयी, इन सब प्रश्नों की मीमांसा करने-जैसी बुद्धि मुझ में नहीं है। पाठकों के

समीप अपने इस दैन्य को स्वीकार करने मे मुझे जरा भी लज्जा नही है। यह रहस्य आज भी मेरे समीप उतने ही अधकार से ढका हुआ है। परन्तु इसलिए प्रेत योनियो को स्वीकार करना भी इस स्वीकारोक्ति का प्रच्छन्न तात्पर्य नही है।"[१८]

विभिन्न धार्मिक मतवादो को लेकर सघर्ष की स्थिति प्राय उत्पन्न होती रही है। भारत मे हिन्दू और मुसलमानो के बीच अपने-अपने धार्मिक मतवादों को लेकर निकट अतीत मे प्राय सघर्ष उत्पन्न हुआ है। धर्म के विभिन्न दृष्टिकोणो को लेकर ही साम्प्रदायिकता की उत्पत्ति हुई है। साम्प्रदायिक भावनाओं के मूल मे धर्म की सकीर्णताए विद्यमान रहती हैं। अपने-अपने मतो को उच्च सिद्ध करने की भावना के परिणामस्वरूप, साम्प्रदायिक तत्त्वों का विकास होता है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो मे धर्म की सकीर्णताओ का विरोध किया है। 'कायाकल्प' मे धर्म से उत्पन्न साम्प्रदायिकता तथा हिन्दू-मुसलमान के पारस्परिक द्वेष का चित्रण किया गया है। मुल्ला और पडितो द्वारा धर्म की जिन मान्यताओ को प्रोत्साहित किया जाता है उनमे एक दूसरे के धर्म पर आक्षेप करने की भावना से सघर्ष पैदा होता है। प्रेमचन्द ने इस प्रकार के साम्प्रदायिक झगड़ो के कुपरिणामो को दिखाया है—"आगरे के हिन्दुओ और मुसलमानो मे आये-दिन जूतियाँ चलती रहती थी। जरा-जरा-सी बात पर दोनो दलों के सिरफिरे जमा हो जाते थे और दो-चार के अंग-भग हो जाते।"[१९] 'बाबू यशोदानदन' ऐसे ही झगडो के शिकार हो जाते है। धार्मिक सकीर्णताओ से उत्पन्न द्वेष और घृणा मनुष्य के सामाजिक और वैयक्तिक जीवन को कितना कटु बना देता है इसका वर्णन प्रेमचन्द ने 'रगभूमि' मे 'सोफिया' के माध्यम से प्रस्तुत किया है। अपनी मा के धार्मिक विचारो से सहमत न होने के कारण ही 'सोफिया' को पारिवारिक सुख से भी वचित होना पडा है। 'सोफिया' धर्म को उदार और व्यापक दृष्टि से देखती है। अपनी मा की भाति वह नियमित रूप से गिरजे नही जाती है। 'मिसेज जानसेवक' धर्म की तथाकथित अनियमितताओ को नही सह सकती। वस्तुत 'रगभूमि' के व्यापकत्व मे धार्मिक और साम्प्रदायिक सघर्ष का चित्रण उपन्यासकार ने गहराई से किया है। धर्म की सकीर्णताओ से उत्पन्न कुपरिणामो को दिखाकर उपन्यासकार ने उदार धार्मिक दृष्टिकोण अपनाने का आग्रह किया है। ईसाई 'सोफिया' के माध्यम से इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए प्रेमचन्द लिखते है—"साम्प्रदायिक धर्म शिक्षण ने सोफिया को साम्प्रदायिक सकीर्णताओ से मुक्त कर दिया था। उसकी दृष्टि मे भिन्न-भिन्न मत केवल एक ही सत्य के भिन्न-भिन्न नाम थे। उसे अब किसी से विरोध न था। जिस अशान्ति ने कई महीनों तक उसके धर्म सिद्धान्तो को कुंठित कर रखा था वह विलुप्त हो गयी थी। अब शान्तिमार्ग उसके लिए अपना था।"[२०] विभिन्न धर्मों के विचारो की सकीर्णताओ से उत्पन्न धर्म-सघर्ष के जो स्वरूप प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो मे।

किए हैं वे शरतचन्द्र के उपन्यासो मे नही पाये जाते। शरतचन्द्र ने उन परिस्थितियो के बीच मनुष्य को नही देखा है। 'सावित्री' (चरित्रहीन), 'राजलक्ष्मी' (श्रीकान्त) 'षोडशी' (देनापावना) आदि मे धर्म के जिस स्वरूप का चित्रण हुआ है उसमे उनके धर्म की मान्यताओ तथा संस्कारो के बीच संघर्ष की स्थिति पैदा की गयी है।

धर्म, मनुष्य के लिए आचरण सम्बन्धी नियम भी सुलभ करता है जिसके व्यापक बन्ध मे नीति और सदाचार सम्बन्धी धारणाए भी आ जाती है। वस्तुत: धर्म के अन्तर्गत आचरण की पवित्रता तथा नीति और सदाचार सम्बन्धी विचारो का विशेष महत्त्व है। सत्य, शिव और सुन्दर की साधना, कला और धर्म दोनो का उद्देश्य होता है। अत: जो असुन्दर है, अनैतिक है, असत्य है तथा मगलहीन है वह न तो धर्म है और न कला। इसी से साहित्यकार अपनी कृतियो मे भी कल्याणकारी वस्तु को ही प्रस्तुत करता है किन्तु जो अमगल है अकल्याणकारी है उसे भी नही छोड सकता। साहित्यकार उदार दृष्टि अपनाता है जिसमे अमगल का विरोध करके मगलमय को उचित सिद्ध करना ही उसका लक्ष्य रहता है। प्रेमचन्द की सदाचार और नीति विषयक धारणा अधिक शुष्क और कठोर है। समाज और धर्म के नीति विषयक आदर्शों के प्रति प्रेमचन्द की दृष्टि परम्परावादी है। वस्तुत: प्रेमचन्द पूर्ण रूप से नीतिज्ञ एव शुद्धतावादी उपन्यासकार है। जो नीति के अनुकूल नही है, जो सदाचार के विरुद्ध है उसका समर्थन प्रेमचन्द ने अपनी कृतियो मे किसी प्रकार नहीं किया है। यही कारण है कि मनुष्य के आचरण की पवित्रता के सम्बन्ध मे प्रेमचन्द के उपन्यासो मे अधिक बल दिया गया है। काम-वासना और अनियन्त्रित भोग का विरोध प्रेमचन्द के उपन्यासो मे सर्वत्र देखा जा सकता है। 'मातादीन' और 'सिलिया' (गोदान) के सम्बन्ध का निर्वाह प्रेमचन्द ने अत्यन्त कुशलता के साथ किया है। इन दोनो के सम्बन्धो मे किसी प्रकार भी उच्छृंखलता नहीं आने पाती है। धर्म का ही आश्रय लेकर 'मातादीन' और 'सिलिया' के सम्बन्धो को परिपूर्ण किया गया है — 'मै ब्राह्मण नहीं चमार ही रहना चाहता हू। जो धरम पाले वही ब्राह्मन है, जो धरम से मुह मोड़े वही चमार है।"

यहा यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि मातादीन और सिलिया के सम्बन्ध को नीति की कड़ियो से बाँध दिया गया है। एक ओर प्रेमचन्द धार्मिक मान्यता — जो दया पर आधारित है — का साहस प्रदर्शित करते है और दूसरी ओर स्वयं उन आचरण की पवित्रता को आधार बनाकर नैतिक बना देते है। प्रेमचन्द की इस धारणा के कारण उनके उपन्यासो मे प्रेम को अमर्यादित और [illegible] रूप मे नहीं दिखाया गया है। 'सोफिया' और 'विनय' के सम्पूर्ण प्रेम प्रसंग मे कहीं भी अनैतिक अथवा असामाजिकता का दिग्दर्शन नहीं किया गया है साथ ही प्रेमचन्द ने उनके सम्बन्धो को नीति की कड़ियो मे न बाँध पाने के कारण, असामयिक मृत्यु के द्वारा उनके प्रेम-

नायकों में आत्मदमन का स्वरूप भी प्रस्तुत हुआ है। 'गायत्री' (प्रेमाश्रम) में मन के रूप को स्पष्टतः देखा जा सकता है। धार्मिक कट्टरताओं के कारण वह में विधवा हो जाने पर भी अपने हृदय की भावनाओं को स्वच्छन्दतापूर्वक व्यक्त कर सकती। 'गायत्री' के माध्यम से आत्मदमन की ओर प्रेमचन्द ने संकेत है—"मेरे लिए अब तीर्थ-यात्रा, गंगा-स्नान, पूजा-पाठ, दान और व्रत है। यह र-विन्यास सोहागिन के लिए है।"

शरतचन्द्र के उपन्यासों में आत्मदमन की निन्दा की गयी है। शरतचन्द्र ने दृष्टिकोण को कई स्थलों पर व्यक्त किया है। एक स्थल पर वे लिखते हैं—"आत्म-ह के उग्र दम्भ से आध्यात्मिकता क्षीण होने लगती है।" शरतचन्द्र ने ब्रह्मचर्य महत्ता को माना है तथा यौन-संयम के सत्य की अवहेलना नहीं की है किन्तु उसे र रूप में स्वीकार किया है—"अन्य सभी संयमों की तरह यौन-संयम भी सत्य है र वह गौण सत्य है।" शरतचन्द्र के अनुसार आत्मदमन में अपने आप में ठगाना पड़ता है। उससे किसी बहुत बड़े आदर्श की प्राप्ति की सम्भावना वे नहीं करते। मल' (शेषप्रश्न) के द्वारा शरतचन्द्र ने इसी कारण 'हरेन्द्र' के ब्रह्मचर्य आश्रम की कटु लोचना की है। आत्मदमन और ब्रह्मचर्य के सारहीन लक्ष्य और निरर्थक साधना के रा जीवन के गौरव को नहीं प्राप्त किया जा सकता। इसी से आश्रम के बच्चों को खकर 'कमल' ने कहा है—"इन सब बच्चों को इतने आडम्बर के साथ इस तरह निष्फल दरिद्रता का आचरण कराने का नाम क्या आदमी बनाना है हरेन्द्र बाबू ? ये ते हैं यहां के ब्रह्मचारी ? इन्हें आदमी बनाना हो तो साधारण और स्वाभाविक मार्ग बनाइये। झूठे दुख का बोझ सिर पर लाद कर इन्हें बौना या कुबड़ा न बना इसलिए।" इसी कारण 'राजलक्ष्मी' ने 'स्वामी वज्रानन्द' से घर लौट जाने के लिए बार-बार आग्रह किया है तथा उससे अनेक कौतूहलपूर्ण प्रश्न किये हैं—"क्यों घर के लिए तुम्हारा मन चंचल नहीं होता है ?

साधु ने संक्षेप में कहा, नहीं।

है, जो हिन्दू कहते हैं वे हिन्दू समाज को हैरान करते हैं।" इस दृष्टिकोण को एक अन्य स्थल पर शरतचन्द्र ने व्यक्त किया है—"हमारे समाज को जो लोग देश में, विदेश में सबके सामने हेय साबित करना चाहते हैं उनकी भलाई उन्हीं के पास रहे, हम लोग उनके शत्रु हैं।" 'गृहदाह' के कट्टर ब्रह्म समाजी 'केदार बाबू' का धर्म के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण भी शरतचन्द्र की हिन्दू धर्म में गहरी आस्था का द्योतक है—"यद्यपि अब तक देवी-देवता और मन्त्र-तन्त्रों में रत्ती भर भी विश्वास नहीं हो पाया, मगर फिर भी जब अपनी मां को देखता हूं कि नहाने के बाद मटमैले रंग का पट-वस्त्र पहन के सन्ध्या करने जा रही है तभी मेरी इच्छा होती है कि मैं भी जनेऊ पहन कर उसी तरह पूजा के पास लेकर बैठ जाऊं।"

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों में धर्म की सकीर्णताओं, क्षुद्रताओं में ऊपर उठकर मानव को अधिक सत्यान्वेषी तथा धर्म के सार-भूत तत्त्व को ग्रहण करने की प्रेरणा दी है। इस प्रकार दोनों उपन्यासकारों ने मानवतावादी धर्म की प्रतिष्ठा की है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में उनका मानवतावादी दृष्टिकोण सर्वत्र देखा जा सकता है। 'रंगभूमि' में तो हिन्दू, ईसाई और इस्लाम धर्मों की परिस्थितियों को तथा उनकी विकृतियों को व्यापक रूप से चित्रित कर मानवतावादी धर्म की प्रतिष्ठा की गयी है। हिन्दू धर्म के प्रति असीमित आस्था होने पर भी शरतचन्द्र को धर्म की सकीर्णताएं सह्य नहीं। इसी से शरतचन्द्र ने स्पष्ट कहा भी है—"मनुष्य के चमड़े का रंग उसकी मनुष्यता का पैमाना नहीं।···धर्म भिन्न होने से ही क्या मनुष्य हीन साबित हो जाता है। यह कहां का न्याय है? मैं कहता हूं आपसे इसी वजह से मरेंगे ये लोग किसी दिन। यह तो मनुष्य को अकारण छोटा और नीचा समझना है, यह जो घृणा है, यह जो विद्वेष-भाव है, इस बात को भगवान् हरगिज माफ नहीं कर सकते।"

५

सौंदर्य-चेतना : नये सौंदर्य-बोध की प्रतिष्ठा

सौन्दर्य-चेतना के रूप में कलाकार अपनी कृतियों में जिस 'तत्त्व' का प्रतिपादन करता है, वह तत्त्व 'सौन्दर्य के पुनर्निर्माण' का न होकर सौन्दर्य के 'पुन:सृजन' का है। गुणधर्मी आधारों पर कुछ विद्वानों का मत है कि "अपनी अनुभूति...द्वारा आनन्द को उत्पन्न करने वाला तत्त्व सौन्दर्य है।"[1] गुणधर्मी तत्त्वों का अभियोजन जिस 'सौन्दर्य की उत्पत्ति'[2] करता है, उसे सौन्दर्य की पुनर्रचना माना जा सकता है। डा० सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त ने सौन्दर्य के साथ आनन्द का उल्लेख करते हुए लिखा है कि—"सौन्दर्य के साथ आनन्द का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह आनन्द साधारण प्रयोजन-सिद्धि का आनन्द नहीं होता। इसके अन्तर्गत इच्छा की तृप्ति न रहकर केवल प्राप्ति-जन्य तृप्ति रहती है। सौन्दर्य के साथ इच्छा भी मिश्रित रहती है जैसे हम सुन्दर गाना सुनना चाहते हैं, सुन्दर कविता सुनना चाहते हैं, सुन्दर फूल तथा सुन्दर छवि देखना चाहते है।"[3] जार्ज सेन्टेना ने सुन्दर की व्याख्या करते हुए उसे सत्य और शिव से सम्बन्धित किया है। जार्ज सेन्टेना का कहना है कि —"हम श्रेष्ठ अधिकारी के आधार पर जानते हैं कि सुन्दर सत्य है वह आदर्श की अभिव्यक्ति है, दैवी पूर्णता का प्रतीक है, तथा शिव का इन्द्रियग्राह्य प्रदान है।"[4] इस प्रकार जार्ज सेन्टेना ने सुन्दर की जो व्याख्या की है उसमें सत्य, शिव और सुन्दर को एक ही में समाहित करने का प्रयास किया है। अंग्रेजी का सौन्दर्य प्रेमी कवि कीट्स भी सुन्दर को सत्य और सत्य को सुन्दर मानता है।[5] साहित्यकार अपने साहित्य में जिस सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करता है तथा उससे जो आनन्द उत्पन्न होता है उसे रस भी कहा जा सकता है—"साहित्य में सौन्दर्य का सार शब्दों में रस की गोपन-विधि है। इस गोपन से, चर्वणा के और उद्दीप्त होने के कारण रस अधिकाधिक मधुर होता है।"[6]

साहित्यकार शब्दों के माध्यम से विराट्-सौन्दर्य को अंकित करता है। मानव-सौन्दर्य के साथ-साथ मानव का विभिन्न वस्तुओं से साहचर्य उसकी गूढ़ वेदना, प्रकृति से सम्पर्क तथा मानव-जीवन का आध्यात्मिक पक्ष भी प्रस्तुत करता है। ऐसा करके साहित्यकार सौन्दर्य के विभिन्न स्वरूपों को अपनी कृतियों में मूर्तिमान करता है। प्रेमचन्द

मांसल रूप का उभार दिया है।

शरत्चन्द्र ने सौंदर्य चित्रण में कल्पना का आश्रय लिया है। निःसन्देह ने अपनी अनुभूति और कल्पना के द्वारा जो चित्र अंकित किये हैं वे अत्यन्त सुंदर और मनोहर हैं। 'किरणमयी' के स्वरूप का चित्रण करते हुए शरत्चन्द्र लिखते हैं—"सिर के ऊपर जरा-सा आंचल था और उसके अन्दर यत्न से गूंथी गयी चोटी का एक हिस्सा दिखाई पड़ रहा था। देखा गया, चोटी का वेश भी अस्त-व्यस्त नहीं है। निर्दोष सुंदर मुख के ऊपर हाथ की कुप्पी का प्रकाश पड़ने से, दोनों भौंहों के बीच गहरे रंग की टिकली चमक उठी और उसी टिकली के कुछ नीचे झुकी हुई आंखों के भीतर से बिजली की एक लहर-सी दौड़ गयी। चारों ओर के घने अंधकार में उस बिजली की अपूर्व चमक क्षण भर के लिए सतीश और उपेन्द्र दोनों को जैसे एक चक्कर में डाल गई। सतीश ने स्पष्ट देख पाया कि उस रूपवती नारी के ओठों में हँसी की रेखा बाधा पाकर बार-बार लौट जाती है।"[11]

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में सौंदर्य के बाह्य रूप का वर्णन विस्तार से किया है। जब किसी वस्तु की सुन्दरता का अंकन प्रेमचन्द करते हैं तो उनकी दृष्टि उसके प्रत्येक अंग पर रहती है जिससे सौंदर्य प्रदान करने वाले सभी उपकरण बहुत स्पष्ट हो जाते हैं—"युवती का रंग था तो काला और वह भी गहरा, कपड़े बहुत ही मैले और फूहड़, आभूषण के नाम पर हाथों में केवल दो-दो मोटी चूड़ियां, सिर के बाल उलझे अलग-अलग। मुख-मण्डल का कोई भाग ऐसा नहीं, जिसे सुन्दर या सुघड़ कहा जा

कोई आदर्श नहीं है, जीवन का कोई ऊंचा उद्देश्य नहीं है—भक्ति, वैराग्य, अध्यात्म और दुनिया से किनाराकशी उसकी सबसे ऊंची कल्पनाएं हैं। हमारे उस कलाकार के विचार से जीवन का चरम लक्ष्य यही है। उसकी दृष्टि अभी इतनी व्यापक नहीं कि जीवन-संग्राम में सौंदर्य का परमोत्कर्ष देखे। उपवास और नग्नता में भी सौंदर्य का अस्तित्व सम्भव है, इसे कदाचित् वह स्वीकार नहीं करता। उसके लिए सौंदर्य सुन्दर स्त्री में है—उस बच्चों वाली गरीब रूप रहित स्त्री में नहीं जो बच्चे को खेत की मेड़ पर सुलाये पसीना बहा रही है। उसने निश्चय कर लिया है कि रंगे होंठों, कपोलों और भौंहों में निस्सन्देह सुन्दरता का वास है, उसके उलझे हुए बालों, पपड़ियां पड़े हुए होंठों और कुम्हलाये हुए गालों में सौंदर्य का प्रवेश कहां?"[4] यहां यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द की दृष्टि असुन्दर वस्तुओं में भी सुन्दरता की स्थापना करती है। इस प्रकार प्रेमचन्द संघर्ष-रत मनुष्य में तथा उपेक्षित और निम्न कोटि के प्राणी में सौंदर्य की प्रतिष्ठा करते हैं। अतः प्रेमचन्द की सौंदर्य-भावना युग-चारित्रिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों से भी प्रभावित हुई है। नये आदर्शों के निर्माण करने के कारण प्रेमचन्द के उपन्यासों में सौंदर्य-भावना को नयी दृष्टि दी गयी है।

शरतचन्द्र के सौंदर्यांकन में कवि-प्रतिभा है। शरतचन्द्र की सौंदर्य-भावना अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों की भांति ऐन्द्रिक और सूक्ष्म है जब कि प्रेमचन्द की स्थूल। प्रेमचन्द की सौंदर्य-भावना कवि सुमित्रानन्दन पंत की प्रसिद्ध पंक्ति—'सुन्दर [illegible] सब कुछ भू पर—[illegible] मात्र सुन्दर' से मिलती-जुलती प्रतीत होती है। शरतचन्द्र की सौंदर्य-भावना अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि कीट्स के निकट है जिसने अपने सौंदर्य वर्णन में ऐन्द्रिकता को अधिक महत्त्व दिया है साथ ही सुन्दर को सुन्दरतम बनाने का प्रयत्न किया है। यद्यपि शरतचन्द्र की सौंदर्य-भावना ऐन्द्रिकता को प्रश्रय नहीं देती, किंतु सुन्दर में ही सौंदर्य की प्रतिष्ठा करना शरतचन्द्र का लक्ष्य रहा है। शरतचन्द्र के उपन्यासों की सभी नायिकाएं सुन्दरी हैं किन्तु प्रेमचन्द की रचनाओं के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। प्रेमचन्द के लिए [illegible] है। [illegible] प्रेमचन्द के लिए सुन्दर है। प्रेमचन्द [illegible] सौंदर्य का [illegible] नहीं करते। प्रेमचन्द के लिए [illegible] (सौंदर्य) का [illegible] [illegible] सुन्दर नहीं है। [illegible] प्रेमचन्द के उपन्यासों में [illegible] है।

शरतचन्द्र के सौंदर्य [illegible] है। शरतचन्द्र [illegible] है। [illegible]

शरत्चन्द्र ने सौंदर्य चित्रण में कल्पना का आश्रय लिया है। निःसन्देह ने अपनी अनुभूति और कल्पना के द्वारा जो चित्र अंकित किये हैं वे अत्यन्त सुन्दर मनोहर हैं। 'किरणमयी' के स्वरूप का चित्रण करते हुए शरत्चन्द्र लिखते हैं—"सिर के ऊपर जरा-सा आंचल था और उसके अन्दर यत्न से गूंथी गयी चोटी का एक हिस्सा दिखाई पड़ रहा था। देखा गया, चोटी का वेश भी अस्त-व्यस्त नहीं है। निर्दोष सुन्दर मुख के ऊपर हाथ की कुप्पी का प्रकाश पड़ने से, दोनों भौंहों के बीच गहरे रंग की टिकली चमक उठी और उसी टिकली के कुछ नीचे झुकी हुई आंखों के भीतर से बिजली की एक लहर-सी दौड़ गयी। चारों ओर के घने अंधकार में उस बिजली की अपूर्व चमक क्षण भर के लिए सतीश और उपेन्द्र दोनों को जैसे एक चक्कर में डाल गई। सतीश ने स्पष्ट देख पाया कि उस रूपवती नारी के ओठों में हँसी की रेखा बाधा पाकर बार-बार लौट जाती है।"[1]

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में सौंदर्य के बाह्य रूप का वर्णन विस्तार से किया है। जब किसी वस्तु की सुन्दरता का अंकन प्रेमचन्द करते हैं तो उनकी दृष्टि उसके प्रत्येक अंग पर रहती है जिससे सौंदर्य प्रदान करने वाले सभी उपकरण बहुत स्पष्ट हो जाते हैं—"युवती का रंग था तो काला और वह भी गहरा, कपड़े बहुत ही मैले और फूहड़, आभूषण के नाम पर हाथों में केवल दो-दो मोटी चूड़ियां, सिर के बाल उलझे अलग-अलग। मुख-मण्डल का कोई भाग ऐसा नहीं, जिसे सुन्दर या सुघड़ कहा जा

सके, लेकिन उस स्वच्छ, निर्मल जलवायु ने उसके कालेपन में ऐसा लावण्य भर दिया था और प्रकृति की गोद में पलकर उसके अंग इतने सुडौल, सुगठित और स्वच्छंद हो गये थे कि यौवन का चित्र खींचने के लिए उससे सुन्दर कोई रूप न मिलता।"[1]

शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों में सौंदर्य का सपाट चित्रण करने की अपेक्षा, उसे संकेतों एवं प्रतीकों द्वारा अंकित किया है। 'शेषप्रश्न' की 'कमल' का रूप चित्रण उसके अंग-प्रत्यंग का वर्णन करने की अपेक्षा 'शिशिर-धौत पद्म' के साथ तुलना करके किया गया है—"वस्तुत उस स्त्री के देह पर सूखा कहने लायक कहीं भी कुछ नहीं बचा था। सब के सब भीग कर भारी हो गये है, माथे के घने काले बालों से पानी की धारा गालों पर से बह रही है--पिता और पुत्री इस नवागता रमणी के चेहरे की तरफ देखकर असीम विस्मय से निर्वाक् हो रहे। आशुबाबू खुद कवि नहीं हैं किंतु उन्हें देखते ही लगा कि ऐसे ही नारी रूप को, शायद प्राचीन काल के कवि 'शिशिर-धौत पद्म' के साथ तुलना कर गये है और जगत् में इतनी अधिक सच्ची तुलना भी शायद नहीं है।"[2]

पुरुष का नारी के प्रति सहज आकर्षण नारी के सौंदर्य के मूल में है। नारी के प्रति पुरुष के आकर्षण का उल्लेख करते हुए जार्ज सेन्टेना ने लिखा है—"जैसे एक वीणा उंगलियों को स्पंदित करती है, प्रत्येक वायु को कुछ संगीत देती है, वैसे ही मनुष्य की प्रकृति जो नारी के प्रति निश्चित ही ग्रहणशील है, एक ही समय में दूसरे प्रभावों में भावुक हो जाती है तथा प्रत्येक वस्तु के प्रति कोमलता के योग्य हो जाती है।"[3]

प्रेमचन्द के उपन्यासों में नारी का जो सौंदर्य चित्रित किया गया है वह अत्यन्त साधारण है। प्रेमचन्द की नारियां प्राय साधारण स्तर की हैं अत. उनका स्वरूप चित्रण भी साधारण है। नारी के सौंदर्य-चित्रण में प्रेमचन्द की दृष्टि उसके स्थूल पक्ष की ओर रही है। कृषक नारियों के चित्र प्रेमचन्द के उपन्यासों में अत्यन्त भावपूर्ण अंकित हुए हैं—"सिलिया सांवली, सलोनी, छरहरी बालिका थी, जो रूपवती न होकर भी आकर्षक थी। उसके हास में, चितवन में, अंगों के विलास में हर्ष का उन्माद था जिससे उसकी बोटी-बोटी नाचती रहती थी, सिर से पांव तक भूसे के अणुओं से सनी, पसीने से तर, सिर के बाल आधे खुले, वह दौड़-दौड़कर अनाज ओसा रही थी, मानो तन-मन से कोई खेल खेल रही हो।"[4] परिस्थितियों के प्रभाव से बदलते हुए स्वरूप को प्रेमचन्द ने सौंदर्यमय अंकित किया है। विवाहित युवती की गरिमा और मधुरता से ओतप्रोत सौंदर्यांकन प्रेमचन्द ने अत्यन्त आकर्षक शब्दों में किया है—"मीना का रंग कितना खुल गया है। देह जैसे कंचन की तरह निखर आई है। गठन भी सुडौल हो गयी है। मुख पर गृहिणीत्व की गरिमा के साथ युवती की सलज्ज छवि भी है। [illegible] एक क्षण के लिए जैसे मन्त्रमुग्ध-सी ताकती रह गयी। यह वही [illegible] है जो मुंह-[illegible] [illegible] सिर के [illegible] सी देह लिये छोटे मोटे इधर-उधर दौड़ा करती थी।

था। फटे चिथडे लपेटे फिरती थी। आज अपने घर की रानी है। गले में हँसुली, और हुमेल है, कानो में करनफूल और सोने की बालिया, हाथों में चादी के चूडे और कगन। आखो में काजल और माग में सेंदूर।"[१४] यहाँ ग्रामीण विवाहित युवती का रूपचित्र प्रेमचन्द ने अत्यत यथार्थ अकित किया है। ग्रामीण नारी के शृगार और रूप के सम्मिश्रण से अत्यत सहज सौंदर्य की सृष्टि की गयी है। नारी के सौंदर्य-चित्रण में प्रेमचन्द की यह अपनी विशेषता है। यहा आभूषणो के प्रति ग्रामीण नारी की पसद को भी उद्घाटित किया गया है। किन्तु प्रेमचन्द आभूषण से लदी हुई नारी को सुन्दरी नही समझते। उनके अनुसार सौंदर्य के लिए अलकारो की आवश्यकता नही—"उसने आज और ही वेष रचा था। उसकी देह पर एक भी आभूषण न था। केवल एक सफेद साडी पहने हुए थी। उसका रूप-माधुर्य कभी इतना प्रस्फुटित न हुआ था। अलकार भावो के अभाव का आवरण है। सुन्दरता को अलकारो की जरूरत नहीं। कोमलता अलकारो का भार नही सह सकती।"[१५]

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो में आर्थिक परिस्थितियों से हीन हुए नारी-सौंदर्य का चित्रण किया है। इस प्रकार प्रेमचन्द ने उत्पीडित नारी की सौंदर्य-हीनता को भी अत्यत सहानुभूतिपूर्वक अकित किया है। 'धनिया' का सौंदर्य चित्रित करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं—"छतीसवा ही साल तो था, पर सारे बाल पक गये थे, चेहरे पर झुरिया पड गयी थी, सारी देह ढल गयी थी, वह सुन्दर गेहुआ रग सँवला गया था और आखो से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिन्ता ही के कारण तो? कभी तो जीवन का सुख न मिला।"[१६] गुणो को भी दृष्टि में रखकर नारी के सौंदर्य का चित्रण प्रेमचन्द ने किया है। ऐसा करते हुए उनका ध्यान नारी के सौंदर्य से पूर्ण अगो की अपेक्षा उसकी भावनाओ की ओर अधिक रहा है। परिणामस्वरूप जिस प्रकार 'सिलिया' (गोदान) अथवा 'सोना' (गोदान) को रेखाओ में बाधने का प्रयास किया गया है वैसा 'सोफिया' के सौंदर्य-चित्रण में नहीं है। 'सोफिया' का चित्रण अधिक भावनामय है—"मिस सोफिया बडी-बडी रसीली आँखो वाली, लज्जाशील युवती थी। देह अति कोमल, मानो पच-भूतो की जगह पुष्पो से उसकी सृष्टि हुई हो। रूप अति सौम्य, मानो लज्जा और विनय मूर्तिमान हो गये हो। सिर से पाव तक चेतना-ही-चेतना थी, जड का कहीं आभास तक न था।"[१७]

शरत्चन्द्र ने अपने उपन्यासो में नारी के जिस स्वरूप का चित्रण किया है वह अत्यन्त सुन्दर तथा मधुर है। शरत्चन्द्र के उपन्यासो की सभी नायिकाए (अरक्षणीया की 'ज्ञानदा' को छोड कर) इतनी सुन्दर है कि जैसे वे अप्सरा की सहेलिया हो। वस्तुत शरत्चन्द्र उच्च सौंदर्य-भावना से प्रेरित है। प्रेमचन्द ने जहा असुन्दर में भी सुन्दर की स्थापना की है वहा शरत्चन्द्र ने सुन्दर को ही और अधिक सुन्दर बनाया है। इसी से

शरतचन्द्र का नारी सौंदर्यांकन अत्यत मोहक हो उठा है। अपने असीमित सौंदर्य के कारण शरतचन्द्र की नायिकाएं पुरुषों को सहज ही में मोह लेती हैं। शरतचन्द्र ने नारी-सौंदर्य का चित्रण अत्यत सूक्ष्म सकेतों द्वारा किया है। प्रेमचन्द की भांति सौंदर्य का स्थूल चित्र अकित करने की प्रवृत्ति शरतचन्द्र में नही है। शरतचन्द्र थोड़े से शब्दों में आकृति खीचकर सौंदर्य को उभारते हैं—"सुरेश ने देखा, लड़की सलोनी-सांवली, छरहरे बदन की है। कपोल, ठोडी, ललाट—सारे चेहरे का डौल अत्यंत सुन्दर और सुकुमार है। आखों की दृष्टि मे एक तरह की स्थिर बुद्धि की आभा है।"[१०] एक अन्य स्थल पर स्त्री के सौंदर्य को उसके अगों तथा अलकरणों के द्वारा समन्वित प्रभाव उत्पन्न करके चित्र को अत्यत मोहक बनाया गया है—"रग कच्चे सोने जैसा, दाक्षिणात्य ढग का जूड़ा बधा हुआ है, हाथो मे गिनती की चार-चार सोने की चूड़ियां हैं, गर्दन के पास सोने के हार का कुछ हिस्सा चमक रहा है, कानों मे सब्ज नगदार एरन लटक रहे हैं, जो नगों पर प्रकाश पड़ने से सांप की आखो के समान चमक उठे हैं, यही तो चाहिये। ललाट, ठोडी, नाक, आख, भौहें, कही पर जरा भी कोई नुक्स नही। कैसा सुन्दर आश्चर्यजनक रूप है।"[११] शरतचन्द्र के उपन्यासो मे इस प्रकार का सौंदर्य-चित्रण बहुत साफ और मोहक है। उन्होने रमणी के साधारण सौंदर्य को अपनी चित्रण शैली द्वारा असाधारण बना दिया है। 'सावित्री' (चरित्रहीन), 'अचला' (गृहदाह), 'भारती' (पथ के दावेदार) आदि असाधारण सुन्दरी नही हैं किंतु शरतचन्द्र ने उनका चित्रण करके साधारण की सीमा से ऊपर उठा दिया है। 'भारती' का चित्रण करते हुए शरतचन्द्र लिखते हैं—"उसका रग अग्रेजो की तरह सफेद नही, पर है खूब गोरी। उम्र उन्नीस-बीस या और भी कुछ ज्यादा हो सकती है, और जरा कुछ लम्बी होने से ही शायद कुछ दुबली-सी दिखाई दी। ऊपर के ओठ के नीचे,सामने के दो दांत जरा ऊंचे न मालूम होते तो चेहरा शायद अच्छा ही लगता। पावो मे स्लीपर थे और बदन पर बढ़िया मद्रासी साड़ी, शायद त्यौहार होने से—लेकिन ढग कुछ बगाली और पारसियो जैसा था।"[१२] 'अचला' का सौंदर्यांकन भी ऐसा ही मनोहर हुआ है—"केदारबाबू खुद जाकर जब अचला को बुला लाये तब अपरान्ह सूर्य की रक्तिम रश्मिया पश्चिम की खिड़की और दरवाजों मे से सारे घर मे बिखर रही थी। उस प्रकाश मे उद्भासित उस तरुणी की छरहरी देह की तरफ देख कर क्षण-भर के लिए सुरेश के विक्षुब्ध मन पर एक तरह का मोह और पुलक का स्पर्श खेल गया।"[१३]

कहीं-कहीं शरतचन्द्र नारी-सौंदर्य का चित्रण पुरुष पर प्रभाव डाल कर करते हैं। ऐसा करते समय शरतचन्द्र की दृष्टि पुरुष पर पड़े हुए प्रभाव तथा उसके आकर्षण द्वारा सौंदर्य को स्पष्ट करते हैं। नारी का यह अपरवश तथा रहस्यमय सौंदर्य शरतचन्द्र के उपन्यासो मे प्राय. देखा जा सकता है। 'भारती' का सौंदर्य चित्रित करते

उसका 'अपूर्व' पर पड़े उसके सौंदर्य के प्रभाव को देखा जा सकता है—"सवेरे उसकी नींद खुली भाभी के पुकारने पर। आँखें खोल कर देखा कि सामने उसके पाँयते के पास भाभी खड़ी है, पूरब की खिड़की से प्रभात-सूर्य का रंगीन प्रकाश उसके सद्य-स्नान से भीगे हुए बालों पर, उसकी सफेद रेशम की साड़ी की लाल किनारी पर और उसके सुन्दर मुखड़े के स्निग्ध श्याम रंग पर पड़ रहा है। उसका यह अपूर्व सौंदर्य अपूर्व की दृष्टि में आ समाया।"[१७] 'देना पावना' की 'षोडशी' का भी अद्भुत सौंदर्य 'जीवानन्द' की आँखों में समा गया है—"नारी का एक तरह का रूप होता है, जिसे जवानी के दूसरे सिरे पर पहुँचे बिना पुरुष किसी दिन नहीं देख पाता। वही अदृष्ट पूर्व अद्भुत नारी का रूप आज षोडशी के रूखे बिखरे बालों में, उसकी उपवास-कठिन देह में, उसके निपीड़ित यौवन के स्पंदन में, उसकी उन्मादित प्रवृत्ति की शुष्कता में, शून्यता में, उसके अंग अंग में पहले-पहल जीवानन्द की आँखों के सामने उघड़कर दिखाई दिया।"[१८] डा० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त ने भी शरतचन्द्र की इस विशेषता का उल्लेख 'दत्ता' और 'विजया' (दत्ता) का संदर्भ देते हुए किया है। डा० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त लिखते हैं कि—"अक्सर शरतचन्द्र रमणी के रूप का सीधे-सीधे वर्णन न करके दूसरे के ऊपर उसका प्रभाव दिखा कर रूप-माधुरी की ओर हमारी दृष्टि आकर्षित करते हैं।"[१९] 'विजया' की सुन्दरता पर 'नरेन्द्र' मुग्ध हो गया है। 'नरेन्द्र' की मुग्धता के माध्यम से 'विजया' के सौंदर्य का चित्रण किया गया है। 'नरेन्द्र' का किसी स्त्री के प्रति आकर्षण इस बात का द्योतक है कि वह स्त्री अवश्य ही सुन्दरी है। 'विजया' को देखकर 'नरेन्द्र' कहता है—"मैं जब विलायत में था, तब मैंने चित्र बनाना भी सीखा था। आपको तो मैंने कई बार देखा है, परन्तु आज आपके इस कमरे में आते ही मेरी आखें खुल गयी हैं। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हू कि कोई भी चित्र बनाने वाला हो, आपको देख कर उसे आज लोभ हुए बिना न रहेगा। वाह क्या सौंदर्य है!"[२०]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने नारी के सौंदर्यांकन मे केवल ऐन्द्रिकपक्ष को महत्त्व नही दिया है। इसी से रमणी का भव्य और दिव्य सौंदर्य प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासो मे अंकित हुआ है। दोनो उपन्यासकारो ने नारी के शृंगार-प्रसाधित रूप की अपेक्षा सरल और स्वाभाविक सौंदर्य की प्रशंसा की है। किंतु प्रेमचन्द ने रमणी के सौंदर्य को कहीं-कहीं स्पष्ट अभिव्यक्त नही किया है, वरन् पुरुष पर नारी के सौंदर्य का प्रभाव न दिखा कर उसे केवल सुन्दरी कह दिया गया है। 'सेवासदन' की 'सुमन' के सम्बन्ध मे ऐसा ही हुआ है। 'सुमन' को सुन्दरी तो कई स्थलो पर कहा गया है परन्तु उसके सौंदर्य का वर्णन नही किया गया है। शरतचन्द्र ने नारी के सौंदर्य का पुरुष पर प्रभाव दिखा कर उसे महत्त्वपूर्ण बना दिया है।

नारी का सौंदर्य शरतचन्द्र के उपन्यासो में आश्चर्य की भावना से पूर्ण अंकित

हुआ है। नारी के असीमित सौंदर्य को देख कर प्रायः पुरुष अचम्भित रह गया है। रमणी के सौंदर्य-वर्णन मे शरतचन्द्र की यह भावना प्रायः परिलक्षित होती है। 'विराज' के असीमित सौंदर्य को देखकर 'राजेन्द्र' इतना विमोहित हो गया कि—"उसे जैसे एकाएक यह विश्वास नही हुआ कि मनुष्य के भी इतना रूप होता है। वह इस ओर से आँखें न फेर सका। चित्र-लिखित-सा टकटकी लगाकर, इस अतुल असीम रूपराशि को मगन होकर निहारने लगा।"[10] प्रेमचन्द ने भी रमणी के सौंदर्य का वर्णन करते समय उसके असीमित रूप को देखकर इसी प्रकार आश्चर्य किया है—'मनोरमा' का सौंदर्य अत्यंत भव्यता के साथ चित्रित किया गया है—"कितनी रूप-छटा है, मानो ऊषा के हृदय से ज्योतिमय मधुर संगीत की कोमल, सरस, शीतल ध्वनि निकल रही हो।"[11] किंतु शरतचन्द्र की सौंदर्य-भावना मे नारी का सौंदर्य प्रेमचन्द की अपेक्षा अधिक भावनामय अंकित हुआ है। रमणी का सौंदर्य शरतचन्द्र के उपन्यासों मे चरम अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख दिखाई पडता है। 'किरणमयी' और 'कमल' का सौंदर्य जैसे इस पृथ्वी के बाहर का हो—"कल दीपक के प्रकाश मे जो मुख सुन्दर दिखाई दिया था, आज दिन मे सूर्य के प्रकाश मे स्पष्ट जान पड़ा कि ऐसा सौंदर्य और कभी नजर नही आया—किसी जीवित मे भी नही और किसी चित्र मे नही।"[12] 'सतीश' ने एक दिन 'किरणमयी' से स्पष्ट कह भी दिया—"लेकिन अगर कुछ हो, तो मैं यह कहूँगा कि आपके जैसा रूप शायद इस पृथ्वी पर नही है।"[13] 'कमल' के जैसा सौंदर्य 'आशुबाबू' ने पहले कभी नही देखा—"अजी अविनाश बाबू, शिवनाथ की स्त्री के साथ तो हम लोगो का परिचय हो गया। लड़की है बिलकुल लक्ष्मी की मूर्ति। ऐसा रूप कभी नही देखा भाई।"[14]

प्रेमचन्द के उपन्यासों मे नारियों के नामो मे सौंदर्य-भावना का अभाव है। 'धनिया', 'झुनिया', 'गायत्री', 'श्रद्धा', 'जालपा', 'सुखदा', 'अहल्या' आदि नाम सौंदर्यमय नही कहे जा सकते। 'मनोरमा' मे रमाने और आकर्पित करने वाला गुण अवश्य है। किंतु शरतचन्द्र मे नारियो के नामकरण के साथ उच्च सौंदर्य-भावना निहित है। शरतचन्द्र की नायिकाओ के नाम सौंदर्य-बोध को जागृत करने वाले हैं। उनके नामों मे भी सौंदर्य का असीमित आकर्पण है। 'किरणमयी', 'राजलक्ष्मी', 'कमल' तथा 'कमललता' अपने रूप और गुण को सार्थक करने वाले नाम हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासो मे पुरुप का सौंदर्य जीवन-संग्राम मे संघर्प-रत अंकित हुआ है। वस्तुतः प्रेमचन्द की सौंदर्य-भावना संघर्प-रत मानव के बीच परिलक्षित होती है। यह बात उनके नारी-पात्रों के सौंदर्य-चित्रण मे भी निहित है। 'सुखदा' के सौंदर्य का अंकन उसके संघर्पमय जीवन के माध्यम से अंकित किया है। किंतु पुरुप-सौंदर्य को रूपायित करने मे यह विशेषता अधिक

संघर्ष-रत जीवन प्रेमचन्द के लिए सौंदर्यमय है। 'होरी' के सम्बंध में भी यही बात है। 'होरी' के क्षीणकाय शरीर में भी प्रेमचन्द ने सौंदर्य की झलक देखी है—"होरी के गहरे सांवले, पिचके हुए चेहरे पर मुस्कराहट की मृदुता झलक पड़ी।" यह है किसान-जीवन का सौंदर्य जो बंजर भूमि को भी तोड़ कर हरा-भरा और उपजाऊ बनाता है। पुरुष का सौंदर्य वर्णन करने में प्रेमचन्द पुरुष के भीतरी शौर्य आदि की अभिव्यक्ति भी उसके स्वरूप के आधार पर करते हैं—"अमरकान्त सांवले रंग का, छोटा-सा दुबला-पतला कुमार था। अवस्था बीस की हो गयी थी, पर अभी मसें भी न भीगी थीं। चौदह-पन्द्रह साल का किशोर-सा लगता था। उसके मुख पर एक वेदनामय दृढ़ता, जो निराशा से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी, अंकित हो रही थी, मानो संसार में उसका कोई नहीं है। इसके साथ ही उसकी मुद्रा पर कुछ ऐसी प्रतिभा, कुछ ऐसी मनस्विता थी, कि एक बार उसे देखकर फिर भूल जाना कठिन था।" पुरुष का यह सौंदर्य उसकी दृढ़ता, लगन और कर्मशीलता के बीच प्रकट होता है।

प्रेमचन्द कभी-कभी स्वरूप का चित्रण करते समय पुरुष के केवल शारीरिक अवयवों का वर्णन वस्तु के गुणों की तुलना द्वारा करते हैं—"सिलिया का बाप हरखू—साठ साल का बूढ़ा था, काला, दुबला, सूखी मिर्च की तरह पिचका हुआ पर उतना ही तीक्ष्ण।" यहां प्रेमचन्द ने पुरुष की केवल आकृति का ही वर्णन किया है। उसमें सौंदर्य का अभाव है। पुरुष के सौंदर्य को देखने की चेष्टा नहीं की है। किंतु कहीं-कहीं वर्णन करने में प्रेमचन्द ने अवयवों में सजीवता उत्पन्न करने का प्रयास किया है जिससे आकृति सुन्दर बन पड़ी है—"जज साहब सांवले रंग के, नाटे, चकले, वृत्ताकार मनुष्य थे। उनकी लम्बी नाक और छोटी-छोटी आंखें अनायास ही मुस्कराती मालूम होती थीं।"

शरत्चन्द्र के उपन्यासों में आश्चर्य में डाल देने वाला पुरुष का रूप अंकित हुआ है। 'स्वामी दयानन्द' के सौंदर्य को देखकर 'राजलक्ष्मी' को आश्चर्य ही हुआ है—"उसकी उम्र ज्यादा नहीं थी—वह शायद बीस-बाईस के भीतर ही होगा। मगर देखने में जैसा सुकुमार वैसा ही सुन्दर। चेहरा दुबलेपन की ओर जा रहा है—शायद कुछ लम्बा होने के कारण ही ऐसा मालूम हुआ। मगर रंग तपे सोने जैसा। आंखें, भौंहें, चेहरा और ललाट की बनावट निर्दोष। वास्तव में पुरुष का इतना रूप मैंने कभी देखा हो, ऐसा नहीं मालूम हुआ।" शरत्चन्द्र ने पुरुष का सौंदर्य, हृष्ट-पुष्ट शरीर, चौड़ा मस्तक तथा सुगठित अवयवों में पाया है। 'विप्रदास', 'नरेन्द्र' तथा 'राजेन्द्र' के सौंदर्य का वर्णन करते हुए शरत्चन्द्र ने अपनी सौंदर्य-भावना को स्पष्ट किया है—"एक दीर्घाकृति अत्यन्त सुन्दर व्यक्ति पास ही खड़ा है—उसके शरीर का शक्ति-सम्पन्न गठन और अत्यन्त गोरा रंग देखकर वन्दना ने पहचान लिया

कि ये ही विप्रदास हैं।''[१८] "उसकी उम्र अनुमानतः चौबीस-पच्चीस की होगी। आदमी लम्बे डील-डौल का था लेकिन उस हिसाब से हृष्ट-पुष्ट नही वरन् दुबला-पतला था। वर्ण उज्ज्वल गोरा था, दाढी-मूछें बनी थी, पैरो मे चट्टिया थी, देह में कुर्ता नही था, केवल एक मोटी चादर के झरोखे से सफेद जनेऊ के धागे दिखाई पड़ते थे।''[१९] 'राजेन्द्र' का सौंदर्य भी इसी प्रकार का अंकित हुआ है।—"उसका चेहरा एक बार देखकर फिर भूलना मुश्किल था। उमर शायद पच्चीस-छब्बीस के लगभग होगी, रग बिलकुल साफ गोरा, सहसा देखने से अस्वाभाविक-सा मालूम पडता है। ऊंचा प्रशस्त ललाट इसी उमर मे बाल उड़ जाने के कारण सामने की तरफ बहुत बड़ा दिखाई देता है।''[२०] शरतचन्द्र, पुरुष के सौंदर्यांकन में उसके किसी विशेष गुण के द्वारा सौंदर्य की अभिवृद्धि कर देते है। 'चरित्रहीन' का 'सतीश' अधिक सुन्दर नही है किन्तु उसके कसे हुए शरीर तथा अद्भुत गायक होने के कारण ही 'सरोजनी' उसकी ओर आकृष्ट हुई है। 'शिवनाथ' (शेषप्रश्न) सुन्दर तो है ही किन्तु उसकी सुन्दरता उसके मधुर कण्ठ ने और बढा दी है। 'सुरेश' सामान्य रूप से सुन्दर है किन्तु सेवा करने की निष्कपट भावना उसे अत्यधिक सौंदर्यमय कर देती है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों मे प्रसगवश प्रकृति-सौंदर्य का चित्रण भी हुआ है। उपन्यासों मे प्रकृति-वर्णन का अवसर कम होता है अतः काव्य की भाति विस्तृत रूप से प्रकृति-सौंदर्य का अकन नही किया जा सकता। किन्तु कभी-कभी प्रकृति के वातावरण के चित्र अंकित करने के अवसर मिल जाते है। प्रकृति के अनेक सौंदर्यमय रूप प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासो मे चित्रित हुए हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यास ग्रामीण अचल से सम्बधित हैं इसलिए उनके उपन्यासों मे अनेक स्थलो पर प्रकृति-सौंदर्य की अभिव्यक्ति हुई है। प्रेमचन्द ने जहा कही प्रकृति का चित्रण किया है उसमे स्पंदन और उल्लास की छाप व्यक्त की है तथा कही-कहीं प्रकृति का मानवीकरण करने का प्रयास भी किया है—"उत्तर की पर्वत-श्रेणियो के बीच एक छोटा-सा रमणीक पहाड़ी गाव है। सामने गगा किसी बालिका की भाति हँसती-उछलती-नाचती-गाती चली जाती है। पीछे ऊंचा पहाड किसी वृद्ध योगी की भाति जटा बढ़ाये, श्याम गम्भीर, विचार-मग्न खडा है। यह गाव मानो उसकी बाल-स्मृति है, आमोद-विनोद से रजित या कोई युवावस्था का सुनहरा, मधुर स्वप्न। अब भी उन स्मृतियो को हृदय मे सुलगाये हुए, उस स्वप्न को छाती से चिपकाये हुए है।''[२१] यहा प्रेमचन्द ने प्रकृति का मानवीयकरण करके एक सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है। 'अरावली' की पहाड़ियों का दृश्य भी अत्यन्त मनोहर अंकित किया गया है—"अरावली की पहाड़ियो मे एक बड़ वृक्ष के नीचे कितने दिन बैठे हुए हैं। पावन ने उस जन-शून्य, कठोर, निष्प्रभ, पाषाणमय स्थान को प्रेम, प्रमोद और शोभा से

मण्डित कर दिया है, मानो कोई उजड़ा हुआ घर आबाद हो गया हो।"[1]

शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों में प्रकृति के विभिन्न रूपों में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की है। प्रकृति के सम्बन्ध में भी शरतचन्द्र की सौंदर्य-भावना कवि-जनित कल्पना से पूर्ण है। साथ ही शरतचन्द्र के उपन्यासों के प्रकृति-चित्र अत्यन्त मोहक, भावनापूर्ण तथा असीमित सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं। मानव के राग-विराग से ओत-प्रोत शरतचन्द्र के दृश्य-चित्र प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य को अंकित करने में भी समर्थ हुए हैं। शरतचन्द्र का प्रकृति-सौंदर्य मानव-सापेक्ष है। शरतचन्द्र के उपन्यासों में रात्रि के अनेक दृश्य सौंदर्यमय अंकित हुए हैं। शरतचन्द्र ने अंधकार में भी सौंदर्य की कल्पना की है तथा उसका भावपूर्ण चित्रण किया है—"रात्रि का भी स्वतन्त्र रूप होता है और उसे, पृथ्वी के झाड़-पाते, गिरि-पर्वत आदि जितनी भी दृश्यमान वस्तुएँ हैं उनसे, अलग करके देखा जा सकता है, वह मानो आज पहले मेरी दृष्टि में आया। मैंने आँख उठा कर देखा कि अन्तहीन काले आकाश के नीचे, सारी पृथ्वी पर आसन जमाये, गम्भीर रात्रि आँखें मूँदे ध्यान लगाये बैठी है और सम्पूर्ण चराचर विश्व मुख बंद किए, साँस रोके, अत्यन्त सावधानी से स्तब्ध होकर उस अटल शान्ति की रक्षा कर रहा है। एकाएक आँखों के ऊपर मानो सौंदर्य की एक लहर दौड़ गयी। मन में आया कि किस मिथ्यावादी ने यह बात फैलाई है कि केवल प्रकाश का ही रूप होता है, अंधकार का नहीं? भला, इतना बड़ा झूठ मनुष्य ने किस तरह चुपचाप मान लिया होगा? यह तो आकाश और मर्त्य, सबको परिव्याप्त करके, दृष्टि से भीतर-बाहर अन्धकार का पूर बहा आ रहा है। वाह-वाह! ऐसा सुन्दर रूप का झरना और कब देखा है।"[2] यहाँ शरतचन्द्र ने रात्रि को एक वियोगिनी की तरह चित्रित कर उसे मूर्तमान किया है। एक अन्य स्थल पर रात्रि के सौंदर्य का वर्णन करते हुए शरतचन्द्र ने प्रकृति को प्रेरक शक्ति के रूप में देखा है। पतझड़ के दिनों चाँदनी रात का सौंदर्य चित्रित करते हुए शरतचन्द्र लिखते हैं—"शायद पूर्णिमा के आस-पास की तिथि थी, अतएव इस आशा में था कि गम्भीर निशीथ में चन्द्रदेव सिर के ऊपर आ जाय तो तिथि के बारे में निःसंशय हो जाऊँ। मकान के चारों ओर बाँसों का घना वन है। बहुत सम्भव है कि इसी जंगल में उसका कोयल, नीलकण्ठ और बुलबुलों का झुंड रहता है और उन्हीं की अहर्निश पुकार तथा गाना कवि को व्याकुल बना देता हो। बाग के पके सूखे हुए असंख्य पत्तों ने झड़-झड़कर आँगन और चबूतरे को चारों ओर से परिव्याप्त कर रखा है। इन पर नजर पड़ते ही प्रेरणा से सारा वन क्षण भर में ही गर्जन कर उठता है कि झड़े हुए पत्तों का गीत गाया जाय।"[3]

शरतचन्द्र के उपन्यासों में एक ही दृष्टि में आने वाले प्रकृति के नयनाभिराम दृश्य का अंकन अनेक स्थलों पर हुआ है। इस प्रकार शरतचन्द्र की सौंदर्यानुभूति की

प्रकृति के उपवन मे भी शरतचन्द्र ने सौंदर्य की अनुभूति की है—"किन्तु समुद्र-जल से टकराने से जो एक तरह की ज्वाला-सी बार-बार चमक उठती है वह ज्वाला विचित्र रेखाओ मे यदि इसके सिर पर न खेलती होती तो गम्भीर कृष्ण जल-राशि की विपुलता को मैं इस अधकार मे शायद उस तरह न देख पाता। इस समय जितनी भी दूर तक मेरी दृष्टि जाती है उतनी ही दूर तक इस आलोक-माला ने मानो छोटे-छोटे प्रदीपो को जलाकर इस भयकर सौंदर्य का चेहरा मेरी आखों के सामने खोल दिया है।"[8] "जहाज के ऊपर उद्दाम लहरे सफेद फेन का किरीट सिर पर पहन कर उन्मत्त की तरह फादे पड रही थी, फिर चूर-चूर होकर न जाने कहा लुप्त हो जाती थी—फिर उठकर दौडती थी, टकराती थी और गायब हो जाती थी। इसी तरह का आघात-अभिघात का अद्भुत खेल दिवाकर मुग्ध नेत्रो से आत्म-विस्मृत होकर देखने लगा। ऊपर पूर्व दिशा के आकाश मे दिगन्त से काले-भूरे बादल पहाडो की तरह जमा होकर उठ रहे थे और उनके पीछे बाल-सूर्य निकला कि नही, एक किरण भी उसकी खबर नीचे ले आने की राह नही पा रही थी।"[9]

विराट् के प्रति मानव की असीमित जिज्ञासा ने ईश्वर की शक्ति को स्वीकृत किया है। ईश्वर सत्य है। अत सत्यानुभूति के द्वारा मानव ईश्वरीय सौंदर्य का अनिर्वचनीय आनद लेता है। "धार्मिक अनुभव मे प्रधान अश परमसत्य का प्रत्यक्ष परिचय है जिसके लिए धार्मिक जीवन की प्रथम भूमि मे प्रार्थना, दीनता, आत्म-शुद्धि और आत्म-समर्पण की भावना रहती है और परिपक्व अवस्था मे उस चरम-सत्य के साथ तादात्म्य का अनुभव, अद्भुत आह्लाद और ब्रह्मत्व का साक्षात्कार होता है। इससे प्रकट होता है कि सत्यानुभूति का आनद धर्म मे विद्यमान रहता है, और, अनुभूति के आनद का नाम ही सौंदर्य है।"[10]

ईश्वरीय शक्ति और नैतिक धारणाओ मे सौंदर्य की व्याख्या अनेक विचारको ने की है। किसी ने मानव की इच्छा-शक्तियो को ईश्वरीय शक्तिया मानकर उन्हे मूलत सुन्दर माना है तथा किसी ने अदृश्य शक्ति की अभिव्यक्ति मे सौंदर्य को स्वीकार किया है—"सौंदर्य तत्त्व की इस खोज के इतिहास पर समग्रतया दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि यूनानी आचार्य प्लेटो से लेकर हैगेल तक उनके रूपो मे सौंदर्य की खोज की गयी है। और भारतीय आलोचको के समान कभी बाह्य आकार-प्रकार मे सौंदर्य खोजा गया है, प्रकृति मे सौंदर्य मान लिया गया है और कभी उस समस्त सृष्टि के पीछे निहित किसी अज्ञात शक्ति और अज्ञात चेतना-विलास की खोज की गयी है। हम एक सिरे से छलाग मार कर दूसरे सिरे पर जा बैठे हैं। कुछ लोगो की स्थिति मध्यस्थ की सी है जो बहिरन्तर के सामञ्जस्य मे ही सौंदर्य मानते हैं। कुछ ऐसे विचारक भी है जिनकी दृष्टि, सौंदर्य को नितान्त आध्यात्मिक

को सत्यता की दृष्टि से नहीं देखा । मैं सौन्दर्य की उपासना करता हूँ, [illegible]
का साधक मानता हूँ, [illegible] प्रकट करता हूँ, जो [illegible] की सस्ती
नहीं करता ।"[illegible] प्रेमचन्द ने ईश्वरीय शक्ति को हित-अहित व मार्ग-प्रदर्शन तथा
मानव-व्यापारों के साथ मिलाकर देखा है । ईश्वरीय शक्ति का परिचय प्रेमचन्द के
उपन्यासों में मानव के हित-अहित के प्रयोजन से अलग हो कर नहीं पाया जाता
है । परिणामतः विराट् के प्रति आध्यात्मिक जिज्ञासा के द्वारा सौन्दर्य की अनुभूति प्रेमचन्द
के उपन्यासों में उपलब्ध नहीं है । 'रंगभूमि' में विनय 'सोफी' की नैतिक धारणाओं,
ईश्वर के प्रति विश्वास तथा आत्म दृढ़ता में सौन्दर्य के दर्शन प्रेमचन्द ने किए हैं । इसी
प्रकार 'सूरदास' के अदम्य साहस और आत्मबल में सौन्दर्य की झांकी अंकित हुई है ।

शरतचन्द्र ने भी विराट् के सौंदर्य का दर्शन अखण्ड रूप में नहीं किया है । प्रचलित नैतिक धारणाओं और आध्यात्मिक भावनाओं में ईश्वरीय शक्ति का अनुभव करके सौंदर्य का वर्णन करने की अपेक्षा मनुष्य की अनुभूति को ही महत्व दिया है । परिणामतः उनके उपन्यासों में सौंदर्य का खण्ड-खण्ड रूप प्रस्तुत हुआ है । शरतचन्द्र हृदय की सच्ची अनुभूति को ही सत्य स्वीकार करते हैं । मनुष्य की सत्यानुभूति को शरतचन्द्र ने ईश्वर का प्रतीक माना है । इसी से दैनिक जीवन की प्रचलित मान्यताओं का विरोध शरतचन्द्र ने अपने साहित्य में किया है तथा मनुष्य की अनुभूति को सौंदर्यमय अंकित किया है । शरतचन्द्र ने मानव की इच्छा-शक्तियों को, उसकी अनुभूतियों को सौंदर्यमय अंकित किया है । 'श्रीकांत', 'राजलक्ष्मी', 'सतीश',

आदि मे मानव की अनुभूतियो की सुन्दर छवि अंकित हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि शरत्चन्द्र मानव की अनुभूतियो को ही ईश्वरीय शक्ति के प्रेरक तत्त्व के रूप मे स्वीकार करते है। निरन्तर परिवर्तन होने वाले जीवन तथा सृष्टि के विकास-क्रम की ओर संकेत करते हुए एक स्थल पर शरत्चन्द्र ने लिखा है—"भैया सृष्टि तत्त्व की भूल सदा तुम्हारे सृष्टिकर्ता के लिए ही रहने दो, किन्तु इसके कार्य की ओर एक बार अच्छी तरह देखो। देखोगे कि इसका हर एक अणु-परमाणु निरन्तर अपने नये रूप मे सृष्टि रचना चाहता है। वह बिना थके बराबर इसी उद्योग मे लगा रहता है कि किस तरह अपने को विकसित करे, कहा जाने से —किसके साथ मिलने से—क्या करने से वह और भी सफल, और भी उन्नत होगा। इसलिए दृश्य रूप मे, अदृश्य रूप मे, भीतर-बाहर, प्रकृति मे यह नित्य परिवर्तन होता रहता है—इसी कारण पुरुष नारी मे जब ऐसा देख पाता है, जिसमे जाने या बिना जाने, वह अपने को और भी सुन्दर और भी सार्थक बना सकेगा तो उस लोभ को वह किसी तरह रोक नही सकता।" एक अन्य स्थान पर शरत्चन्द्र उस विचार को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते है—"कवि केवल सृष्टि ही नही करता, सृष्टि की रक्षा भी करता है। जो स्वभाव से ही सुन्दर है, उसे और भी सुन्दर करके प्रकट करना जैसे उसका एक काम है, वैसे ही जो सुन्दर नही है उसे असुन्दर के हाथ से बचा लेना भी उसका दूसरा काम है।" शरत्चन्द्र ने नैतिक धारणाओ तथा ईश्वरीय शक्ति मे सौंदर्य की व्याख्या इसी संदर्भ मे की है। अत स्पष्ट है कि शरत्चन्द्र मानव की अनुभूति को ही महत्त्व देते हैं तथा उसी मे ईश्वरीय सौंदर्य की छाप अंकित करते है।

वस्तुओ के सुव्यवस्थित क्रम मे, संगठन मे तथा उनके संयोजन मे भी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है। सुव्यवस्था का सौन्दर्य मानव की रुचि पर निर्भर करता है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो मे सौन्दर्य के इस पक्ष का भी चित्रण किया है—"यह कमरा और सब कमरो से बड़ा, हवादार और सुसज्जित था। दरी का फर्श था, उस पर करीने से कई गद्देदार और सादी कुरसियां लगी हुई थी। बीच मे एक छोटी-सी नक्काशीदार गोल मेज थी। शीशे की आलमारियो मे सजिल्द पुस्तके सजी हुई थी। आलो पर तरह-तरह के खिलौने रखे हुए थे। एक कोने मे मेज पर हारमोनियम रखा था। दीवारो पर धुरन्धर, रविवर्मा और कई चित्रकारो की तसवीरें शोभा दे रही थी। दो-तीन पुराने चित्र भी थे।"[5] यहा [illegible] में निहित सौन्दर्य-भावना को स्पष्टतः देखा [illegible] ने एक सौन्दर्यमय चित्र प्रस्तुत [illegible] व्यवस्थित कर सौन्दर्य-[illegible] का परि- [illegible] उल्लेख

के नायक-नायिकाओं के परस्पर आकर्षण में व्यवहार-सौन्दर्य ने उनमें स्नेह को उद्दीप्त किया है। 'श्रीकांत' के प्रति 'राजलक्ष्मी' के व्यवहार में सौन्दर्य-भावना निहित है। रात्रि में अनजाने 'श्रीकान्त' के कमरे में पहुँच कर उसके बिस्तर को ठीक कर, उसे ओढ़ा कर चुपचाप लौट आना तथा राजलक्ष्मी का स्पर्श 'श्रीकान्त' को सौन्दर्यमय प्रतीत हुआ है। 'अचला' और 'सुरेश' (गृहदाह) के प्रथम मिलन में 'अचला' का 'सुरेश' के प्रति व्यवहार 'सुरेश' को इतना सुन्दर लगा कि उसने 'अचला' के साधारण रूप को 'सुरेश' की दृष्टि में असाधारण बना दिया। 'कमललता' सुन्दरी है। किन्तु उसके सम्भाषण की शैली, उसका उठना-बैठना आदि इतना सौन्दर्यमय है कि 'श्रीकान्त' उससे बिना प्रभावित हुए नहीं रहा—"कमललता देखने में सुन्दर है, निरक्षर मूर्ख भी नहीं, उसकी बातचीत, उसका गाना, उसका आदर-प्यार और उसकी अतिथि-सेवा की आन्तरिकता के कारण वह मुझे अच्छी लगी है और इस अच्छे लगने का, प्रशंसा और रसिकता की अत्युक्ति में फैलाव करने में मैंने कंजूसी भी नहीं की है।"

५१. सौंदर्यशास्त्र—डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा, पृ० ६०
५२. सौंदर्यतत्त्व—डॉ० सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त, (अनुवादक डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित), पृ० ७८
५३ रंगभूमि, पृ० ४३६
५४ प्रेमाश्रम, पृ० २५६
५५ चरित्रहीन, पृ० २६७
५६ वही, पृ० ३०२
५७ कर्मभूमि, पृ० १२-१३
५८ श्रीकान्त, (द्वितीय पर्व), पृ० १३
५९ गोदान, पृ० ८६
६० श्रीकान्त, पृ० ६२

६

मानवीय आदर्शों की परिकल्पना

पशु और देव से भिन्न मनुष्य के उदात्त रूप को मानव कहा जा सकता है। एक सहज व्यावहारिक उदात्त स्तर पर मनुष्य को प्रतिष्ठित करने का प्रयास मानववाद करता है। मानववाद के आधार पर ही मानवीय आदर्शों की स्थापना होती है। वास्तव में मानववाद न तो धर्म है और न दर्शन। यह मनुष्य की चेतना और उसके व्यावहारिक ज्ञान से पूर्ण स्वीकृति है जो मानव-मूल्यों का निर्माण करती है। फलस्वरूप किसी दार्शनिक सिद्धान्त का न तो उसमें आग्रह होता है और न किसी मत अथवा वाद का हठ। टी० एस० इलियट ने मानववाद के विषय में विवेचना करते हुए कहा है—"मानववाद का कार्य मतों अथवा दार्शनिक सिद्धान्तों को उपस्थित करना नहीं है।"[1] मनुष्य के बहुविध आयामों में मानववाद मानव-सत्यों और मानव-मूल्यों का आकलन करता है जिसके परिणामस्वरूप असीमित उदारता और सहिष्णुता उत्पन्न होती है। मार्क्स और एंजेल्स जो समाजवाद से पृथक् आज मानववाद का कोई अर्थ नहीं मानते, अपनी पुस्तक 'होली फेमली' में लिखा है—"अगर मनुष्य अपने सम्पूर्ण ज्ञान और बोध आदि का निर्माण इंद्रियों के संसार तथा उस इन्द्रिय-संसार के अनुभव से करता है तब उससे यह बात प्रकट होती है कि यह समस्या इस प्रयोग-सिद्ध संसार को इस प्रकार व्यवस्थित करने की है कि वह वास्तविक मनुष्य को उसमें अनुभव करे एवं स्वयं को एक मनुष्य के रूप में अनुभव करके का अभ्यस्त बने।"[2] किन्तु जिस संदर्भ में राल्फ फॉक्स ने इसे उद्धृत किया है उससे मेरा मतभेद है। राल्फ फॉक्स मानते हैं कि, "लोक दृष्टि और जीवन की जानकारी के बिना, मानव व्यक्ति की पूर्णता और स्वतन्त्र अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। उपन्यास नया जीवन नहीं ढूँढ सकता, मानववाद पुनरुत्पन्न नहीं किया जा सकता जब तक कि ऐसा दृष्टिकोण न प्राप्त कर लिया जाय। वह दृष्टिकोण आज केवल मार्क्स का भौतिकवाद का दृष्टिकोण हो सकता है जो कला में समाजवादी यथार्थ को पैदा कर रहा है।।"[3] जहाँ तक 'लोक दृष्टि' और 'जीवन की जानकारी' तथा उपन्यास का उससे सम्बन्ध है राल्फ फॉक्स का विचार ठीक कहा जा सकता है किन्तु ऐसा दृष्टिकोण केवल मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में ही सम्भव है, कहना अत्यन्त सीमान्तवादी है।

मार्क्स की चिन्ताधारा में व्यक्ति बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं स्वीकार किया जाता इसी कारण सैद्धान्तिक स्तर पर मार्क्सवाद व्यक्तिवाद का विरोधी भी है। ऐसी स्थिति में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर जिन मानवीय आदर्शों की प्रतिष्ठा होगी, वे एक निश्चित विचारधारा के अनुरूप ही होंगे। मानवीय आदर्शों की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति कम सम्भव है।

मनुष्य की अन्त: प्रवृत्ति मानव-आदर्श निर्मित करने के स्वयं मार्ग खोज लेती है। किसी चिन्ताधारा से प्रभावित न होकर मनुष्य जिन आदर्शों का निर्माण अपने जीवन में करता है वे विशेष महत्त्वपूर्ण होते हैं क्योंकि मनुष्य स्वयं की परिस्थिति, वातावरण और परम्पराओं को भलीभांति समझता है। आई० ए० एकट्रान ने भी कहा है—"मनुष्य की लगन इतनी अधिक समृद्ध तथा शक्तिशालिनी है कि वह उसकी सत्ता को उसके जीवन तथा कर्मों को एक अलौकिक अर्थ प्रदान करती है। मानववाद का यही वास्तविक आधार है।"[1]

उपन्यासकार पात्रों के माध्यम से मानव-जीवन की विविधता और विषमता को अभिव्यक्त करता है। उपन्यासकार मनुष्य की परिस्थितियों, उसके वैयक्तिक अस्तित्व और उसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को विभिन्न छायाओं में उपस्थित करता है। मानव-चरित्र का सश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करने के कारण ही स्टालिन ने उपन्यासकार को 'मानव आत्मा का इंजीनियर' कहा है। आधुनिक उपन्यासकार मानव-हृदय के तल में पहुंचकर उसका सूक्ष्म विश्लेषण करता है जिसके साथ उसकी गहन अनुभूति और उसका व्यावहारिक ज्ञान सन्नद्ध रहता है। राबर्ट लिडेल के अनुसार "उपन्यासकार का काम सर्वोत्तम चुनी हुई भाषा में मानव-प्रकृति के, पर्याप्त ज्ञान को तथा उसके वैविध्य के सुखद वर्णन को विश्व में प्रतिपादित करना है।"[2] लिडेल के सुखद वर्णन को मंगलकारी भावना भी कहा जा सकता है क्योंकि कलाकार कल्याण की भावना से ओतप्रोत होता है। यद्यपि आज का बौद्धिक व्यक्ति इस प्रकार की कल्याण-भावना और मानववादी, विचारों के प्रति शंका उत्पन्न कर सकता है। वह सहिष्णुता और 'स्थिर बुद्धि' पर भी संदेह करता है किन्तु उसके इस सन्देह के आधार पर किसी प्रकार भी हीन विचारों को चिरतन, शाश्वत और मानवीय रूप नहीं प्रदान किया जा सकता। शरतचन्द्र ने भी इसी ओर संकेत करते हुए लिखा है—"साहित्य के सृजन के अन्तराल में जो स्रष्टा रहता है यदि वह छोटा हुआ तो उसकी सृष्टि भी बड़े होने में बड़ी बाधा पाती है। इस बात पर मैं विश्वास करता हूं।"[3] मानवतावादी उपन्यासकार समग्र मानवता को अपने परिवेश में बसकर मानव-मूल्यों और मानवीय आदर्शों का निर्माण करता है। वह अपने उपन्यासों में प्रचलित वादों और तर्कों से अलग हटकर मानव की समसामयिक जीवन के अनुरूप [illegible] करता है। इस सम्बन्ध में मानसिक परिवर्तनों का प्रभाव

भी उपन्यासकार पर पड़ता है क्योंकि मनुष्य निरन्तर विकासशील प्राणी है। ऐसी स्थिति में उनके आदर्शों में हेर-फेर होना भी सम्भव है। प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र ने अपने उपन्यासों में जिन मानवीय गुणों के आधार पर आदर्शों की कल्पना की है उन्हें स्पष्टतः इस पृष्ठभूमि में देखा जा सकता है।

मनुष्य न तो नारकीय है और न स्वर्गिक। वह परिपूर्णता की प्रतिच्छाया मात्र भी नहीं है। उसकी अपनी दुर्बलताएं और सबलताएं हैं किन्तु अपनी समस्त दुर्बलताओं को लिए हुए भी उसके उठने की अनन्त सम्भावनाएं हैं। मानव की जीवन-प्रक्रियाओं के इन्हीं घात-प्रतिघात को साहित्य मुखर करता है। प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र दोनों ही उपन्यासकार इस बात को मानते हैं। दोनों उपन्यासकारों के मन में साहित्य का काम मनुष्य को मनुष्य सिद्ध करना है। किसी भी आदर्श से विचलित न होकर, मनुष्य के हृदय की सच्ची अनुभूति उसके आनन्द और उसकी अक्षय करुणा को इन उपन्यासकारों ने वाणी दी है। यथार्थ के द्वारा मानवीय आदर्शों की स्थापना इन उपन्यासकारों की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। वैयक्तिक आदर्श और सामाजिक यथार्थ की टकराहट से उत्पन्न इन उपन्यासकारों का मानव प्रतिमा नहीं है बल्कि युग की समस्त सबलताओं और दुर्बलताओं को लेकर प्रस्तुत हुआ है जिसका विकासशील व्यक्तित्व भविष्य की उज्ज्वल आकांक्षाओं से सम्पृक्त है अलग-अलग नहीं।

प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र ने मनुष्य के यथार्थ स्वरूप को अपने उपन्यासों में अंकित करने की सफल चेष्टा की है। वस्तुतः उपन्यास मानव-जीवन की विविधता को विस्तार से चित्रित करने के लिए उपयुक्त साधन है। प्रेमचन्द ने उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र माना है।* प्रेमचन्द का यह विचार उनके उपन्यास-साहित्य की आधार-शिला है। अपने उपन्यासों में मनुष्य को इसी रूप में चित्रित किया है। शरत्चन्द्र के विचार में भी साहित्य मानवात्मा की बंधनहीन अभिव्यक्ति है। इसी से उन्होंने कहा भी है कि—"मनुष्य के स्वरूप को पहचानना, साहित्य की यथार्थ सामग्री है।"' शरत्चन्द्र के विचार से साहित्य दार्शनिक मतवादों से घिरा नहीं है। वह मानव की यथार्थ स्थिति को निर्देश करता है—"बुरे की वकालत करने के लिए कोई भी साहित्यिक कभी किसी दिन साहित्य की महफिल में खड़ा नहीं होता, किन्तु बहलाकर नीति की शिक्षा देना भी वह अपना कर्त्तव्य नहीं मानता। थोड़ा गहरे पैठ कर देखने से उसकी सारी साहित्यिक दुर्नीति के मूल में शायद एक ही चेष्टा हाथ लगेगी, वह यही कि वह मनुष्य को मनुष्य ही सिद्ध करना चाहता है।"" शरत्चन्द्र का यही मानव आदर्श है और यही साहित्य धर्म जिसे उन्होंने अपने विभिन्न उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द ने भी इसे स्वीकार किया है—"साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं है। यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्य-

कार का पद इसमें बड़ी ऊंचा है। वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्भावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है। कम से कम उसका यही उद्देश्य होना चाहिए।"[१]

प्रेमचन्द के उपन्यासों में निर्दोष आदर्श की कल्पना नहीं हुई है। वे इसे ठीक भी नहीं मानते। प्रेमचन्द ने स्वयं लिखा है—"चरित्र को उत्कृष्ट और आदर्श बनाने के लिए यह जरूरी नहीं कि वह निर्दोष हो—महान् से महान् पुरुषों में भी कुछ न कुछ कमजोरियां होती है। चरित्र को सजीव बनाने के लिए उसकी कमजोरियों का दिग्दर्शन कराने में कोई हानि नहीं होती। बल्कि यही कमजोरियां उस चरित्र को मनुष्य बना देती है। निर्दोष चरित्र तो देवता हो जायगा और हम उसे समझ ही न सकेंगे।"[१] इस प्रकार प्रेमचन्द ने मनुष्य को मनुष्य ही चित्रित करने का प्रयास किया है। मनुष्य में दुर्बलताओं का होना स्वाभाविक है। प्रेमचन्द का यह विचार नवीन मानवीय आदर्शों को लेकर उपस्थित हुआ है। यद्यपि वे यह भी स्वीकार करते है कि "इस विषय में अभी मतभेद है कि उपन्यास में मानवीय दुर्बलताओं और कुवासनाओं का, कमजोरियों और अपकीर्तियों का, विवाद वर्णन वाछनीय है या नहीं, मगर इसमें कोई संदेह नहीं कि जो लेखक अपने को इन्हीं विषयों में बाध लेता है, वह कभी उस कलाविद् की महानता को नहीं पा सकता, जो जीवन-संग्राम में एक मनुष्य की आन्तरिक दशा को, सत् और असत् के संघर्ष और अन्त में सत्य की विजय को मार्मिक ढंग से दर्शाता है।"[१] प्रेमचन्द के उपन्यास इन दो विचारों के सामंजस्य को लेकर चले हैं। अपने इन्हीं विचारों के आधार पर उन्होंने अपने मानवीय पात्रों की रचना की है।

'होरी' प्रेमचन्द का आदर्श पात्र है किन्तु उसे आदर्श रूप में चित्रित करते हुए उसके मनुष्य-रूप का विशेष ध्यान रखा है। उसे निर्दोष आदर्श नहीं बनाया है। वह मानवता के उज्ज्वल पक्ष को अपनाये हुए हैं। उसमें महानुभूति, दया, ममता और करुणा है। 'भोला' के पास चारे के अभाव में वह उसकी मदद करता है। अनेक कष्ट उठा-उठाकर अपने भागते हुए भाई की खेती का प्रबन्ध जी तोड़कर करता है। दूसरे के दुःख और दर्द में वह हाथ बँटाने के लिए आगे रहता है। किन्तु प्रेमचन्द ने उसके इन गुणों का ही चित्रण नहीं किया है। उसकी दुर्बलताओं को, उसकी स्वार्थी वृत्तियों की झाकी भी प्रस्तुत की है। वही—'होरी' जो अपने भाइयों के बटवारे के समय दूसरे के हिस्से की एक कौड़ी भी दबा लेना अनुचित समझता है—चौधरी दमड़ी बसार से बासों की बिक्री के समय कहता है—"सब कुछ बट गया चौधरी। जिनको लड़कों की तरह पाला-पोसा, वह अब बराबर के हिस्सेदार हैं, लेकिन भाई का हिस्सा खाने की अपनी नियत नहीं है। इधर तुमसे रुपये मिलेंगे, उधर दोनों भाइयों को बाट दूंगा। चार दिन की जिन्दगी में क्यों किसी से छल-कपट करू। नहीं कह दूं कि बीस रुपये

सैकडे मे बेचे है तो उन्हे क्या पता लगेगा। तुम उनसे कहने थोड़ा ही जाओगे। तुम्हे मैंने तो बराबर अपना भाई समझा है।"[११] यहा प्रेमचन्द ने 'होरी' में बड़े ही स्वाभाविक ढग से मनुष्य की कमजोरी को उभारकर अकित किया है। 'होरी' अवसर के उपयुक्त भाषा का प्रयोग करना भी जानता है। कितनी चतुरता से उसने 'दमडी बसार' को 'भाई' कहकर अपना बना लेना चाहा। 'होरी' प्रेमचन्द के मानवीय आदर्श का प्रतीक है। जिसके चरित्र मे ऐसी मानवीय दुर्बलताओं को अकित कर प्रेमचन्द ने नवीन मानवीय आदर्श की स्थापना की है।

शरतचन्द्र ने भी अपने पात्रों को निर्दोष नही अंकित किया है। किन्तु कही-कही शरतचन्द्र के पात्र अपनी महानता को लिये हुए साधारण मनुष्य की सीमा से दूर हटकर असाधारण की सीमा तक पहुच गये है। डा० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त ने ऐसे दो पात्रो की ओर सकेत किया है। उन्होने 'रमेश' (ग्रामीण समाज) और 'विप्रदास' को शरतचन्द्र के आदर्श-चरित्र माना है।"[१४] 'रमेश' को मानवीय आदर्श के रूपों मे ग्रहण किया जा सकता है। किन्तु 'विप्रदास' को आदर्श-चरित्र नही कहा जा सकता। 'विप्रदास' मानव और मानव कल्याण की भावना से प्रेरित न होकर—अविचलित धर्मनिष्ठा और कट्टरवादिता से पूर्ण है। उसमें सहिष्णुता और उदारता का भी अभाव है। 'रमेश' मे शरतचन्द्र ने मानवीय दुर्बलताओं को नहीं अकित किया है। इसी से 'रमेश' गतिशील मनुष्य की अपेक्षा आदर्श का प्रतीक लगता है। शरतचन्द्र के इस दृष्टिकोण को लेकर यहां प्रेमचन्द से भिन्नता भी देखी जा सकती है। प्रेमचन्द ने जहा 'होरी' को उदारता और सहिष्णुता से युक्त अकित किया है वही उसकी मानव-सुलभ कमजोरियों की ओर भी संकेत किया है। किन्तु शरतचन्द्र ने 'रमेश' को यान्त्रिक पुतला बना दिया है जो केवल भलाइयो के लिए ही पैदा हुआ है। 'रमा' के प्रति भी उसको उन्मुक्त रूप से सहृदय अभिव्यक्त नहीं किया गया है। परिणामत: 'रमेश' का आदर्श आकर्षणहीन है। 'रमेश' अपनी सम्पूर्ण आदर्शवादिता के उपरान्त भी प्रभावित नही कर पाता जब कि 'होरी' अपनी अनेक त्रुटियो और मानवीय दुर्बलताओं को लिए हुए भी सहानुभूति प्राप्त करता है तथा अपना प्रभाव डाले बिना नही रहता। 'होरी' अनुभूतियो मे लिपटा हुआ मानव है, उसमे मनुष्य की यथार्थता है और सामाजिक जीवन का आदर्श। कहा जा सकता है कि 'होरी' मे मनुष्य का वैयक्तिक यथार्थ और समाज का आदर्श एक साथ प्रस्फुटित हुआ है।

'होरी' और 'रमेश' की तुलना द्वारा यह बात और भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है कि प्रेमचन्द दोषरहित आदर्श की कल्पना नही करते। 'रमेश' उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति है। 'रमा' उसके प्रति असाधारण रूप से आकर्षित है किन्तु 'रमेश' की आदर्शवादिता को चित्रित करने के कारण ही लेखक ने 'रमा' के स्नेह को 'रमा'

तक ही सीमित रखा है। वस्तुत 'रमेश' के चरित्र मे इस प्रकार के दोष अथवा गुण का अभाव उसे और भी निर्जीव और निष्प्राण मानव बना देता है। 'रमेश' की अपेक्षा 'होरी' इन कमजोरियो को लेकर प्रस्तुत हुआ है। वह विवाहित है और तीन सन्तानो का पिता भी। फिर भी अवसर पाकर वह 'सदुआइन' से मजाक करने मे नही चूकता। 'होरी' 'सदुआइन' के प्रति आकर्षित भी है। शरत्चन्द्र ने जहा दोषहीन मानवीय आदर्श उपस्थित करने का प्रयत्न किया है वहा वह भावहीन हो गया है जिससे मानवीय आदर्श की धारणा अस्वाभाविक प्रतीत होती है। साथ ही प्रेमचन्द के मानवीय आदर्श की धारणा सहजता के अधिक विश्वस्त धरातल पर अंकित हुई है।

शरत्चन्द्र ने जहा कोरे आदर्श पर दृष्टि न रखकर जीवन यथार्थ को ग्रहण कर चित्रण किया है वहा वे प्रेमचन्द के निकट आ गये हैं। 'महिम' (गृहदाह) और 'श्रीकात' शरत्चन्द्र की इसी प्रकार की सृष्टि है। 'श्रीकात' मे मनुष्य मात्र के प्रति अपार स्नेह, सहानुभूति और उदारता है। वह बचपन से ही मानव हित की बात सोचता है और अवसर मिलने पर क्रियान्वित भी करता है। उसमे अपार दया और करुणा है। कष्ट के समय वह अपने प्रण को अस्थिर नही करता है। वह सच्चे रूप मे मानवीय गुणो से पूरित है। इतना होने पर भी उसमे मानव-सुलभ दुर्बलताए हैं। धर्म के विषय मे उसकी निष्ठा नही है। किसी प्रकार का हठ और दुराग्रह नही है। इतना होने पर भी वह 'रमेश' की अपेक्षा अधिक प्रभावित करने वाला है। वस्तुत 'श्रीकात' मे शरत्चन्द्र के मानवीय आदर्श की परिकल्पना का सही रूप उपस्थित हुआ है। 'महिम' का अविचलित गाम्भीर्य, असाधारण सहनशीलता और मन की निष्कपट निर्मलता ने उसके चरित्र को गौरवपूर्ण बनाया है। शरत्चन्द्र ने 'महिमा' मे जिस आदर्श की कल्पना की है वह सामाजिक दृष्टि से श्रेष्ठ है किन्तु सहृदयता के अभाव मे उसकी निष्ठुरता मन पर आघात करने वाली है। उसके चरित्र की यह प्रवृत्ति दोषरहित होने पर भी खटकती है। 'श्रीकान्त' इस अभाव को पूरा कर देता है अत 'महिम' के मानवीय आदर्श की अभिव्यक्ति मे जो कमी अनुभव होती है वह सहजता से दूर हो जाती है। 'श्रीकान्त' मे मानवीय आदर्शों की अभिव्यक्ति 'होरी' की भाति सहजता के अधिक निकट है।

प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र के गिरे हुए व्यक्ति मे भी महान् तथा मानवीय गुणो की सम्भावना है। यही कारण है कि गिरे हुए व्यक्तियो को भी उन्होने ऊचा करके देखा है। जीवन की विषम स्थितियो से बाध्य होकर मनुष्य कभी-कभी निम्न श्रेणी के कार्य करने को प्रस्तुत हो जाता है। प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र ने मनुष्य की ऐसी स्थितियो को उद्घाटित करके मनुष्य मे स्थित मानवीय गुणो को प्रदर्शित किया है। दोनो उपन्यासकार व्यक्ति की महत्ता को स्वीकार करते हुए, मानवता से बड़े किसी अन्य सत्य को नही स्वीकार करते। जीवन के विविध आयामो मे वे मानवता और मानववादी प्रवृत्तियो को

के सम्बन्ध-सूत्र टूटे नहीं है। 'मुन्नी' और 'सूरदास' साधारण व्यक्ति हैं किन्तु उपन्यास के इन दोनों पात्रों मे मानवीय गुणों को प्रदर्शित कर यह स्पष्ट किया गया है कि साधारण मनुष्य [illegible] नहीं है उनके कर्म उनको आदर्श के रूप मे प्रस्तुत कर सकते है। प्रेमचन्द ने इन साधारण व्यक्तियों मे मानवीय आदर्श की परिकल्पना की है। लांछित और बहिष्कृत होकर 'मुन्नी' किसी प्रकार भी अपने समाज मे लौट जाने के लिए लालायित नहीं हुई है। उसमें असाधारण त्याग और आत्मसंयम है। फिर भी वह मनुष्य है। प्रेमचन्द ने उनके जैसे साधारण व्यक्ति मे भी उच्च गुणों को प्रतिष्ठित किया है। 'कमलाकान्त' के प्रति वह अकारण ही सहृदय नहीं है। यह तो उसका मानवीय पक्ष है जिसमें उसकी महत्ता ही स्पष्ट होती है। अन्यथा उसे पुनर्जीवन देने वाले 'सुमेर' को वह वरण कर सकती थी। 'मुन्नी' जिस वर्ग की स्त्री है उसके लिए ऐसा कर लेना बहुत सम्भव था। किन्तु प्रेमचन्द ने उसको महनीय बनाया है। 'सूरदास' भी प्रेमचन्द का ऐसा ही पात्र है। अनेक प्रकार के मिथ्यारोपों को वह सहन करता है किन्तु अपनी महत्ता वह नहीं छोड़ देता। सेवा और उदारता उसका निजी गुण है। दूसरों के हित मे ही वह अपनी भूमि को बेचने के लिए किसी प्रकार भी तैयार नहीं। दूसरे के हित के लिए ही वह संघर्ष करता है और अपना जीवन भी दूसरों के लिए अर्पित कर देता है। प्रेमचन्द ने उसमे महान् गुणों की स्थापना की है। यहाँ प्रेमचन्द का उद्देश्य यही प्रतीत होता है कि वे यह बताना चाहते हैं कि मनुष्य मात्र में मानवीय गुण सम्भव हो सकते है।

शरतचन्द्र के उपन्यासो मे 'मुन्नी' और 'सूरदास' जैसे साधारण मनुष्य को मानवीय आदर्श के रूप मे प्रतिष्ठित करने का प्रयास नही हुआ है। उनकी दृष्टि साधारण व्यक्ति के असाधारण गुणों की ओर नही मुडी है। शरतचन्द्र ने साधारण व्यक्ति के उस पक्ष की ओर दृष्टि नही डाली है जो मानव की उज्ज्वल गरिमा से परिपूर्ण है। इसका कारण उनका अभिजात वर्ग के प्रति विशेष आकर्षण है जो मनुष्य को भेदभाव की दृष्टि से देखने के लिए प्रेरित करता है। प्रेमचन्द की मानव-व्यापिनी दृष्टि ने शरतचन्द्र की अपेक्षा साधारण गिरे हुए और सामाजिक दृष्टि से नीच मनुष्य को अधिक विशालता और उदारता से परखा है। यही कारण है कि प्रेमचन्द के साधारण कहे जाने वाले पात्र उच्च वर्गों की अपेक्षा अधिक मानवीय आदर्शों और मानवता की भावना से पूरित है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के मानवीय आदर्शों की परिकल्पना मे यह अन्तर स्पष्ट है। शरतचन्द्र मध्यवर्ग के उपन्यासकार हैं। उन्होंने अपने उपन्यासो मे मध्यवर्गीय आदर्शों को ही चित्रित किया है। निम्नवर्गीय व्यक्ति को उनके उपन्यासो मे प्रमुखता नही प्राप्त है। किन्तु प्रेमचन्द के प्राय. सभी उपन्यासो मे निम्नवर्ग को अपनाया गया है तथा निम्नवर्गीय 'व्यक्ति' को महानता के प्रभामण्डल के परिदृश्य मे

प्रतिष्ठित करने का प्रयास करते है । यही कारण है कि प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने 'सुमन' (सेवासदन), 'जोहरा' (गबन), 'चन्द्रमुखी' (देवदास) और 'सावित्री' (चरित्रहीन) जैसी नारियों मे भी मानवीय गुणो की सम्भावना की है तथा वे अनुकरणीय आदर्श भी उपस्थित कर सकती हैं । नाना कारणो से 'सुमन' को वेश्यावृत्ति अपनानी पड़ी थी । किन्तु इस वृत्ति को अपनाने के बाद भी उसमे मानवीय गुण पूरी तरह समाप्त नहीं हो गए थे । प्रेमचन्द ने उसकी पतनावस्था के साथ-साथ उसके मानवीय गुणो को दिखा कर यह प्रतिपादित किया है कि मनुष्य नीचे गिर कर भी मानवीय गुणो से रहित नहीं हो सकता है । शरतचन्द्र के उपन्यास 'देवदास' में 'चन्द्रमुखी' का चित्रण भी इसी प्रकार का है । अपने प्रति 'देवदास' की सीमाहीन उपेक्षा और उसके असाधारण व्यवहार से वह द्रवित हो उठी है । उसे अपनी स्थिति का आभास हो गया । अपने निकृष्ट का आभास पाते ही वह वेश्या-जीवन से मुक्त होने को प्रयत्नशील हुई है और इस प्रकार अपनी सम्पूर्ण कलुषता और कलक को मिटाकर वह ऊपर उठ गई है । 'सावित्री' जैसे मेस की नौकरानी मे भी आत्मत्याग, सयम और दूरदर्शिता को चित्रित कर उन्होंने नीचे गिरे हुओ में मानवीय गुणो की स्थापना की है । प्रेमचन्द ने 'जौहरा' जैसे साधारण पात्र में कितनी मानवीयता भर दी है इसे 'गबन' मे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने परिस्थितियो के गिरे हुए मनुष्य को हेय दृष्टि से नहीं देखा है उनमें भी मानवीय गुणो की परिकल्पना की है और इस विचार को पुष्ट किया है कि मनुष्य यदि नीचे गिर गया है तो इसका यह अर्थ नही कि उसमें मानवीय गुण भी समाप्त हो गए हैं । नीचे गिर कर भी मनुष्य महनीय हो सकता है । यही इन उपन्यासकारो ने अपने कुछ पात्रों में दिखाया है । 'सुमन', 'चन्द्रमुखी' और 'सावित्री' के चरित्र में यह प्रतीति बार-बार होती है। वेश्या होकर भी 'चन्द्रमुखी' का मानव समाप्त नहीं हो गया । सच्चाई के प्रति उसका असीम अनुराग है । दया और करुणा से उसका हृदय शुष्क नहीं हो गया है । शरतचन्द्र ने 'सावित्री' तथा 'राजलक्ष्मी' को अनेकानेक गुणधर्मी विशेषताओ मे इसे स्पष्ट किया है । 'सुमन' की यह भावना कि— "अपने सत्य की रक्षा करूँगी । गाऊँगी-नाचूँगी पर अपने को भ्रष्ट न होने दूगी ।"[11] उसे ऊँचा उठा देती है । इसी कारण प्रेमचन्द 'सुमन' को छोटा नहीं समझते । आदर्श की यह परिकल्पना प्रेमचन्द और शरतचन्द्र की उदार दृष्टि का परिचायक सिद्ध हुई है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में निम्न वर्ग को मानवीय आदर्शों से परिपूर्ण चित्रित किया गया है । प्रेमचन्द ने साधारण मनुष्य मे भी उच्चकोटि के मानवीय आदर्शों की कल्पना की है । इस प्रकार प्रेमचन्द की परिकल्पना मे ऊँच-नीच का भेदभाव किसी प्रकार की बाधा नहीं उत्पन्न कर सका है । यहा यह स्वीकार करने मे सकोच न होना चाहिए कि प्रेमचन्द की दृष्टि शरतचन्द्र की अपेक्षा मानव-मूल्यों को समझाने मे अधिक

ार सहानुभूतिपूर्ण हो गयी है। 'मुन्नी' और 'सूरदास' साधारण व्यक्ति हैं किन्तु मचन्द के इन दोनों पात्रों मे मानवीय गुणों को प्रदर्शित कर यह व्यक्त किया गया है कि नुष्य ऊंचा-नीचा नही है, उसके कर्म उसको आदर्श के रूप में प्रस्तुत कर सकते है। मचन्द ने इन साधारण व्यक्तियों मे मानवीय आदर्श की परिकल्पना की है। लांछित ार अपमानित होकर 'मुन्नी' किसी प्रकार भी अपने समाज मे लौट जाने के लिए ाजी नही हुई है। उसमे असाधारण त्याग और आत्मसंयम है। फिर भी वह मनुष्य । प्रेमचन्द ने उसके जैसे साधारण व्यक्ति मे भी उच्च गुणों को प्रतिष्ठित किया है। मरकान्त' के प्रति वह अकारण ही सहृदय नही है। यह तो उसका मानवीय पक्ष है जसमें उसकी महत्ता ही व्यक्त होती है। अन्यथा उसे पुनर्जीवन देने वाले 'सुमेर' को ह वरण कर सकती थी। 'मुन्नी' जिस वर्ग की स्त्री है उसके लिए ऐसा कर लेना हुत सम्भव था। किन्तु प्रेमचन्द ने उसको महनीय बनाया है। 'सूरदास' भी प्रेमचन्द ऐसा ही पात्र है। अनेक प्रकार के मिथ्यारोपों को वह सहन करता है किन्तु अपनी ता वह नही छोड देता। सेवा और उदारता उसका निजी गुण है। दूसरों के हित में वह अपनी भूमि को बेचने के लिए किसी प्रकार भी तैयार नही। दूसरे के हित के र ही वह संघर्ष करता है और अपना जीवन भी दूसरों के लिए अर्पित कर देता है। चन्द ने उसमे महान् गुणों की स्थापना की है। यहा प्रेमचन्द का उद्देश्य यही प्रतीत ा है कि वे यह बताना चाहते हैं कि मनुष्य मात्र मे मानवीय गुण सम्भव हो ते है।

शरतचन्द्र के उपन्यासो मे 'मुन्नी' और 'सूरदास' जैसे साधारण मनुष्य को नवीय आदर्श के रूप मे प्रतिष्ठित करने का प्रयास नहीं हुआ है। उनकी दृष्टि धारण व्यक्ति के असाधारण गुणों की ओर नही झुकी है। शरतचन्द्र ने साधारण क्ति के उस पक्ष की ओर दृष्टि नही डाली है जो मानव की उज्ज्वल गरिमा से परि- ं है। इसका कारण उनका अभिजात वर्ग के प्रति विशेष आकर्षण है जो मनुष्य भेदभाव की दृष्टि से देखने के लिए प्रेरित करता है। प्रेमचन्द की मानव-व्यापिनी ष्टि ने शरतचन्द्र की अपेक्षा साधारण गिरे हुए और सामाजिक दृष्टि से नीच मनुष्य अधिक विशालता और उदारता से परखा है। यही कारण है कि प्रेमचन्द के साधा- ा कहे जाने वाले पात्र उच्च वर्गों की अपेक्षा अधिक मानवीय आदर्शों और मानवता भावना से पूरित है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के मानवीय आदर्शों की परिकल्पना यह अन्तर स्पष्ट है। शरतचन्द्र मध्यवर्ग के उपन्यासकार हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों मध्यवर्गीय आदर्शों को ही चित्रित किया है। निम्नवर्गीय व्यक्ति को उनके उपन्यासों प्रमुखता नही प्राप्त है। किन्तु प्रेमचन्द के प्राय सभी उपन्यासों मे निम्नवर्ग को या गया है तथा निम्नवर्गीय व्यक्ति की महानता के प्रमाणस्वरूप के परिदृश्य मे

रखकर प्रेमचन्द ने 'यथार्थ' दृष्टि से अपनी मानवीय परिकल्पना को चित्रित किया है।

शरतचन्द्र ने अपने पात्रों को अपरिमित स्नेह देकर उनके जीवन-गह्वरों में सहानुभूतिपूर्वक प्रवेश किया है। व्यक्ति की कमजोरियां दिखाकर उसके प्रति करुणा का भाव भरकर श्रद्धा उत्पन्न कर देना, शरतचन्द्र की बहुत बड़ी विशेषता है। 'देना-पावना' का 'जीवानंद' सभी प्रकार के दुष्कर्मों से आवृत रहा है। किन्तु लघुता की भावना उसके हृदय में नहीं है। 'षोडशी' के प्रति उसके अन्याय और अत्याचार की सीमा नहीं रही है किन्तु अपने प्रयत्नों में असफल होने पर नीच प्रवृत्तियों का आश्रय वह ग्रहण नहीं करता। 'जीवानंद' का हृदय निश्छल रहा है। इसी से विष खाने में भी 'षोडशी' का विश्वास किया है। परिस्थितियां बदलने पर वह अपने सम्पूर्ण जीवन को बदलकर अपने हृदय में छिपे 'मानव' का परिचय देता है।

शरतचन्द्र मनुष्य को गिराकर भी कुछ ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर देते हैं, कुछ ऐसे गुण अनावृत कर देते हैं तथा चरित्र में कुछ ऐसी असाधारणता भर देते हैं कि उसके प्रति अकृत्रिम श्रद्धा और सहानुभूति करनी पड़ती है। 'गृहदाह' का 'सुरेश' नितांत 'भोग-लोलुप' मनुष्य है। उसने 'अचला' की देह को हर तरह से चाहा है और उसे पाने के लिए उसने सभी सम्भव प्रयत्न किये हैं। 'अचला' के बीमार पति और अपने परम मित्र के साथ धोखा और विश्वासघात भी किया है। 'अचला' को वह भगा ले गया है। किन्तु उसकी इस 'भोग-लोलुपता' और उद्दाम उच्छृंखलता में एकाग्र और अकुंठित आत्म-समर्पण भी छिपा हुआ है जिसके कारण वह असीमित प्रणय-आकांक्षा और सम्भोग-लालसा को किसी समय भी अनायास छोड़ सकता है। अपने विद्यार्थी जीवन में उसने दो बार अपने प्राणों की चिन्ता न करके अचला के पति और अपने अभिन्न मित्र 'महिम' को बचाया है। 'अचला' के बार-बार अनुरोध करने पर भी वह प्लेग से पीड़ित लोगों की सहायता करने के लिए चला गया है और बीमारों की जान बचाने के लिए स्वयं प्लेग की आग में भी कूद पड़ा है। स्पष्ट है कि उसके अन्तस्तल में कामुकता और भोग के साथ-साथ चरम निस्संगता और परोपकार का भाव भी मौजूद था और ऐसा निस्संग भाव जिसके सामने उसकी समस्त भोग-लिप्सा नगण्य लगती है। प्रचलित नीति और समाज उसे कामी, उद्दंड और न जाने क्या-क्या कहे, किन्तु इतना होने पर भी उसके प्रति अकृत्रिम सहानुभूति और करुणा उत्पन्न हो ही जाती है। 'महिम' अपनी निष्ठा और असाधारण गम्भीरता के साथ यह करुणा और सहानुभूति नहीं प्राप्त कर पाता, जो 'सुरेश' को अनायास मिल जाती है। इसी प्रकार शरतचन्द्र ने 'सतीश' में जिस आदर्श की परिकल्पना की है वह अप्रतिम है। 'सतीश', जिसे इंगित करके ही 'चरित्रहीन' की रचना हुई है, प्रचलित नीति के अनुसार घृणा का ही पात्र होगा। किन्तु उसके प्रति यदि निष्पक्ष और उदार दृष्टिकोण अपनाया जाए तो वह सामान्य

व्यक्तियों के बीच असाधारण है तथा जिसके आगे 'उपेन्द्र' की निष्ठुर पवित्रता भी भीख मांगती-सी लगती है। 'उपेन्द्र' अपनी सम्पूर्ण पवित्रता और कर्तव्य-परायणता के होते हुए भी उसके सम्मुख निष्प्रभ है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी कहीं-कहीं ऐसी स्थितियां उत्पन्न की गयी हैं किन्तु 'सुरेश' और 'सतीश' में जितने सजीव ढंग से मानवीय-संवेदना का रूप प्रस्तुत हुआ है उतना प्रेमचन्द में नहीं। 'विनय' (रंगभूमि) प्रेमचन्द का इसी प्रकार का पात्र है जो अपने पथ से डिग कर भी सहानुभूति और करुणा प्राप्त करता है। यद्यपि 'सुरेश' जैसी, उसमें उद्दाम आकांक्षा और सेवा-भावना नहीं है। 'विनय' का 'सोफिया' के साथ प्रेम-[illegible] इतना नाजुक है कि उसको अपनाने का कभी साहस नहीं हुआ। किसानों के दल का नेतृत्व करते हुए वह पलायन करता है, किन्तु अन्त में दूसरे के हित में अपने प्राणों की [illegible]लि देकर श्रद्धा और सहानुभूति प्राप्त कर लेता है। सब मिला कर 'सुरेश' की उत्कट [illegible]गोपकारी भावना 'विनय' में नहीं है। इसी से कहना पड़ता है कि प्रेमचन्द इस [illegible]कार विरोधी परिस्थितियों में मानव को अप्रतिम चित्रित नहीं कर पाते। वह व्यक्ति के [illegible]हनीय गुणों को इतना उभार कर नहीं रख सके हैं जितना शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों [illegible]े प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द के ऐसे पात्रों के साथ श्रद्धा और सहानुभूति उत्पन्न करनी पड़ती है, वह अनायास अपनी ओर नहीं खींच पाते।

'व्यक्ति' को उसकी विरोधी स्थितियों के बीच रखकर उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न कर देने की दृष्टि इन दोनों कलाकारों की भिन्न है। यह अन्तर पात्रों के सृजन में निहित वैचारिक स्तर का है। प्रेमचन्द उस समग्र परिवेश पर अधिक ध्यान देते हैं जो पात्र को चरित्र बनाता है। इसी से उनका आदर्श बाह्य घटनाओं और परिस्थितियों को लेकर अंकित होता है। मनुष्य के भीतर की निर्बलताओं को उपेक्षित कर जीवना-दर्शों के महत् उद्देश्य की ओर अग्रसर होना प्रेमचन्द का प्रमुख लक्षण है। 'विनय' और 'सोफिया' से यह विशेषता भी स्पष्ट हो जाती है। शरतचन्द्र परिवेश की प्रेरक शक्ति पर उतना ध्यान नहीं देते तथा हृदय की आंतरिक दुर्बलता को आदर्श से मिश्रित सहानुभूति के द्वारा मण्डित करते हुए प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में आदर्श-निरूपण सम्बन्धी दो चिंताधाराएं हो सकती हैं और ये दोनों महान् उपन्यासकार इन भिन्न-भिन्न चिंताधाराओं में सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। इसी से इनके मानवीय आदर्शों की परिकल्पना में दृष्टि-भेद दिखाई पड़ता है।

'सुमन' प्रेमचन्द का ऐसा ही चरित्र है। अपनी अनेक निर्बलताओं को लिये हुए भी 'सुमन' सहानुभूति प्राप्त करती है। 'सुमन' का चारित्रिक पतन भी एक घटना मात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। रात्रि में पति के द्वारा घर से ठुकराया जाना, 'भोली बाई' का [illegible] तन्त्रता और समाज में 'भोली बाई'

का आदर आदि ने उसको वेश्या बनने के लिए बाध्य किया है। लेखक ने उसे जिस संदर्भ में प्रस्तुत किया है वह विशेष महत्त्वपूर्ण है। किन्तु प्रेमचन्द ने उसे नीचे गिरा कर छोड़ नही दिया। उसके महनीय पक्ष को भी चित्रित किया है। सामाजिक दृष्टि से गिरकर भी 'सुमन' मे मानवीय आदर्शों की ओर सदैव झुकाव रहा है। उसके प्रति सहानुभूति का कारण यही है। इस प्रकार प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने चरित्रों की और सघटनाओं के द्वारा मानव की कमजोरियों मे छिपे उनके मानवीय आदर्शों की ओर झुकाव को स्पष्ट करके, उनके प्रति श्रद्धा और सहानुभूति उत्पन्न की है। वे परिस्थितियों के बीच मनुष्य की असाधारण गरिमा को उद्‌घाटित करने, श्रद्धा उत्पन्न कर देने से नहीं चूकते। साधारण घटनाओं के घात-प्रतिघात से मनुष्य के मानवीय गुणों का स्वरूप स्पष्ट नही हो पाता है। उसके लिए उपन्यासकार को जिस तलस्पर्शी दृष्टि की अपेक्षा होती है वह प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों मे है। ऐसी परिस्थितियों में आदर्श को ठूँसा नही है। वह अत्यन्त स्वाभाविक ढग से उनके पात्रों के सहज क्रिया-कलापो के माध्यम से व्यक्त हुआ है। यही इन उपन्यासकारों की विशेषता है जो इन्हें एक ही सूत्र में बाध देती है।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों उपन्यासकारों ने मानव को व्यापक और उदार दृष्टिकोण से देखा है। मानव की साधारण कमजोरियो की उन्होने उपेक्षा की है, उनको लेकर मानव की महत्ता को कम नहीं किया है। 'गोदान' में 'सिलिया' का 'मातादीन' के प्रति आकर्षण जिसमे उसकी काम-लालसा भी छिपी है, प्रेमचन्द सहन कर लेते हैं। 'मातादीन' मे वासना की अनियंत्रित भावना नही है। अपनी भोगलिप्सा को 'सिलिया' ने कर्तव्य के साथ बाध दिया है। इसी कारण प्रेमचन्द ने उसे बुरा नही माना है और 'सिलिया' को हेय दृष्टि से नही चित्रित किया है। 'देवप्रिया' (कायाकल्प) जिसने केवल वासना और भोगेच्छा को सर्वोपरि माना, प्रेमचन्द की दृष्टि मे ऊँचे नहीं उठी है। 'सिलिया' ने काम की सहज इच्छा के साथ-साथ 'मातादीन' को सच्चे हृदय से चाहा है। प्रेमचन्द की दृष्टि मे यह भावना अधिक महत्वपूर्ण है, इसी कारण उसकी वासना को उन्होंने उपेक्षित करके देखा है।

प्रेमचन्द की ही भांति शरतचन्द्र ने भी मानवीय आदर्शों की कल्पना में दैहिक आकर्षण को गौण स्थान दिया है। उसके कारण मनुष्य की मनुष्यता को हेय नहीं सिद्ध किया है। उनके प्रति एक उदार दृष्टिकोण अपनाया है। वे मानव की ऐसी कमजोरियों को उसके गौरव के आकलन मे बाधा नहीं मानते। 'राजलक्ष्मी'[1] का 'श्रीकान्त' के प्रति आकर्षण भी कर्तव्य और निष्ठा के साथ जुड़ा है। 'राजलक्ष्मी' को 'प्यारी' का इतिहास इसी कारण उपन्यास मे किसी प्रकार उसके मानवीय पक्ष को कलंकित नहीं कर सका है। 'श्रीकान्त' में ही 'अभया' की मा बनने की कल्पना को।

किसी प्रकार नीचा करके नहीं चित्रित किया है। मानव की ऐसी दुर्बलताओं को सरलतया ग्रहण कर लेते हैं। उन्हें साधारण दृष्टि से देखते हैं तभी तो 'रोहणी' और रमा ने सम्बन्ध को अधिक करके भी 'अभया' को छोटा नहीं मानते। वस्तुतः 'सावित्री', 'राजलक्ष्मी' अथवा 'अभया' इनमें किसी का भी आकर्षण केवल लैंगिक नहीं था, उनके साथ-साथ उनकी असीमित चाह, उत्कट कर्तव्य-भावना और मानवता की उज्ज्वल आस्था भी समाहित है। इन स्थितियों में उन्होंने काम-भावना को समुचित ठहराया है। किन्तु काम की उच्छृंखल प्रवृत्ति का समर्थन शरतचन्द्र और प्रेमचन्द के उपन्यासों में नहीं किया गया है। 'किरणमयी' और 'देवप्रिया' को इस बात के समर्थन के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। 'देवप्रिया' की भांति 'किरणमयी' की उद्दाम काम-वासना और उसकी आत्मतुष्टि के प्रति शरतचन्द्र उदार और सहिष्णु नहीं हैं, इसी कारण वह 'राजलक्ष्मी' और 'अभया' के स्तर तक उसे उठा नहीं सके हैं।

पात्रों की अन्य साधारण दुर्बलताओं को लेकर प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों में मनुष्य को छोटा नहीं होने दिया है। दोनों ही उपन्यासकार मानव की सामान्य कमजोरियों को सहन कर लेते हैं। 'सूरदास' में मानवीय आदर्शों की जो परिकल्पना की गयी है उससे वह बहुत ऊंचा उठा हुआ व्यक्ति है। परन्तु बालकों के चिढ़ाने को वह भी नहीं सह पाता। 'क्लार्क' के शब्दों में "यह अंधा जरूर कोई असाधारण पुरुष है।[१७]" और 'सोफिया' की दृष्टि में वह और भी ऊंचा पुरुष है—"तुम उससे दो-चार बातें करके देखो। उससे आध्यात्मिक और दार्शनिक विचार सुनकर चकित हो जाओगे। साधु है और दार्शनिक भी।"[१८] किन्तु अपने प्रतिपक्षी 'महेन्द्रकुमार' को बदनाम करने में वह नहीं चूका और 'ज्ञानसेवक' की गाड़ी के पीछे-पीछे एक मील तक दौड़ने पर भी जब उसे एक भी पैसा नहीं प्राप्त हो सका तो उसका आहत हृदय उनके साथ सद्भाव नहीं बनाये रख सका। पांच सौ रुपये के संग्रह करने के उपरान्त भी वह दूसरों के पूछने पर अपने को कंगाल ही व्यक्त करता है। मानव की इस प्रकार की कमजोरियों को प्रेमचन्द ने उसके आदर्शों के साथ मिलाकर नहीं रखा है। शरतचन्द्र ने भी अपने उपन्यासों में मानव की सामान्य निर्बलताओं की उपेक्षा की है। 'कमल' (शेषप्रश्न) की असाधारण चंचलता का उन्होंने बड़ी कुशलतापूर्वक निर्वाह किया है। 'कमल' ने तीन पुरुषों को वरण किया है और अपने मां-बाप का इतिहास बताने में तनिक भी संकोच नहीं किया है। ईसाई पिता और बंगालिन मां की सन्तान होकर भी उसने गर्व का अनुभव किया है। शरतचन्द्र ने उसके चरित्र को किसी प्रकार नीचा नहीं सिद्ध किया है। इन कमजोरियों को इन्होंने विशेष महत्त्व नहीं दिया है वरन् 'व्यक्ति' में छिपे उसके महनीय आदर्श की प्रतिष्ठा करके उसको सम्मानित किया है। सामान्य दुर्बलताओं और कमजोरियों को प्रदर्शित कर उसको

मानव के स्तर से गिरा देने का कहीं भी प्रयत्न नहीं किया है।

मानवीय आदर्शों की परिकल्पना में प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों ही उपन्यासकारों ने सच्चाई और ईमानदारी को बहुत महत्त्व दिया है। वस्तुतः तत्त्व को वे मनुष्य की उन्नति का, उसके विकास की अनंत सम्भावनाओं का मुख्य प्रेरक गुण मानते हैं। इसी कारण मनुष्य में सच्चाई और ईमानदारी के लिए उन्होंने बहुत बल दिया है। 'होरी' तथाकथित आदर्श नहीं है। उसमें मानव-सुलभ दुर्बलताएँ भी हैं किन्तु उसकी सबसे बड़ी सबलता उसकी ईमानदारी और सच्चाई है। वह प्राय ईमानदार है। इसी कारण वह जीवन-संग्राम में हारकर भी विजयी हुआ है और समाज के सम्मुख एक नवीन आदर्श की स्थापना करता है। प्रेमचन्द का यह आदर्श तथाकथित आदर्श की भावना से परिव्याप्त न होकर, अपने सद्गुणों और मानव की कमजोरियों को लेकर प्रस्फुटित होने वाला सर्वथा भिन्न आदर्श है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता उसकी सबलता नहीं अपितु निर्बलता है जिसके साथ ईमानदारी अविच्छिन्न रूप से विजड़ित है। सच्चाई को शरतचन्द्र ने भी मनुष्य का उन्नायक गुण माना है। उनका यह विचार एकाधिक पात्रों में व्यक्त हुआ है। 'कमल' के चरित्र में निर्बलताएं हैं किन्तु वह ईमानदारी को कहीं भी नहीं त्यागती। उसकी असाधारण सच्चाई ही दूसरों को चकित कर देने वाली है जिसके सम्मुख 'शेषप्रश्न' के सारे पुरुष पात्र निष्प्रभ हैं। 'शिवनाथ' 'कमल' के प्रति सच्चा नहीं रहा। शरतचन्द्र उसे ऊपर नहीं उठा सके हैं। अपनी अईमानदारी के कारण ही 'शिवनाथ' का घनघोर पतन हुआ है जिसके कारण वह दूसरों की दृष्टि में तो हेय हो ही गया अपनी दृष्टि में भी गिर गया है। 'अजित' को 'कमल' ने वरण करते समय किसी प्रकार का बंधन स्वीकार करने की सम्मति नहीं व्यक्त की है क्योंकि वह अपने भीतर सच्चाई का अनुभव करती है और दूसरों से भी वह उसी प्रकार की आशा करती है। अपने जीवन के संकटमय क्षणों में भी उसने कभी भी धोखा और विश्वासघात का आश्रय नहीं लिया। इसी कारण तमाम बातों के बावजूद उसके बड़प्पन की धवल गरिमा धूमिल हो कर कुंठित नहीं होने पाई है। 'होरी' ने भी इसी प्रकार सत्यता को हृदय के अंतरतम से अनुभव किया था जिसका निर्वाह उसने अपने जीवन में अधिकाधिक करना चाहा। बांसों की घटना उसके संस्कारों और उसके मानवीय गुणों से मेल नहीं खाती है। उस जैसे ईमानदार व्यक्ति के लिए इतनी साधारण चोरी अस्वाभाविक है। यह तो प्रेमचन्द ने केवल उसको मनुष्य बनाये रखने के लिए ही रची है। वह महान् है मनुष्य के सच्चे अर्थ में। उसके महान् होने का [illegible] राम-कृष्ण अथवा गांधी नहीं है।

[illegible] और ईमानदारी का अर्थ है मनुष्य में मानव का अनुभव मनुष्य में मानव का अनुभव करना है तो वह उसके प्रति

ईमानदार भी होना है। 'होरी' और 'कमल' की यही विशेषता है और प्रेमचन्द तथा शरतचन्द्र का इन पात्रों में सच्चाई और ईमानदारी को उभारने का यही उद्देश्य है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र का यह दृष्टिकोण उनके उपन्यासों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। मानव को ऊंचा उठाने के लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती है उनमें सच्चाई को प्रतिष्ठित करने और सामान्य जीवन में उसको क्रियान्वित करने के लिए दोनों उपन्यासकारों का विशेष आग्रह है। सच्चाई उनके मानवीय आदर्शों की परिकल्पना का उच्चतम मापदण्ड है। सच्चाई और ईमानदारी के द्वारा मनुष्य ऊंचा उठ सकता है यदि किन्हीं परिस्थितियों के कारण वह नीचे भी गिर गया है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों उपन्यासकारों ने इस विचार को अपने उपन्यासों में प्रतिपादित किया है। 'जीवानंद चौधरी' और 'अमरकान्त' को उदाहरण के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। 'जीवानंद' 'षोडशी' के सम्पर्क में आकर जब अपने व्यक्तित्व के प्रति सदेहशील होता है तो सामान्य रूप से लोगों के प्रति ईमानदार हो जाता है। इसी कारण उसकी पाशविक प्रवृत्तियों का भी दमन होता है। वस्तुत शरतचन्द्र ने उसको सच्चाई के द्वारा उसको ऊपर उठाने की चेष्टा की है। इसी प्रकार प्रेमचन्द ने भी 'अमरकान्त' के माध्यम से इस विचार को पुष्ट किया है। 'अमरकान्त' अनेक कमजोरियों के होते हुए भी मनुष्य के प्रति ईमानदार अधिक है।

टी० एस० इलियट ने मानववाद की व्याख्या करते हुए लिखा है कि—"एक प्रकार के व्यक्ति होते हैं जिन्हें हम मानववादी कहते हैं जिनके लिए मानववाद ही बहुत कुछ है। यह टाइप मूल्यवान है।"[१] टी० एस० इलियट की दृष्टि के अनुरूप मानववादी 'टाइप' चाहे अपने उपन्यासों में प्रेमचन्द न नियोजित कर सके हों किन्तु इतना अवश्य है कुछ ऐसे पात्रों का निर्माण प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों लेखकों के उपन्यासों में अवश्य हुआ है जो सहृदयता और सहानुभूति से परिपूर्ण केवल मानव हैं। दुःख और दैन्य के समय मनुष्य की सेवा करना और उसके लिए अपने प्राणों की भी चिन्ता न करना जिनका लक्ष्य रहा है। इस वर्ग के पात्रों का सृजन सामयिक रूप में होने पर भी मनुष्य की सद्वृत्तियाँ व्यक्त हो गई हैं। ऐसे पात्रों का 'व्यक्तित्व' गौण होने पर भी निःसन्देह उनके मानवीय आदर्श असाधारण हैं। गर्भवती 'झुनिया' की मदद 'चुहिया' ने जिस लगन और उत्साह से की, वह साधारण बात नहीं है। 'झुनिया' परदेश में है और उसे कोई मदद करने वाला नहीं है। इस बात का पता होते ही वह 'झुनिया' के विषय में बराबर समाचार लेती रही। अन्त में 'चुहिया' ने प्रसवकाल में उसका समस्त भार उठाया है। 'चुहिया' उन स्त्रियों की तरह है जिन्हें दूसरों के कष्ट में हाथ बँटाने में आनन्द आता है। [illegible] 'झुनिया' की सहायता करती है। [illegible]

का आनन्द आता है। 'राजेन्द्र' को इस आनन्द की गहरी अनुभूति थी। शरतचन्द्र ने 'राजेन्द्र' के माध्यम से एक ऐसे आदर्श की कल्पना की है जो अप्रतिम है तथा साधारण रूप में जिसे नहीं खोजा जा सकता है। दूसरों के लिए अकाल में जीवन अर्पित कर देना सामान्य मनुष्य की परिधि से बाहर है। किन्तु जो मनुष्य मात्र को आत्मसात् कर लेता है, उसके लिए यह साधारण बात हो जाती है। 'राजेन्द्र' इसी कोटि का व्यक्ति है। वह शरतचन्द्र के मानवीय आदर्शों की कल्पना की ऊंचाई का प्रतीक है जिसमें 'गोल्डस्मिथ' का कथन चरितार्थ होता है। अपने एक निबन्ध में 'गोल्डस्मिथ' ने लिखा है—"अतिथिसत्कार आनन्द का सार है।"[१४] वस्तुतः 'राजेन्द्र' मानववाद के शाश्वत तत्त्वों, प्रेम, करुणा, दया से परिपूर्ण मानव है।

समाज के बीच विरोधी परिस्थितियों में मनुष्य के महनीय गुणों को प्रदर्शित कर, प्रेमचन्द ने मानव को उच्च स्तर पर प्रस्थापित किया है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में यह विरोधी स्थिति धार्मिक विद्वेष और वैमनस्य के रूप में सामने आई है। हिन्दू-मुसलमान के साम्प्रदायिक झगड़ों के सदर्भ में मानवीय आदर्शों की परिकल्पना, समसामयिक जीवन की विसंगतियों में संगति उत्पन्न करने का बौद्धिक प्रयास है। 'मुन्शी यशोदानन्दन' (कायाकल्प) इसी प्रकार के झगड़ों के शिकार हो गये। किन्तु उनके मुसलमान मित्र 'ख्वाजा महमूद' की स्थिति का जो चित्रण प्रेमचन्द ने किया है वह उनके मानवीय आदर्शों की स्थापना में सूझ-बूझ का परिचायक है। साम्प्रदायिक भावना होने पर भी 'ख्वाजा साहब' में मानवता का लोप नहीं हो गया है—"मुन्शी यशोदानन्दन की लाश रखी हुई है और ख्वाजा साहब बैठे रो रहे है।"[१५] इतना ही नहीं 'अहल्या' को कुछ मुसलमानों ने गुम कर दिया है। जिसके लिए वे कहते हैं—"कलामे मजीद की कसम, जब तक अहल्या का पता न लगा लूगा मुझे दाना-पानी हराम है। तुम लोग लाश ले जाओ, मैं अभी आता हू। सारे शहर की खाक छान डालूगा, एक-एक घर में जाकर देखूगा, अगर किसी बेदीन बदमाश ने मार नहीं डाला तो जरूर खोज निकालूगा।"[१६] 'ख्वाजा महमूद' का यह निश्चय मनुष्य की महनीय प्रवृति को व्यक्त करता है जो साम्प्रदायिक भावनाओं से ऊपर उठकर मनुष्य मात्र को मानव अनुभव करने की प्रेरणा देता है। इसी कारण 'अहल्या' को ले जाने वाले बदमाश का पता जब उन्हें लगा कि वह उनका पुत्र ही है और जिसे अहल्या ने छुरी भोंककर मार डाला है तो भी 'ख्वाजा साहब' को दुख नहीं हुआ। उनके प्रति स्नेह और प्रेम को उन्होंने व्यक्त किया है किन्तु उसकी राक्षसी प्रवृत्तियों के प्रति उन्होंने किंचित् दया नहीं व्यक्त की अपितु उन्होंने कहा है—"ऐसे लड़के की मौत पर कौन बाप रोयेगा।"[१७] और 'चक्रधर' ने उनके इन्हीं गुणों के आधार पर जो उद्गार व्यक्त किये हैं वे उनकी महत्ता को प्रकट करते है—"आह, इस देवतास्वरूप मनुष्य पर घोर विपत्ति।"[१८]

साम्प्रदायिक मतवादो से ऊपर उठकर मनुष्य की मानववादी प्रवृत्तियों के प्रति मनुष्य को उन्मुख करना प्रेमचन्द का लक्ष्य रहा है। इस प्रकार के धार्मिक विश्वासों और मनुष्य की संकुचित कर्तव्य-भावना को निष्कपट सिद्ध करके मानव-आदर्शों की परिकल्पना मे उन्होंने नया योग दिया है। 'ख्वाजा महमूद' के माध्यम से उन्होंने अपने इसी विचार को पुष्ट किया है, जो मानवता को साम्प्रदायिकता की श्रेणियों में नहीं कसता वरन् मनुष्य का आकलन व्यापक और उदार दृष्टिकोण के द्वारा करता है। मानवीय आदर्श की परिकल्पना मे यह दृष्टि शरतचन्द्र मे नहीं परिलक्षित होती। साम्प्रदायिक मतवादो के परिवेश मे भी प्रेमचन्द ने मानव के उदात्त रूप को ही प्रधानता दी है। 'ख्वाजा महमूद' और 'चक्रधर' मे मानवीय प्रवृत्तियों का जो सुन्दर प्रदर्शन किया है वह इस बात को स्पष्ट करता है कि मनुष्य का 'मानव' रूप साम्प्रदायिक और धार्मिक संकीर्णताओं से ऊपर है। शरतचन्द्र के उपन्यासों मे मानव का यह आदर्श नहीं चित्रित हो सका है।

प्रेमचन्द के मानवीय आदर्शों की परिकल्पना मे मानववाद के अनेक तत्त्व स्वतः ही समाहित हो गए हैं। अपने विभिन्न चरित्रों के माध्यम से जिन मानवीय आदर्शों को उन्होंने उपस्थित किया है वे मानववादी कहे जाने वाले पात्रों से भिन्न प्रकार के हैं, किन्तु ऐसा होने पर भी वैचारिक दृष्टि से मानववाद की प्रतिष्ठा उनके उपन्यासों में हुई है। टी० एस० इलियट के अनुसार "मानववाद विस्तार, सहिष्णुता, समानता और विवेक बुद्धि के लिए मनुष्य को प्रस्तुत करता है। वह धर्मोन्माद के विरुद्ध कार्य करता है।"[1] प्रेमचन्द के उपन्यासों में इस विचारधारा की पुष्टि 'ख्वाजा महमूद' के उदाहरण से हो जाती है किन्तु यह बात यहीं तक ठीक है। वे मानववादी पात्रों का सृजन नहीं करते बल्कि मानव के उन उदात्त गुणों को प्रदर्शित कर देते हैं जिनके द्वारा स्वयं वे निःस्वार्थ निर्धारित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति मे उनके उपन्यासों मे वर्णित मानवीय आदर्श की अपनी विशेषताएँ हैं जो किसी विचार-विशेष से प्रभावित होने की अपेक्षा उनकी

उचित नही। दूसरे वह कुछ निश्चित आदर्शों को लेकर चला है। ऐसी स्थिति मे उसकी वासनात्मक वृत्ति ऊपर उठने के लिए बार-बार बाधाए उत्पन्न करती है। अन्यथा उसमे मानवीय आदर्शों का अभाव नही है। उच्च मानवीय स्तर पर उसकी पहुंच है किन्तु अपनी इस एक कमजोरी के कारण आदर्श का स्पर्श भर कर पाता है। वे आदर्श जिनको लक्ष्य बनाकर चला है उसके जीवन मे ढल नही पाते। शरतचन्द्र के उपन्यासो मे भी मनुष्य की अनेकानेक कमजोरियो के बीच मानवीय आदर्श के तत्त्व अभिव्यक्त किए गए हैं। 'सुरेश' मे मानवीय आदर्शों की कमी नही है। दूसरो के प्रति असीमित करुणा और सहानुभूति है। वस्तुत. 'सुरेश' मे मानवीय आदर्श इतने ऊचे हैं कि कोई भी पात्र उसके प्रबल मानवीय पराक्रम के सम्मुख नही टिक पाता। उसके उच्च मानवीय स्तर को 'महिम' स्पर्श भी नही कर पाता किन्तु 'अमरकान्त' की भाति उसकी सबसे बडी निर्बलता, काम-भावना है। उसने 'अचला' को केवल प्यार ही नही किया अपितु उसकी देह को व्याकुलता और व्यग्रता मे चाहा है जिसके लिए अपने अनन्य मित्र को धोखा देने मे भी नही हिचका है। यही नही 'अचला' को छोडकर जाने पर भी वह दूसरो के हित मे ही अपने प्राण खो देता है किन्तु उसका यह निस्सग त्याग और मानवीय सवेदना मे युक्त हृदय भी उसे ऊपर न उठा सका क्योकि अपने जीवन मे वह अलक्षित काम-भावना नियन्त्रित नही कर सका है। यही कारण है कि उसके प्रति सहानुभूति तो हो जाती है किन्तु असाधारण सेवा-भावना होने पर भी आदर्श के रूप मे वह नही ग्राह्य हो पाता। यहा यह देखा जा सकता है कि प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासो मे जिस मानवीय आदर्श की परिकल्पना की गयी है उसमे जो बाधाए उत्पन्न होती हैं वे विशेष रूप से काम-भावना से सम्बन्धित होती हैं। अत इन उपन्यासों ने मनुष्य की उन स्थितियो को दिखाया है जिनके कारण मनुष्य ऊपर उठने की इच्छा रखते हुए भी अपनी स्थितियो से ऊपर नही उठ पाता। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने मानव-आदर्श की परिकल्पना के साथ-साथ उन स्थितियो को भी प्रस्तुत किया है जिनके कारण मनुष्य ऊपर उठना चाहता है किन्तु उसके मार्ग मे बाधायें उत्पन्न होती हैं। काम-वासना को इन उपन्यासो मे मनुष्य की प्रमुख कमजोरी माना गया है। 'रगभूमि' के 'विनय' और चरित्र-हीन के 'सतीश' मे भी यही कमजोरी प्रदर्शित की गयी है।

मनुष्य के भीतर शैतान की स्थिति आदर्श की स्थापना मे बाधाए उत्पन्न करती है। यह स्थिति बाहर नाना रूपो मे अभिव्यक्त होती है। काम, क्रोध, मोह और लोभ मनुष्य के शुद्ध स्वरूप को आवृत किये रहते हैं। जिसके कारण वह जैसा है वैसा नही परिलक्षित हो पाता। काम, क्रोध, मोह और लोभ के कारण ही उसके

'सोफिया' मे आदर्शों के प्रति आकर्षण

सापना मे बाधाए उत्पन्न की हैं। 'विनय'

के साथ उसके शारीरिक प्रेम को छोड़कर और किसी भी कार्य में वह नीचे नहीं गिरी है। शरतचन्द्र के उपन्यासों में भी इसी प्रकार मनुष्य की काम-वासना को लेकर आदर्श की स्थापना में बाधाएं प्रदर्शित की गयी हैं। 'किरणमयी' (चरित्रहीन) की प्रखरबुद्धि और उसका पाण्डित्य असाधारण है। विद्या और दार्शनिक ज्ञान में वह साधारण नारी से आगे है। किन्तु इतना होने पर भी उसके अंदर स्थित अनियंत्रित काम-वासना ने उसको किसी प्रकार ऊपर उठने का अवसर नहीं दिया है। 'षोडशी' के सम्बंध में भी यही बात है। एक बार चण्डीगढ़ की भैरवी का पद उसे प्राप्त हो चुका है। अतः उसके लिए सांसारिकता का लोभ असंगत है किन्तु उसमें भी संसार के लिए उन्मुख आकांक्षा और वैराग्य के बीच संघर्ष चल रहा था। परिणामस्वरूप वह एक आदर्श की स्थापना करने में असमर्थ रही है। यद्यपि अपनी इस स्थिति को दबाने के कारण ही उसने भैरवी-पद त्याग दिया। किन्तु भैरवी-पद के त्याग में भी उसके अन्दर स्थित सांसारिकता की विजय का ही संकेत मिलता है, उसके आदर्श का नहीं। इस प्रकार प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र ने अपने उपन्यासों में मनुष्य की कामुकता को लेकर उसके आदर्श की स्थापना में जो बाधाएं उत्पन्न होती हैं उसका विवेचन किया है। काम-भावना के सम्बंध में इन उपन्यासकारों ने जो मत व्यक्त किये हैं, वे उनकी समसामयिक स्थिति को देखते की समानधर्मा दृष्टि के परिचायक हैं।

यह बात केवल काम-भावना तक ही नहीं सीमित है। अन्य कारणों को भी देखा जा सकता है। मनुष्य के अन्दर क्रोध, लोभ और मोह की स्थिति भी आदर्शों की ओर उन्मुख व्यक्ति की राह में बाधाएं उपस्थित करती है। मनुष्य जब इन प्रवृत्तियों से घिरा रहता है तब भी उसका 'मानव' सम्मुख नहीं प्रस्तुत हो पाता। 'लाला समरकान्त' (कर्मभूमि) में धार्मिक भावनाओं और नैतिकता का अभाव नहीं है। किन्तु अर्थ के सम्बन्ध में उनका लोभ असीमित है और इस प्रकार वह पूर्ण रूप से माया के बंधन में बंध जाते हैं। धन के सामने उनका धर्म तथा उनकी नैतिकता नगण्य है। परिणामस्वरूप धार्मिक भावनाओं के प्रति आस्था होने पर भी पाप, पाप-पुण्य का विचार रखते हुए भी अपने जीवन में आदर्शों की स्थापना नहीं कर पाते। अर्थ का असीमित लोभ उन्हें 'मानव' नहीं बनने देता और 'पराजित' पर उनकी इस का कोई [illegible] नहीं पड़ता। धन के प्रति उनका मोह और लोभ मानव आत्मा को कुचल देता [illegible] जिसके कारण अनेक उच्चस्तरीय गुणों के कारण भी वे महान् व्यक्ति नहीं हो पाते। [illegible] का लोभ और सांसारिक मोह से जब वे [illegible] हैं तो [illegible] [illegible] हो जाते हैं। आधुनिक [illegible] में सब की [illegible] के कारण मनुष्य [illegible] किस प्रकार [illegible] हो गया है, [illegible] [illegible] है, डॉ० प्रेमचन्द ने 'गोदान' के [illegible]

[illegible] किया है। '[illegible]' में मानवीय गुणों का नितान्त अभाव नहीं है। वे किसानों के प्रति [illegible] सहानुभूति भी रखते हैं किन्तु अर्थ के प्रचण्ड लोभ के कारण उनका शोषण करने से भी नहीं चूकते। इसी प्रकार 'मि० खन्ना' और '[illegible]' में धन की लिप्सा उनको 'मानव' नहीं बनने देती। वे दिन-रात धन के संग्रह में ही लीन रहते हैं। उसके लिए दूसरों को छल कपट और धोखा भी देते हैं। इन पात्रों से प्रेमचन्द ने दिखाया है कि आधुनिक युग में मनुष्य की अर्थ-लोलुप वृत्ति ने उसके जीवन को कितना यान्त्रिक बना दिया है। जिसके कारण मनुष्य सहज मानवीय व्यवहार भी भूल गया है। अर्थ की दृष्टि से [illegible] शरत्चन्द्र के उपन्यासों में मानवीय आदर्शों में बाधाओं की अभिव्यक्ति नहीं हुई है किन्तु मोह और लोभ के अन्य रूपों द्वारा आदर्श में बाधाएं प्रस्तुत की गयी हैं।

जीवन के विविध आयामों में मानव की महत्ता का आकलन जिस आधार पर इन उपन्यासों में हुआ है वह प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र की सामान्य विचारधारा की अभिव्यक्ति है। इन दोनों उपन्यासकारों ने आदर्श के मूल्यांकन में इन प्रवृत्तियों को विशेष स्थान दिया है। किसी को पाने का जो मोह 'राजलक्ष्मी' के चरित्र में प्रस्फुटित हुआ है वह अपनी चरम सीमा पर है। 'राजलक्ष्मी' में मानवीय गुणों का अभाव नहीं है किन्तु 'श्रीकान्त' के प्रति उसका मोह, उसके पाने की आकांक्षा ने उसे साधारण मनुष्य से ऊपर नहीं उठने दिया है। यही बात 'सतीश' के विषय में भी है। 'समरकांत' का लोभ और मोह धन के प्रति है और 'सतीश' का है 'सावित्री' की देह पर। वस्तुत. बुद्धि की अस्थिरता, संयम का अभाव और दूरदर्शिता की कमी के कारण ही मनुष्य ऊंचे उठने से वंचित रह जाता है। काम, क्रोध, मोह और लोभ से जब वह आवृत होता है तो उसके अन्दर संयम, दूरदर्शिता नहीं होते। उसकी बुद्धि भी स्थिर नहीं होती, परिणामस्वरूप वह औचित्य और अनौचित्य को पृथक् नहीं कर पाता। 'सतीश', "किरणमयी', 'समरकांत', 'अमरकांत' और 'सोफ़िया' ऐसे ही मनुष्य हैं। मानव के अनेक सद्गुणों को लेकर भी वे सामान्य मनुष्य से ऊपर नहीं उठ पाए हैं। समय-समय पर अपने महनीय गुणों को प्रदर्शित कर चकाचौंध तो कर देते हैं किन्तु स्थायी और स्पष्ट प्रभाव छोड़ने में वे असमर्थ रहते हैं। यही कारण है कि वे किसी प्रकार के आदर्श की सृष्टि भी नहीं कर पाते।

'रंगभूमि' का 'सूरदास' भी क्रोध, मोह और लोभ से घिरा हुआ व्यक्ति है। पैसा अथवा भीख न मिलने पर, साधारणतः उसे क्रोध आ जाता है। अपनी भिक्षावृत्ति से मिलने वाले पैसों को वह जोड़ता भी है तथा कहने भर को वह धन-संग्रह कर लेता है। अपनी भूमि का उसे मोह भी है, वह उसके पुरखों की देन तो है ही, परन्तु उसके असीमित मोह और ममता है।–किन्तु इन सब प्रवृत्तियों

के होने हुए भी वह एक आदर्श पात्र है। इसका कारण है। इन प्रवृत्तियों के होते हुए उसमे परोपकार की भावना प्रबल है। अपनी भूमि की सुरक्षा निजी उपयोग के लिए नही करना चाहता अपितु समस्त गाव के लोग उससे लाभ उठाते हैं। धन-संग्रह मे भी उसकी यही भावना निहित है। एक-एक पैसा जोड़ कर वह कुआं बनवाने की आकांक्षा रखता है। इस प्रकार ये प्रवृत्तिया उसके वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित न होकर मानव मात्र मे हो जाती हैं जिनके कारण अपने अन्दर वह अहं का अनुभव नही करता। उसकी ये प्रवृत्तिया सार्वजनिक होकर दूसरे के हित मे परिवर्तित हो जाती है और यही वह सामान्य मनुष्य से ऊपर उठ जाता है। मानव-सुलभ कमजोरियो के होते हुए भी वह असाधारण हो जाता है तथा सभी की श्रद्धा का पात्र बनता है। सब कुछ अपनाकर दूसरो को अर्पित कर देने की भावना उसे आदर्श के रूप में उपस्थित कर देती है।

प्रेमचन्द के उपन्यासो के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मानवीय गुणो की बौद्धिक दृष्टि उनके पात्रो मे नही है। बौद्धिक मानवतावादी कहे जाने वाले पात्रो की सृष्टि भी प्रेमचन्द के उपन्यासो मे नही हो सकी है। मानववाद के तत्वो की जो अभिव्यक्ति प्रेमचन्द के आदर्शों मे हुई है वह प्रखर बौद्धिक धरातल पर न होकर धर्म से प्रभावित, भावुकतापूर्ण है। प्रेम, दया, करुणा और सहानुभूति को प्रेमचन्द के पात्र उच्च बौद्धिक धरातल पर नही प्रस्तुत कर पाते हैं। 'होरी' (गोदान) की दया-करुणा जो कुछ है वह उसकी धार्मिक भावुकता को लेकर है। प्रेमचन्द के मानवीय आदर्शों की यह प्रस्थापना शरतचन्द्र से नितांत भिन्न है। शरतचन्द्र के उपन्यासों मे मानवीय गुणों को बौद्धिक स्तर पर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। इसी कारण शरतचन्द्र बौद्धिक मानवतावादी पात्रो का सृजन करने मे भी समर्थ हुए हैं। 'श्रीकांत' (श्रीकांत) 'सव्यसाची' (पथ के दावेदार) 'कमल' (शेषप्रश्न) और 'राजेन्द्र' (शेषप्रश्न) इसी प्रकार के पात्र है। 'कमल' के सभी कार्य बौद्धिक प्रेरणा से अनुशासित होते हैं। 'होरी' अथवा 'सूरदास' की धार्मिक भावुकता उसमे नही है। शरतचन्द्र ने अनुभूति और बुद्धि की समन्वयवादी दृष्टि को लेकर साहित्य-सृजन किया है। इसी से उन्होंने अनुभूति को अभिव्यक्ति को ही साहित्य माना है किन्तु उसके साथ बुद्धि और विचार को छोड़ नही दिया है। इसी कारण शरतचन्द्र ने साहित्य-रचना मे वैज्ञानिक मनोवृत्ति का दावा स्वीकार कर लिया है—"विज्ञान तो केवल पक्षपातहीन कौतूहल मात्र ही नही है वह कार्य-कारण के सच्चे सम्बन्ध का विचार है"[1] तथा इसको इन्होंने स्पष्ट किया है। "इसी से विज्ञान को सम्पूर्ण रूप से अस्वीकार करके धर्म पुस्तक की रचना की जा सकती है, आध्यात्मिक कविता लिखी जा सकती है। परियों की और रानी की कहानियों के साहित्य की रचना की जा सकती है। ऐसा भी नही है। किन्तु उपन्यास-साहित्य के लिए यह श्रेष्ठ राह नही है।"[1]

शरतचन्द्र के मानवीय आदर्शों को प्रेमचन्द से थोडा अलग करके भी देखना होगा क्योंकि शरतचन्द्र के आदर्शों को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। "मनुष्य की सुगम्भीर वासना नर-नारी की निगूढ वेदना का विवरण वह न प्रकट करेगा तो कौन करेगा।"[१२] मानव का यह परिचय एक विशेष आदर्श को प्रस्तुत करने वाला है जिसे बाहर के आदर्शों के मापो द्वारा नियन्त्रित नही किया जा सकता। शरतचन्द्र के मानवीय आदर्शों की यही विशेषता है जिसे 'कमल', 'अभया', 'श्रीकांत' और 'राजलक्ष्मी' के द्वारा उन्होंने अभिव्यक्त किया है। वे यही प्रेमचन्द से भिन्न हैं। प्रेमचन्द के मानवीय आदर्श की स्थापना मे जो प्रयत्न दिखाई पडता है वह शरतचन्द्र के मानवीय आदर्शों की परिकल्पना मे नही है। प्रेमचन्द ने प्राय नैतिकता से आबद्ध मानवीय आदर्शों की कल्पना की है जिसमे बौद्धिक प्रेरणा का अभाव है और धर्म तथा नीति से अनिभावुकता का अश अधिक। शरतचन्द्र मानव की अन्तश्चेतना मे प्रवेश कर उसके निगूढ प्रदेश की भव्य झाकी प्रस्तुत करने मे अद्वितीय हैं। इस प्रकार शरतचन्द्र के मानवीय आदर्श मानव की धवल गरिमा से मण्डित हो उठे है और वे आदर्श होकर भी मानव हैं, नितान्त मानव।

टिप्पणियां

१. ए ट्रीटाइज आन दि नावेल—रावर्ट लिडेल, पृ० १४
२. दि नावेल एण्ड दि पीपुल—राल्फ फौक्स, पृ० १३०
३. वही, पृ० ११०
४. आलोचना (उपन्यास विशेषांक) अंक १३, पृ० १२२
५. ए ट्रीटाइज आन दि नावेल—रावर्ट लिडेल, पृ० २३
६. शरत-पत्रावली, पृ० १००
७. साहित्य का उद्देश्य, पृ० ५४
८. शरत-पत्रावली, पृ० ११८
९. शरत-प्रतिभा, पृ० २३१

पृ० १८

१३. गोदान, पृ० ३०
१४. शरत-प्रतिभा—डा० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त, पृ० ६०
१५. सेवासदन, पृ० ८४
१६. श्रीकान्त
१७. रंगभूमि, पृ० ११८
१८. वही, पृ० २१८
१९. ए ट्रीटाइज आन दि नावेल—राबर्ट लिडेल, पृ० ५६
२०. गोदान, पृ० २६०
२१. वही, पृ० २६०
२२. शेषप्रश्न, पृ० ११७
२३. वही, पृ० ११८
२४. स्टैण्डर्ड इंगलिश प्रोज—पृ० ११७ (एडीटेड बाई के० एस० मारमर)
२५. कायाकल्प, पृ० २००
२६. कायाकल्प, पृ० २०१
२७. वही, पृ० २०४
२८. वही, पृ० २०५
२९. ए ट्रीटाइज आन दि नावेल—राबर्ट लिडेल, पृ० ५४
३०. शरत निबन्धावली, पृ० १४२
३१. वही, पृ० १४२
३२. वही, पृ० ६४

कोई उपन्यासकार अपनी कृति में सशक्त और प्रभावशाली चरित्रों की सृष्टि नहीं कर पाता तो वह कदापि सफल नहीं हो सकता। यदि किसी उपन्यास के पात्रों में सजीवता या सशक्तता है तो वे पाठक के हृदय पर भारी प्रभाव डालते हैं और उनमें इन गुणों का अभाव होता है तो वे प्रभाव रहित तो सिद्ध होते ही हैं, पाठक को किसी प्रकार का भी चिन्तन करने की प्रेरणा देने में असमर्थ रहते हैं।"[4]

उपन्यासकार की कृतियों में पात्रों का संघटन उसके वैयक्तिक अनुभवों तथा उसके जीवन की विविधता के सूक्ष्म अध्ययन पर निर्भर करता है। अतः पात्रों के निर्माण में उपन्यासकार की अनुभूति और कल्पना का विशेष महत्त्व होता है। उपन्यासकार अपनी अनुभूतियों को कल्पना के माध्यम से व्यक्त करता है। इस सम्बन्ध में समाज में लेखक के व्यक्तित्व की क्रिया एवं प्रक्रिया का प्रभाव भी उसके पात्रों पर पड़ता है। अत. कहा जा सकता है कि उपन्यासकार का व्यक्तित्व पात्रों के विकास-क्रम में निहित रहता है। यदि कोई उपन्यासकार अपने पात्रों में केवल अनुभूतियों की ही अभिव्यक्ति करता है तो वह एक प्रकार का संवाददाता (रिपोर्टर) होता है किन्तु अनुभूतियों को कल्पना के रंग में रंगकर अपनी कृतियों में पात्रों का निर्माण करने वाला व्यक्ति कलाकार होता है। उपन्यास-कला की सजीवता, पात्रों के निर्माण में कल्पना और अनुभूति के सम्मिश्रण की अपेक्षा करती है। तभी ऐसे पात्रों का सृजन सम्भव हो सकता है जो मानव-मन को स्पर्श करने में समर्थ हों।

औपन्यासिक पात्रों का निर्माण मानव-समूह के किसी वर्ग की प्रवृत्तियों अथवा मानव की वृत्तियों को प्रकाश में लाने के लिए किया जाता है। अत विभिन्न वर्गों की प्रवृत्तियां अथवा विभिन्न मनुष्यों की प्रवृत्तियां भिन्न-भिन्न हुआ करती हैं। औपन्यासिक पात्रों की भिन्नता का कारण भी यही है—"आधारों की भिन्नता के कारण पात्र स्वरूपता की भिन्नता उपस्थित होगी, अत इसमें सार्वभौमता न तो सम्भव है और न काम्य है। औपन्यासिक पात्रों का वर्गीकरण आधारों की इस भिन्नता का ही प्रतिफलन होगा।"[5] आधारों की भिन्नता को दृष्टिकोण में रखकर पात्रों के अनेक वर्ग उपन्यास में प्राप्त हो सकेंगे। सामाजिक आधार पर पात्र टाइप, वर्ग-विशेष के प्रतिनिधि तथा असामाजिक होंगे।[6]

पात्रों का प्रथम भेद वर्गगत भिन्नता के आधार पर भी किया गया है—"उपन्यास सम्पूर्ण मानव-जाति या समाज का चित्र है। इस दृष्टि से उसके पात्र अवश्य किसी वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं।"[7] वस्तुतः उपन्यासों में वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र अवश्य होते हैं किन्तु सभी पात्र मानव-समाज के किसी-न-किसी वर्ग के प्रतिनिधि होंगे ऐसा नहीं कहा जा सकता। संसार में समान प्रवृत्तियों वाले अनेक मनुष्य हो सकते हैं किन्तु उनकी समानता में भी निश्चित असमानता भी प्राप्त होगी।

मानव-समूह की किसी-न-किसी प्रवृत्ति को प्रत्येक मनुष्य ज्ञापित करता है किन्तु प्रत्येक की प्रवृत्तियों में भिन्नता भी होती है। एक से ही गुणों वाले दो मनुष्य मिल भी सकते हैं किन्तु नितान्त भिन्न प्रवृत्तियों वाले मानव भी होते हैं। एक दूसरे की भिन्नता ही अलग-अलग व्यक्तित्व निर्माण करती है। अतः पात्रों का एक वर्ग स्वतन्त्र व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता हुआ मिलेगा। ऐसी स्थिति में यह कहना भ्रामक है कि प्रत्येक पात्र अवश्य किसी-न-किसी वर्ग का प्रतिनिधि होगा। व्यक्ति की स्वतन्त्र विशेषताओं के आधार पर पात्रों की वैयक्तिक और निर्वैयक्तिक कोटियां भी हो सकती हैं। वैयक्तिक प्रवृत्तियों को दृष्टि में रखकर कुछ पात्र ऐसे हो सकते हैं कि जिनका चरित्र ठोस धरातल पर विकसित होता है तथा ऐसे भी वैयक्तिक पात्र हो सकते हैं जो चरित्र के अभाव में विकसित न हो सके।

ई० एम० फास्टर ने पात्रों का वर्गीकरण पात्रों की क्रियाशीलता को दृष्टि में रखकर किया है। जो पात्र सजीव, सशक्त तथा गतिशील होते हैं उन्हें फार्स्टर ने आवर्तनशील (राउन्ड) पात्र कहा है तथा अनिश्चित रूप वाले जीवन के स्पंदन से हीन स्थिर पात्रों को चपटा (फ्लैट) कहा है।[८] सी० एच० रिक्वर्ड ने पात्रों की इन्हीं प्रवृत्तियों के आधार पर, गतिशील (डायनेमिक) तथा स्थिर (स्टेटिक) वर्ग में पात्रों का वर्गीकरण किया है। रिक्वर्ड ने इन्हीं को क्रियाशील तथा क्रियाशीलता से रहित पात्र भी कहा है तथा उनमें भी विभेद कर उनमें निहित आन्तरिक मानव और बाह्य मानव का संकेत किया है।[९]

उपन्यासों में कुछ पात्र आदर्श की प्रतिष्ठा में निरत मिलेंगे। मानव के देवत्व की ओर उन्मुख होने पर उसमें आदर्शों की प्रतिष्ठा होती है। इस दृष्टि से आदर्शोन्मुखी पात्रों की सृष्टि होगी। ऐसे पात्रों को सात्विक वृत्ति वाले पात्र भी कहा जा सकता है। कुछ पात्र जीवन की वास्तविकता का उद्घाटन करते हुए यथार्थोन्मुखी वर्ग की स्थापना करेंगे। वृत्तियों के आधार पर तामसवृत्ति का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों का एक अलग वर्ग हो सकता है। इसमें प्रायः खलनायकों के चरित्र आ जाते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पात्रों के दो वर्ग अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी किये जा सकते हैं। अन्तर्मुखी पात्रों की क्रियाशीलता उन्हीं के 'स्व' पर केन्द्रित रहती है किन्तु बहिर्मुखी पात्रों का व्यक्तित्व समाज के बीच निखरता है। कामवृत्ति को केन्द्र बनाकर पात्रों का एक अलग वर्गीकरण किया जा सकता है। "कामवृत्ति की सन्तुष्टि की दृष्टि से पात्रों में चरितार्थता अथवा उन्नयन वृत्ति मिलेगी। इस वृत्ति की अबाध अभिव्यक्ति सन्तुष्टि के साथ-साथ ही रूपान्तरकरण दमन अथवा उन्नयन के दर्शन होते हैं।"[१०]

पात्रों का सामान्य वर्गीकरण अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से उपयोगी है किन्तु कुल मिलाकर प्रत्येक पात्र जिस वर्ग और समाज से जुड़ा रहता है, वह उस और

कोई उपन्यासकार अपनी कृति मे सशक्त और प्रभावशाली चरित्रो की सृष्टि
पाता तो वह कदापि सफल नही हो सकता । यदि किसी उपन्यास के पात्रो मे
या सशक्तता है तो वे पाठक के हृदय पर भारी प्रभाव डालते हैं और उनमे
का अभाव होता है तो वे प्रभाव रहित तो सिद्ध होते ही हैं, पाठक को ि
का भी चिंतन करने की प्रेरणा देने मे असमर्थ रहते हैं।"४

उपन्यासकार की कृतियों मे पात्रो का संघटन उसके वैयक्तिक अ
उसके जीवन की विविधता के सूक्ष्म अध्ययन पर निर्भर करता है। अ
निर्माण मे उपन्यासकार की अनुभूति और कल्पना का विशेष महत्त्व होता ।
कार अपनी अनुभूतियो को कल्पना के माध्यम से व्यक्त करता है। इ
समाज मे लेखक के व्यक्तित्व की क्रिया एवं प्रक्रिया का प्रभाव भी ट
पडता है। अत. कहा जा सकता है कि उपन्यासकार का व्यक्तित्व प
क्रम मे निहित रहता है। यदि कोई उपन्यासकार अपने पात्रों मे केवल
ही अभिव्यक्ति करता है तो वह एक प्रकार का सवाददाता (रिपोर्टर)
अनुभूतियो को कल्पना के रग मे रगकर अपनी कृतियो मे पात्रो व
वाला व्यक्ति कलाकार होता है। उपन्यास-कला की सजीवता, प
कल्पना और अनुभूति के सम्मिश्रण की अपेक्षा करती है। तभी ऐ
सम्भव हो सकता है जो मानव-मन को स्पर्श करने मे समर्थ हो।

औपन्यासिक पात्रो का निर्माण मानव-समूह के किसी वर्ग
मानव की वृत्तियो को प्रकाश मे लाने के लिए किया जाता है। अ
प्रवृत्तिया अथवा विभिन्न मनुष्यो की प्रवृत्तिया भिन्न-भिन्न हुआ
सिक पात्रो की भिन्नता का कारण भी यही है—"आधारो की भि
स्वरूपता की भिन्नता उपस्थित होगी, अत इसमे सार्वभौमता
न साम्य है। औपन्यासिक पात्रो का वर्गीकरण आधारों की इस
फलन होगा।"५ आधारो की भिन्नता को दृष्टिकोण मे रखक
उपन्यास मे प्राप्त हो सकेगे। सामाजिक आधार पर पात्र टाइ
निधि तथा असामाजिक होगे।६

पात्रो का प्रथम भेद वर्गगत भिन्नता के आधार प
"उपन्यास सम्पूर्ण मानव-जाति या समाज का चित्र है। इस द
किसी वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं।"७ वस्तुत: उपन्यासो मे वर्
करने वाले पात्र अवश्य होते हैं किन्तु सभी पात्र मानव-समा
के प्रतिनिधि होंगे ऐसा नही कहा जा सकता। ससार मे स
मनुष्य हो सकते हैं किन्तु उनकी समानता मे भी निश्चित ट

की प्रवृत्तियाँ है। 'जमींदार की शोषक वृत्ति का उदाहरण स्पष्ट चित्र 'प्रेमाश्रम' के 'ज्ञानशंकर' के द्वारा प्रेमचन्द ने प्रस्तुत किया है। 'ज्ञानशंकर' की चरित्र सृष्टि का आधार किसानों के प्रति सामंती वर्ग के अत्याचार को प्रदर्शित करना है। 'ज्ञानशंकर' का स्वर 'रायसाहब' (गोदान) से भिन्न अवश्य है किन्तु उनकी मनोवृत्ति मे बहुत अंतर नहीं है। केवल 'ज्ञानशंकर' अपनी प्रवृत्तियो को प्रदर्शित करने मे कुछ उग्र ज्यादा है।

प्रेमचन्द के सामती वर्ग के पात्रो मे एक वर्ग ऐसा भी है जो शोषक के साथ-साथ अपने आश्रितो का पोषण करने वाला भी है। इसका सकेत प्रेमचन्द ने 'प्रभाशकर' (प्रेमाश्रम) मे दिया है। यद्यपि 'प्रभाशकर' के चरित्र का विकास अधिक नही हो सका है। किन्तु इतना निश्चित है कि प्रेमचन्द के सामती वर्ग के पात्रो मे एक निश्चित विचारधारा से भिन्न पात्र का निर्माण भी हुआ है। 'प्रभाशकर' का दृष्टिकोण 'ज्ञानशकर' से भिन्न है परिणामत दोनो व्यक्तियो मे अनबन रहती है। 'प्रभाशकर' अपनी प्राचीन मर्यादा की रक्षा मे निरन्तर रहने वाले व्यक्ति हैं। 'ज्ञानशकर' की उच्छृखल प्रवृत्ति उनके लिए असहनीय है। व्यर्थ मे किसानो को पीडित न करना, दान-दक्षिणा तथा भोजनादि मे उदार होना 'प्रभाशकर' की प्रमुख विशेषताए हैं।

शरतचन्द्र के उपन्यासो मे सामती वर्ग के पात्र विभिन्न कोटियो के हैं। 'जीवानद चौधरी' (देना पावना) तथा 'राजेन्द्र' (विराज बहू) मे जमीदार वर्ग की उच्छृखल और तामसी वृत्तियो का चित्रण किया गया है। 'जीवानद' का प्रारम्भिक जीवन शराबी और कामुक चित्रित हुआ है। जमीदार के अधिकारो के बल पर 'जीवानद' चण्डीगढ की भैरवी' को अपने बाहुपाश मे बाधना चाहता है। नजराना वसूल करने तथा किसानो पर अत्याचार करने की प्रवृत्ति का सकेत भी 'जीवानद' मे हुआ है— 'जीवानद' ने घडी भर चुप रहकर कहा—"कल तुम जाकर उसे जता आओ कि बीघा पीछे दस रुपया नजराना मुझे चाहिये ।"[१३] इस प्रकार जमीदार 'जीवानद' चण्डीगढ मे अपने अत्याचारो के लिए शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गया। 'जीवानद' के आतक से ग्रामीण समाज मे भय उत्पन्न हो गया—"शराबी जमीदार को एकाएक यह समझ आ गयी कि अब वह निषिद्ध मास का और यहा तक वृथा मास का भी भोजन करेंगे। साथ ही बकरे का मास भी यथेष्ट स्वादिष्ट और रुचिकर नही होता। इसी से आज जमीदार के आदमियो ने डोमो के मोहल्ले से एक खस्सी लाकर मदिर मे हाजिर किया और उसका महाप्रसाद कर देने को कहा। पुरोहित ने पहले आपत्ति की, किन्तु *अत मे जमींदार की आज्ञा शिरोधार्य करके उसी को उत्सर्ग करके विधिपूर्वक बलि* देकर देवी का प्रसाद तैयार कर दिया ।"[१४] यहा 'रायसाहब' (गोदान) और 'जीवानद' [illegible] को भी देखा जा सकता है। 'रायसाहब' और 'जीवानद' दोनो

अपने समय के पूरे समाज विधान के उन्नयन या पतन का साक्षी ही नही बल्कि भागीदार के रूप मे समाजशास्त्रीय कारक बनकर सामने आता है। रचनाकार चाहे स्वयं को पात्रो के साथ तादात्मीकृत नही करे फिर भी वह उन्हे निजी अनुभवो की सच्चाइयों के वृत्त से लेता है। प्रेमचन्द को किसान और निम्नवर्गीय जीवन का गहरा अनुभव रहा है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो मे किसान और निम्नवर्गीय पात्रो के चित्रण मे विशेष रुचि दिखाई है। शरतचन्द्र का लक्ष्य मध्यवर्गीय समाज रहा है। उसका उन्हें गहरा अनुभव भी रहा है। कुलीनवर्ग के सांस्कृतिक जीवन का चित्रण भी शरतचन्द्र के पात्रों मे हुआ है। रचनाकारो का अपने सामाजिक प्रारूप से यह गहरा परिचय पात्रो के माध्यम से व्यक्त हुआ है। प्रेमचन्द के उपन्यासो के पात्र किसी-न-किसी वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं। प्रेमचन्द पात्रो के निर्माण मे उनसे सम्बन्धित वर्गों की प्रवृत्तियो को अकित करने पर विशेष ध्यान रखते हैं। परिणामत: वर्ग की प्रवृत्तियो का विश्लेषण प्रेमचन्द के पात्रो मे अधिक सूक्ष्म और पैनी दृष्टि से हुआ है। शरतचन्द्र के उपन्यासों के पात्र अपने वर्गों की प्रवृत्तियो का प्रकाशन अवश्य करते हैं किन्तु उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास भी होता है। इस प्रकार शरतचन्द्र ने पात्रो के निर्माण मे वर्गों की प्रवृत्तियों के साथ-साथ उनकी स्वतन्त्र विशेषताओं का भी चित्रण किया है।

'गोदान' के 'रायसाहब' की द्विपक्षीय प्रवृत्ति केवल उन्ही की नही है बल्कि उनके सम्पूर्ण वर्ग की है। 'रायसाहब' सामती वर्ग की उन प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो उस वर्ग मे प्राय: पायी जाती है। सामती वर्ग एक ओर किसान को अपने आश्रित रखकर उनकी कुछ सहायता करना चाहता है। दूसरी ओर वह सरकार का विरोध भी नहीं करता तथा अवसर पडने पर शासकों के साथ मिलकर अपने आश्रित वर्ग का शोषण भी करता है। 'रायसाहब' मे यह प्रवृत्ति स्पष्टत: देखी जा सकती है। एक स्थल पर 'रायसाहब' किसानो के प्रति अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त करते हुए कहते हैं—"समाज की ऐसी व्यवस्था, जिसमे कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पिसें और खपें कभी सुखद नही हो सकती।"[11] अवसर पडने पर 'रायसाहब' किसानों का शोषण करने मे भी नही चूकते—"रायसाहब के माथे पर बल पड गये। आँखें निकाल कर बोले—चलो मैं इन दुष्टों को ठीक करता हूँ। जब कभी खाने को नहीं दिया गया तो आज यह नयी बात क्यों? एक रोज के हिसाब से मजूरी मिलेगी, जो हमेशा मिलती रही है, और इस मजूरी पर उन्हें काम करना होगा। सीधे करें या टेढ़े।"[11] 'रायसाहब' की स्वार्थी वृत्ति, अपने ही वर्ग के लोगों से ईर्ष्या, द्वेष तथा मिथ्याप्रदर्शन उनके वर्ग की प्रवृत्तिया हैं। 'रायसाहब' के सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन मे प्रतिष्ठा की असीमित लालसा स्पष्टत: देखी जा सकती है। शिकार की अनुपलब्ध वस्तुओं के प्रति आकर्षण सामन्ती वर्ग की प्रवृत्ति है। 'रायसाहब' की दृष्टि का आधार उनके वर्ग

की स्थिति सुधारने तथा प्राचीन समाज की कुत्सित परम्पराओं को समाप्त करने में मदद की है। 'विरजन' में भी अपने आश्रितों के प्रति सहानुभूति और संवेदना है।

प्रेमचन्द के मध्यवर्गीय पात्र अपने वर्ग की विभिन्न प्रवृत्तियों के प्रकाश-स्तम्भ हैं। 'पद्मसिंह शर्मा' (सेवासदन) मध्यवर्ग के शिक्षितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। शिक्षित होने पर भी 'पद्मसिंह' में प्राचीन संस्कारों के प्रति मोह है। परिणामत: नैतिकता और मर्यादा का 'पद्मसिंह' को विशेष ध्यान है। अपने सामाजिक जीवन में वे सुधारक और प्रगतिशील दृष्टिगत होते हैं। वस्तुत 'पद्मसिंह' में मध्य वर्ग की सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का चित्रण किया गया है। इसी से वेश्या-प्रथा उन्मूलन के वे बहुत बड़े समर्थक हैं किन्तु अनेक प्राचीन मान्यताओं का वे विरोध नहीं कर पाते। इस दृष्टि से 'पद्मसिंह' के चरित्र में एक गहरी असंगति परिलक्षित होती है। अपने सिद्धान्तों पर 'पद्मसिंह' दृढ़ नहीं रह पाते। 'पद्मसिंह' के चरित्र को स्पष्ट करते हुए एक स्थल पर उपन्यासकार ने लिखा है—"यद्यपि वह स्वयं बड़े आचारवान मनुष्य थे, तथापि अपने सिद्धान्तों पर स्थिर रहने की सामर्थ्य उनमें नहीं थी। वह अपने पक्ष पर अड़ न सकते थे।"[१६]

प्रेमचन्द के सभी मध्यवर्गीय पात्र नेता और सुधारक नहीं हैं। प्रेमचन्द ने अपने मध्यवर्गीय पात्रों में विभिन्न आर्थिक स्तरों का आकलन किया है। वस्तुत आर्थिक दृष्टि से मध्यवर्गीय व्यक्ति की स्थिति सदैव अनिश्चित रहती है क्योंकि सामाजिक मर्यादा तथा अर्थाभाव के कारण उसे सदैव अपनी वृत्ति को अर्थ पर केन्द्रित रखना होता है। अपनी मर्यादा को मध्यवर्गीय व्यक्ति वास्तविकता से अधिक प्रदर्शित करना चाहता है तथा अपनी प्रतिष्ठाओं को वह उच्चस्तरीय बनाना चाहता है। यही कारण है कि मध्यवर्गीय व्यक्ति दिखावे की प्रवृत्ति से आक्रांत रहता है। 'गबन' का 'रमानाथ' 'पद्मसिंह शर्मा' से भिन्न स्तर का चरित्र है। 'रमानाथ' में उच्चस्तरीय सम्मान की लालसा इतनी अधिक है कि वह अपनी पत्नी से भी अपनी तथा अपने परिवार की वास्तविक स्थिति को छिपाता है। अपनी मर्यादा को प्रतिष्ठित करने के लिए ही वह गबन करता है तथा अपनी नैतिक दुर्बलताओं के कारण पुलिस का झूठा गवाह भी बनता है। प्रेमचन्द ने 'रमानाथ' के द्वारा मध्यवर्ग की जिन निर्बलताओं की ओर संकेत किया है, उसमें उस वर्ग का सच्चा चित्र अंकित हो जाता है। 'निर्मला' के 'तोताराम' के चरित्र का विकास भी मध्यवर्ग के आर्थिक ढांचे को लेकर हुआ है। 'तोताराम' के लिए पैसे का मूल्य उनके परिवार के सदस्यों से अधिक है। 'तोताराम' में उच्च-स्तरीय सम्मान की इच्छा न होकर उनमें अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं का विशेष ध्यान है। इसी से धन का उनके लिए सर्वाधिक मूल्य है तथा उन्होंने तीन पुत्र होने के उपरांत भी वृद्धावस्था में विवाह करने में संकोच नहीं किया है।

ही शोषक हैं। किन्तु 'जीवानन्द' में अत्याचार करने की प्रवृत्ति 'रायसाहब' से अधिक है। दोनों पात्र सामंती वर्ग की स्वार्थी वृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'रायसाहब' में सम्मान की लालसा अधिक है इसी से उनमें जमींदारों की अत्याचारी भावना का निरूपण नहीं है। 'जीवानन्द' को अपनी प्रतिष्ठा और मर्यादा का ध्यान नहीं है। वह अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए सभी साधन अपना सकता है। परन्तु 'जीवानन्द' में 'रायसाहब' की भांति अपने वर्ग के प्रति ईर्ष्या और द्वेष का सर्वथा अभाव है। शरत्चन्द्र का मुख्य उद्देश्य सामंती वर्ग की उच्छृंखल प्रवृत्तियों का अंकन करना रहा है। यही कारण है कि 'जीवानन्द' और उसके आश्रित किसानों के बीच संघर्ष का अभाव है।

'बड़ी बहन' के परवर्ती अश में 'सुरेन्द्रनाथ' का चरित्र भी जमीदार के अत्याचार और उत्पीड़न को लेकर अंकित हुआ है। 'सुरेन्द्रनाथ' का प्रारम्भिक जीवन अत्यत शांत और सयत रहा है। किन्तु पबना जिले में अपने नाना की जमीदारी मिलने पर उसके चरित्र में एक नया मोड़ आया है। यद्यपि 'सुरेन्द्रनाथ' में उसकी प्रारम्भिक प्रवृत्तियो का लोप नही हो गया है किन्तु शरतचन्द्र का उद्देश्य जमीदारों की अत्याचारी भावनाओ का प्रदर्शन करना रहा है। परिणामतः 'सुरेन्द्रनाथ' अपने आश्रितों की पीड़ा और दु:ख का अनुभव तो करता है किन्तु अपने को परिस्थितियों से ऊपर नही उठा पाता। 'जीवानद' की भांति 'सुरेन्द्रनाथ' भी उच्छृंखल हो गया। सुरेन्द्रनाथ का चित्रण करते हुए शरतचन्द्र ने लिखा है— "सुरेन्द्रनाथ की बैठक मे आज-कल दोस्तों का खूब जमाव रहता है। वे लोग बहुत ही सुखपूर्वक अपने दुनिया के शौक पूरे करते हैं। पान-तम्बाकू, शराब-कबाब किसी की भी उन्हे चिन्ता नही करनी पड़ती—सब चीजें आप से आप मुह में आ जाती हैं। मैनेजर मथुरा बाबू का इन बातो मे खूब उत्साह है। खर्च के लिए रुपये जुटाने मे वे मुक्त-हस्त है, लेकिन उसके लिए जमीदार को क्षतिग्रस्त नही होना पड़ता। उनके शासन के गुण से प्रजा को ही सारा व्यय-भार सहन करना पड़ता है। मथुरा बाबू का किसी के यहां एक पैसा भी बाकी नही रह सकता। घर जलाने, किसी को उजाड कर गाँव से निकाल देने या कचहरी की छोटी-सी कोठरी मे बन्द कर देने आदि में उनके साहस और उत्साह की सीमा नहीं है।"[१५] शरतचन्द्र के सामती वर्ग के पात्रों मे कुछ ऐसे भी पात्र हैं जो अपने आश्रित वर्ग के प्रति सहृदय हैं, किसानो के शोषण के विरुद्ध तथा उनमें स्वार्थी वृत्ति का भी अभाव है। ग्रामीण-समाज के 'रमेश' तथा 'दत्ता' की 'विजया' मे इसे स्पष्टतः देखा जा सकता है। 'रमेश' अपने आश्रित किसान वर्ग की दयनीय स्थिति को ठीक-ठीक समझ चुका था। इसी से वह किसानों के प्रति सहृदय है। वह उन पर अत्याचार करने के विरुद्ध है। 'रमेश' ने अपनी समस्त शक्ति किसानों

की स्थिति सुधारने तथा ग्रामीण समाज की कुत्सित परम्पराओं को समाप्त करने में रत की है। 'विजन' में भी उसने श्रमिकों के प्रति सहानुभूति और संवेदना है।

प्रेमचन्द के मध्यवर्गीय पात्र अपने वर्ग की विभिन्न प्रवृत्तियों के प्रकाश-स्तम्भ हैं। 'पद्मसिंह शर्मा' (सेवासदन) मध्यवर्ग के शिक्षितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। शिक्षित होने पर भी 'पद्मसिंह' में प्राचीन संस्कारों के प्रति मोह है। परिणामतः नैतिकता और मर्यादा का 'पद्मसिंह' को विशेष ध्यान है। अपने सामाजिक जीवन में वे सुधारक और प्रगतिशील दृष्टिगत होते हैं। वस्तुतः 'पद्मसिंह' में मध्य वर्ग की सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का चित्रण किया गया है। इसी से वेश्या-प्रथा उन्मूलन के वे बहुत बड़े समर्थक हैं किन्तु अनेक प्राचीन मान्यताओं का वे विरोध नहीं कर पाते। इस दृष्टि से 'पद्मसिंह' के चरित्र में एक गहरी असंगति परिलक्षित होती है। अपने सिद्धान्तों पर 'पद्मसिंह' दृढ़ नहीं रह पाते। 'पद्मसिंह' के चरित्र को स्पष्ट करते हुए एक स्थल पर उपन्यासकार ने लिखा है—"यद्यपि वह स्वयं बड़े आचारवान मनुष्य थे, तथापि अपने सिद्धान्तों पर स्थिर रहने की सामर्थ्य उनमें नहीं थी। वह अपने पक्ष पर अड़ न सकते थे।"[१६]

प्रेमचन्द के सभी मध्यवर्गीय पात्र नेता और सुधारक नहीं हैं। प्रेमचन्द ने अपने मध्यवर्गीय पात्रों में विभिन्न आर्थिक स्तरों का आकलन किया है। वस्तुतः आर्थिक दृष्टि से मध्यवर्गीय व्यक्ति की स्थिति सदैव अनिश्चित रहती है क्योंकि सामाजिक मर्यादा तथा अर्थाभाव के कारण उसे सदैव अपनी वृत्ति को अर्थ पर केन्द्रित रखना होता है। अपनी मर्यादा को मध्यवर्गीय व्यक्ति वास्तविकता से अधिक प्रदर्शित करना चाहता है तथा अपनी प्रतिष्ठाओं को वह उच्चस्तरीय बनाना चाहता है। यही कारण है कि मध्यवर्गीय व्यक्ति दिखावे की प्रवृत्ति से आक्रान्त रहता है। 'गबन' का 'रमानाथ' 'पद्मसिंह शर्मा' से भिन्न स्तर का चरित्र है। 'रमानाथ' में उच्चस्तरीय सम्मान की लालसा इतनी अधिक है कि वह अपनी पत्नी से भी अपनी तथा अपने परिवार की वास्तविक स्थिति को छिपाता है। अपनी मर्यादा को प्रतिष्ठित करने के लिए ही वह गबन करता है तथा अपनी नैतिक दुर्बलताओं के कारण पुलिस का झूठा गवाह भी बनता है। प्रेमचन्द ने 'रमानाथ' के द्वारा मध्यवर्ग की जिन निर्बलताओं की ओर संकेत किया है, उसमें उस वर्ग का सच्चा चित्र अंकित हो जाता है। 'निर्मला' के 'तोताराम' के चरित्र का विकास भी मध्यवर्ग के आर्थिक ढांचे को लेकर हुआ है। 'तोताराम' के लिए पैसे का मूल्य उनके परिवार के सदस्यों से अधिक है। 'तोताराम' में उच्च-स्तरीय सम्मान की इच्छा न होकर उनमें अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं का विशेष ध्यान है। इसी से धन का उनके लिए सर्वाधिक मूल्य है तथा उन्होंने तीन पुत्र होने के उपरांत भी वृद्धावस्था में विवाह करने में संकोच नहीं किया है।

किसान-वर्ग के पात्रों का प्रणयन नहीं हुआ है। किन्तु प्रेमचन्द ने जिस सामाजिक शक्ति को लक्ष्य बनाकर उपन्यास-रचना की है, उस परिधि में भारत का किसान महत्वपूर्ण हिस्सा अदा करता है।

'होरी' (गोदान) में किसान वर्ग की सामान्य विशेषताएं स्पष्टत अभिव्यक्त हुई हैं। प्रेमचन्द ने एक स्थल पर किसान वर्ग की प्रवृत्तियों का चित्रण करते हुए लिखा है - "किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें सन्देह नहीं। उसकी गांठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घटों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाय वह किसी के फुसलाने में नहीं आता।"[११] 'होरी' किसान वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है। अतः उसमें उस वर्ग की समस्त प्रवृत्तियां आसानी से देखी जा सकती हैं। अपने स्वार्थ के लिए 'होरी' 'रायसाहब' और 'सहुआइन' की खुशामद करता है। 'होरी' में किसान वर्ग के सामान्य गुणों को आरोपित किया गया है। किसान प्रायः रूढ़िवादी होता है। वह अन्धविश्वास और धर्मभीरुता से घिरा रहता है। संस्कारों को तोड़ सकने की क्षमता उसमें नहीं होती। किसान वर्ग की इन प्रवृत्तियों को 'होरी' में देखा जा सकता है—"मगर होरी के पेट में धर्म की क्रांति मची हुई थी। अगर ठाकुर या बनिये के रुपये होते तो उसे ज्यादा चिन्ता न होती लेकिन ब्राह्मण के रुपये। उसकी एक पाई दब गयी तो हड्डी तोड़ कर निकलेगी। भगवान् न करे ब्राह्मण का कोप किसी पर गिरे। बंस में कोई चिल्लू भर पानी देने वाला, घर में दिया जलाने वाला नहीं रहता। उसका धर्मभीरु मन त्रस्त हो उठा।"[१२] 'होरी' में प्राचीन मान्यताओं, रूढ़ियों और संस्कारों का अलक्षित आग्रह है। अपने वर्ग के अन्दर सम्मान और प्रतिष्ठा की भावना भी उसमें है। यही कारण है कि 'होरी' अपनी दो बीघे जमीन को किसी मूल्य पर जाने नहीं देना चाहता। अपनी जमीन की रक्षा के लिए ही वह 'रायसाहब' को प्रसन्न रखता है। 'होरी' किसानी की भावना को अभिमानपूर्वक देखता है।

किसान वर्ग में 'होरी' से भिन्न पात्रों का सृजन भी प्रेमचन्द ने किया है। 'बलराज' (प्रेमाश्रम) तथा 'गोबर' (गोदान) किसान होकर भी 'होरी' की मान्यताओं का समर्थन नहीं करते। 'होरी' के लिए उसकी जमीन, उसकी मर्यादा का प्रश्न है। इसी लिए 'होरी' 'रायसाहब' की चापलूसी करता है। 'गोबर' का दृष्टिकोण 'होरी' से भिन्न है। 'रायसाहब' की खुशामद करने पर 'गोबर' उसे टोक देता है "यह तुम रोज रोज मालिक की खुशामद करने क्यों जाते हो? बाक ... े ज्यादा आकर गालियां सुनाता है, बेगार देनी ही पड़ती है, नजर ... हम से भराया जाता है। फिर किसी की क्यों सलामी करो।"[१३]

भावना का कारण है। वह किसानी से चिपका नहीं है। दो बीघे भूमि उसकी मर्यादा का प्रश्न नहीं है। वह किसानी की सीमाओं से बाहर निकलता है, शहर जाता है, भटकता है और धीरे-धीरे मिल मजदूर बनता है। इस प्रकार 'गोबर' के माध्यम से किसान वर्ग के प्राचीन संस्कारों पर प्रेमचन्द ने गहरा आघात किया है। 'गोबर' प्राचीन मान्यताओं को तोड़ देता है। गाव में दुनिया ढोने की अपेक्षा बाहर जाकर मजदूरी करके 'गोबर' किसान वर्ग की नवीन शक्ति की उद्घोषणा करता है। 'होरी' जिस किसान वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है उसमें श्रम की गतिशीलता नहीं है, उस वर्ग के व्यक्ति गांव में बेकार रहना पसन्द करेंगे किन्तु बाहर जाकर श्रम नहीं करना चाहते। 'गोबर' इस परम्परा को तोड़ देता है। इस प्रकार किसान वर्ग में 'गोबर' गतिशील श्रम की प्रेरणा का केन्द्र बनता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में पात्रों के चरित्र-चित्रण में वर्ग की प्रवृत्तियों विशेष ध्यान रखने के कारण पात्रों में प्रत्येक वर्ग की सूक्ष्म विशेषताएँ बहुत स्वाभाविक और यथार्थ रूप में अंकित हुई हैं किन्तु पात्रों की वैयक्तिकता को पूरी तरह समाप्त कर दिया गया है। पात्रों की स्वतन्त्र विशेषताओं का ध्यान प्रेमचन्द के पात्रों में नहीं रखा गया है। अतः प्रेमचन्द के पात्रों में स्वतन्त्र व्यक्तित्व का अभाव है। 'सूरदास' (रंगभूमि) में स्वतन्त्र विशेषताओं को चित्रित करने का प्रयास किया गया है किन्तु गहरे घात-प्रतिघात के अभाव में उसका व्यक्तित्व भी निखर नहीं पाया है। प्रेमचन्द के पात्रों में स्वतन्त्र विशेषताओं का अंकन न होने के कारण पात्र टाइप हो गये हैं। 'महन्त आशाराम गिरि' (कर्मभूमि) और 'महन्त रामदास' (सेवासदन) एक ही टाइप के व्यक्ति हैं। दोनों विलासप्रिय और धर्म के नाम पर शोषण करने ... हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों में इन महन्तों का चित्रण एक ही वातावरण तथा एक-सी परिस्थितियों में हुआ है। दोनों ही महन्त सम्पत्ति और वैभव से युक्त हैं। किसानों और निर्धनों के सूद से दोनों महन्त 'मोतीचूर के लड्डू' और 'मोहन भोग' उड़ाते हैं। इसी प्रकार प्रेमचन्द ने जहां कहीं प्रोफेसर के चरित्र को अंकित किया है वह भी एक ही प्रकार का है। 'डा० शान्तिकुमार' (कर्मभूमि) और 'प्रोफेसर मेहता' (गोदान) को इस बात की पुष्टि के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। 'ज्ञानसेवक' औद्योगिक वर्ग की शोषक नीति तथा स्वार्थी वृत्ति का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है। 'ज्ञानसेवक' पूंजीपतियों तथा बड़े-बड़े लोगों से मिलकर व्यवसाय करता है, श्रमिकों का शोषण करता है और उद्योगपति बनता है। 'गोदान' के 'मि० खन्ना' का चरित्र भी ... प्रकार का है। व्यावसायिक उन्नति के लिए दोनों पात्र झूठ-फरेब करने तथा ... करने में किंचित् संकोच नहीं करते हैं। यहां एक बात स्पष्ट हो जाती है ... ये सभी पात्र चाहे जमींदार हों, सरकारी अधिकारी, प्रोफेसर, वकील,

किसान-वर्ग के पात्रों का प्रणयन नही हुआ है । कि
को लक्ष्य बनाकर उपन्यास-रचना की है, उस परि
हिस्सा अदा करता है ।

'होरी' (गोदान) मे किसान वर्ग की साम
हुई हैं । प्रेमचन्द ने एक स्थल पर किसान वर्ग
लिखा है - "किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमे स
के पैसे बडी मुश्किल से निकलते है, भाव-ताव में भी
एक-एक पाई छुडाने के लिए वह महाजन की घंटो
विश्वास न हो जाय वह किसी के फुसलाने में नही आ
प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है । अतः उसमे उस
मे देखी जा सकती हैं । अपने स्वार्थ के लिए 'होरी'
खुशामद करता है । 'होरी' मे किसान वर्ग के सामान्य
है । किसान प्राय. रूढिवादी होता है । वह अन्धविश्व
रहता है । सस्कारो को तोड सकने की क्षमता उसमे नह
प्रवृत्तियों को 'होरी' मे देखा जा सकता है—"मगर
मची हुई थी । अगर ठाकुर या बनिये के रुपये होते तो
लेकिन ब्राह्मण के रुपये । उसकी एक पाई दब गयी तो
भगवान् न करे ब्राह्मण का कोप किसी पर गिरे । बस
वाला, घर मे दिया जलाने वाला नही रहता । उसका ध
'होरी' मे प्राचीन मान्यताओ, रूढियो और सस्कारो का
के अन्दर सम्मान और प्रतिष्ठा की भावना भी उसमे है
अपनी दो बीघे जमीन को किसी मूल्य पर जाने नही देन
रक्षा के लिए ही वह 'रायसाहब' को प्रसन्न रखता है
को अभिमानपूर्वक देखता है ।

किसान वर्ग मे 'होरी' से भिन्न पात्रो का सृजन
'बलराज' (प्रेमाश्रम) तथा 'गोबर' (गोदान) किसान
का समर्थन नही करते । 'होरी' के लिए उसकी जमीन,
इसी लिए 'होरी' 'रायसाहब' की चापलूसी करता है ।
से भिन्न है । 'रायसाहब' की खुशामद करने पर 'गोबर
तुम रोज रोज मालिक की खुशामद करने क्यों जाते हो
आकर गालियां सुनाता है, बेगार देनी
भराया जाता है । फिर किसी की

प्रयत्न वेश्या वर्ग की स्थिति को अनावृत करने के लिए हुआ है। 'सुमन' अपने वर्ग की नारियों का प्रतिनिधित्व करती है। 'चन्द्रमुखी' वेश्या-जीवन की परिस्थितियों को उद्घाटित अवश्य करती है किन्तु उसका विशिष्ट अस्तित्व भी है जिसकी अभिव्यक्ति 'देवदास' के सम्पर्क में आने पर हुई है। सभी वेश्याएँ 'चन्द्रमुखी' की भांति होती हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के पात्रो मे मानव के यथार्थ जीवन को अकित करने का प्रयास किया गया है। यथार्थ से हमारा तात्पर्य, मानव के दिन-प्रति-दिन के प्रयोजन मे प्रस्फुटित होने वाली वास्तविकता से है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के पात्र इतने सजीव और वास्तविक हैं कि लगता है जैसे उन पात्रो से हमारा घनिष्ठ सम्पर्क रहा है तथा हमने उनको अपने जीवन मे जाना है। प्रेमचन्द ने पात्रो के निर्माण मे उनके यथार्थ जीवन का गहराई से अनुभव किया है। प्रेमचन्द ने, अपने पात्रो के बीज, समाज से प्राप्त कर, अपने पात्रो का निर्माण किया है। 'रगभूमि' के 'सूरदास' के सम्बन्ध मे प्रेमचन्द ने स्वय सकेत किया है—"रगभूमि का बीजाकुर हमे एक अन्धे भिखारी से मिला जो हमारे गाव मे रहता था।"[२४] समाज से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होने के कारण प्रेमचन्द के पात्र अधिक स्वाभाविक और यथार्थ बन पडे हैं।

पात्रो की वास्तविकता की ओर सकेत करते हुए ई० एम० फार्स्टर ने कहा है कि उपन्यास के पात्र हमारे मित्रो से भी अधिक निश्चित होते है क्योकि उन मित्रो के सम्बन्ध मे जो कुछ कहा जा सकता है वह उन पात्रो मे कह दिया गया होता है। उपन्यासो के पात्र अवास्तविक और अपूर्ण होते हुए भी कुछ भी गुप्त नही रखते जब कि हमारे मित्र ऐसा करते हैं और उन्हे ऐसा करना चाहिये क्योकि ... रिक गोपनीयता जीवन की अनेक शर्तों मे एक है।[२५] यह बात शरतचन्द्र के पात्रों के सम्बन्ध में विशेष रूप से देखी जा सकती है। शरतचन्द्र ने अधिकाश चरित्र प्रत्यक्ष जीवन मे ग्रहण किये हैं तथा अपने सम्पर्क मे आने वाले अनेक व्यक्तियो को अपने उपन्यासो मे पात्र के रूप मे प्रस्तुत किया है। शरतचन्द्र के पात्रो के सम्बन्ध मे राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह ने लिखा है—"प्राय उनके उपन्यासों मे ऐसे पात्रो का समावेश है जो किसी समय जीवित थे तथा जिनके सम्पर्क मे वे आ चुके थे। इसका सबसे प्रमुख दृष्टान्त 'श्रीकात' है। इसके प्रारम्भिक अश मे जिन चरित्रो व घटनाओ की चर्चा है, उनमे से अधिकाश सत्य है और भागलपुर से सम्बद्ध है।"[२६] राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह ने अपने इस लेख मे 'राजलक्ष्मी' (श्रीकात) 'इन्द्र' (श्रीकात) 'सव्यसाची' (— — —) की वास्तविकता की ओर भी सकेत

पात्रो के यथार्थ रूप को चित्रित करते समय प्रेमचन्द की दृष्टि पात्रों के सामाजिक जीवन पर विशेष रूप से रहती है तथा शरतचन्द्र अपने पात्रों के निर्माण में उनकी वैयक्तिक प्रवृत्तियो को तथा उनके मानसिक सगठन पर अधिक ध्यान रखते है। इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने पात्रो मे सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त किया है तथा उनका मनोवैज्ञानिक चित्रण भी किया है। शरतचन्द्र पात्रों की सामाजिक स्थिति को चित्रित करने के साथ-साथ उनके मन की गहराइयो में भी उतरे हैं जिससे शरतचन्द्र के पात्रो मे सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ पात्रो का गहरा मनोवैज्ञानिक चित्रण भी हुआ है।

प्रेमचन्द के पात्रो मे सामाजिक जीवन का वास्तविक स्वरूप अकित हुआ है। प्रेमचन्द के उपन्यासों मे पात्रो के यथार्थ-जीवन से ग्रहण करने का कारण है। प्रेमचन्द के पात्रो के सम्मुख समाज और समाज की समस्याएँ प्रमुख रूप से हैं। 'पद्मसिंह' (सेवासदन), 'सुमन' (सेवासदन), 'होरी' (गोदान), 'रमानाथ' (गबन), तथा 'अमरकांत' (कर्मभूमि) मे समाज की यथार्थता को चित्रित किया गया है। 'निर्मला' (निर्मला) का जीवन समाज की वास्तविकता की करुण कथा है। 'अमरकात' मे समाज और देश की वास्तविकता को अकित किया गया है। अंग्रेजों द्वारा 'मुन्नी' के अपमान की घटना उसके देश-प्रेमी हृदय पर गहरा आघात करती है। वह अनुभव करने लगती है कि यह चोट कभी न भरने वाली है। देश-प्रेम, अछूतोद्धार तथा किसानो पर इजाफा लगान के विरुद्ध 'अमरकात' बहुत बडी शक्ति है। प्रेमचन्द के पात्र यथार्थ होते हुए भी मनोवैज्ञानिक हैं। 'गबन' और 'गोदान' के पात्रो मे प्रेमचन्द की इस दृष्टि को स्पष्टत देखा जा सकता है। 'रमानाथ' के यथार्थ-जीवन को अकित कर उसकी मन.स्थिति का विश्लेषण भी किया गया है। परिवार की आतरिक समस्याओ से ऊब कर वह पलायन करता है। निरुपाय और असहाय स्थिति में कलकत्ता पहुँच कर 'देवीदीन' को अपना बना लेता है तथा अवसर पडने पर उसे धोखा भी देता है। 'रमानाथ' में अपनी यथार्थ स्थिति को छिपाने की प्रमुख प्रवृत्ति है। इसी से पुलिस की ओर से झूठी गवाही देने के लिए भी वह प्रस्तुत हो जाता है। इसी प्रकार 'रायसाहब' (गोदान) अगर स्वार्थी हैं तो 'होरी' कम स्वार्थी नही है। 'होरी' अपने स्वार्थ के कारण ही 'रायसाहब' की खुशामद करता है, उन्हे नजराना देता है। 'होरी' जानता है कि सलामी करने न जाय तो रहे कहा। भगवान् ने जब गुलाम बना दिया है, तो अपना क्या बस है। यह इस सलामी की बरकत है कि द्वार पर मडैया डाल ली और किसी ने कुछ नही कहा। घूरे ने द्वार पर खूंटा गाडा था जिस पर कारिन्दो ने दो रुपये डाड ले लिये थे। तलैया से कितनी मिट्टी हमने खोदी, कारिन्दा ने कुछ नहीं कहा। दूसरा खोदे तो नजर देनी पडे। अपने मतलब के लिए सलामी करने जाता हूँ।

पेट में ग़रीबी नहीं है और न सलामी करने में कोई बड़ा गुण मिलता है।[२७] 'होरी' का चित्रण मनोवैज्ञानिक आधार पर किया गया है किन्तु प्रेमचन्द के सभी पात्रों का चित्रण मनोवैज्ञानिक आधार पर किया गया है ऐसा नहीं कहा जा सकता।

शरतचन्द्र के पात्र मानव की अन्त वृत्तियों की वास्तविकता को अभिव्यक्त करते हैं। इस दृष्टि से शरतचन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रेमचन्द की अपेक्षा अधिक गहराई में हुआ है। 'किरणमयी' (चरित्रहीन), 'सुरेश' (गृहदाह), 'अचला' (गृहदाह), 'सतीश' (चरित्रहीन) आदि पात्रों में इस विशेषता को स्पष्टतः देखा जा सकता है। 'किरणमयी' को अपने पति से कभी प्यार नहीं रहा किन्तु प्यार करने की इच्छा उसमें असीमित रही है। पति के मर जाने के उपरांत 'किरणमयी' ने 'उपेन्द्र' के सम्मुख अपने हृदय को खोल कर रख दिया है। किन्तु 'उपेन्द्र' का हृदय 'किरणमयी' की ओर नहीं झुका है। तिरस्कृत नारी की प्यार करने की उद्दाम लालसा शांत न होकर और भी अधिक प्रज्ज्वलित हुई है। वस्तुतः 'किरणमयी' के प्यार को 'उपेन्द्र' द्वारा अस्वीकृत होने पर 'किरणमयी' में बदला लेने की प्रबल आकांक्षा जाग उठी है। इसी से 'दिवाकर' को अपने साथ भगाकर 'उपेन्द्र' के मुख पर काली स्याही पोतनी चाही है तथा 'उपेन्द्र' से अपने तिरस्कार का बदला ले लेना चाहा है। परन्तु 'किरणमयी' का यह बाहरी रूप है। उसके हृदय में प्यार करने की जो अतृप्ति थी वही उसके चरित्र को नयी दिशा देने का कारण हुई है। इसी प्रकार 'अचला' के हृदय की असंगति को केन्द्र बनाकर उसके चरित्र का निर्माण किया गया है। 'सुरेश', 'सतीश' आदि में भी मनोवैज्ञानिक यथार्थ को अपना कर उनके चरित्र को स्पष्ट किया गया है। शरतचन्द्र के पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण के सामने प्रेमचन्द के 'होरी', 'रायसाहब' अथवा 'रमानाथ' का मनोवैज्ञानिक चित्रण फीका है।

राल्फ फाक्स ने मनुष्य और परिस्थितियों के सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखा है कि मनुष्य परिस्थितियों से बदलता ही नहीं, वह परिस्थितियों को बदल भी देता है और इस प्रक्रिया में वह स्वयं बदल जाता है।[२८] अतः परिस्थितियों से प्रभावित होने वाले यथार्थवादी पात्रों का सृजन आधुनिक उपन्यासों के चरित्र-चित्रण में विशेष महत्त्व रखता है। प्रेमचन्द के यथार्थवादी पात्र, चरित्रांकन के उस उन्मेष तक नहीं जाते जिस ओर राल्फ फाक्स ने संकेत किया है। वस्तुतः प्रेमचन्द यथार्थवादी पात्रों की सृष्टि में इतनी आधुनिक पद्धति से परिचित नहीं थे। इसी से प्रेमचन्द के यथार्थवादी पात्रों में परिस्थितियों का प्रभाव नहीं अंकित हुआ है। 'होरी' में परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य चित्रित किया गया है परन्तु वह भी ऊपरी स्तर पर है। इसके अतिरिक्त 'सुमन' (सेवासदन) 'चक्रधर' (कायाकल्प) तथा 'विनय' (रंगभूमि) आदि पात्रों की जिस वास्तविकता का उद्घाटन किया गया है वह निश्चित सीमाओं के अन्दर ही

है। ये पात्र परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होते।

शरतचन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक यथार्थ परिस्थितियों से प्रेरित शरतचन्द्र के पात्र परिस्थितियों से बदलते ही नहीं, परिस्थितियों को बदल भी और इस प्रक्रिया में वे स्वयं भी बदल जाते हैं। 'सव्यसाची' (पथ के दावे 'सतीश' (चरित्रहीन), 'सुरेश' (गृहदाह), 'कमल' (शेषप्रश्न) आदि पात्र परिस्थि से यथेष्ट प्रभावित हैं। 'कमल' में परिस्थितियों से प्रभावित होकर भी परिस्थि को बदल देने की शक्ति है। 'कमल' का वैवाहिक सम्बन्ध 'शिवनाथ' से मि तीन बार हुआ है। किन्तु 'कमल' ने उन परिस्थितियों को बदल कर सदैव परिस्थितियां उत्पन्न की हैं जिसमें उसके व्यक्तित्व का विकास हुआ है। 'शि के साथ सम्बन्ध-विच्छेद 'कमल' के चरित्र की प्रमुख घटना है। 'कमल' अपने क परिस्थितियों से ऊपर उठाती है। 'शिवनाथ' के साथ सम्बन्ध समाप्त हो ज उपरान्त वह नयी परिस्थितियों को पैदा कर समाज में अपने अस्तित्व की प्र करती है। 'शिवनाथ' से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने के उपरान्त 'कमल' का अत्यन्त आलोचनात्मक रहा है। 'कमल' उन परिस्थितियों का दृढतापूर्वक स करती है। 'अजित' के साथ अपने वैवाहिक सम्बन्ध जो स्थापित करने की घ करके 'कमल' पुनः परिस्थितियों को परिवर्तित कर स्वयं भी बदल जाती है।

मनोवैज्ञानिक यथार्थ की दृष्टि से विचार करते हुए इलाचन्द्र जोश शरतचन्द्र के पात्रों के सम्बन्ध में लिखा है कि—"यथार्थ जीवन के पात्रों और घट के साथ सूक्ष्म एक्स-रे परीक्षण और उसके बाद सूक्ष्म ही चीड़-फाड़ के द्वारा समाज सड़ी हुई भावधाराओं और उन विकृत भावधाराओं से रोगग्रस्त पात्रों के अन्त जड़ जमाये हुए विकारों को दूर करने की कला से न तो वह परिचित ही थे और उतनी गहराई तक जाना उन्हें अभीष्ट ही था।"[१६] यहाँ जोशी जी ने जिस एक परीक्षण का उल्लेख किया है उससे तो फोटोग्राफिक रूप में हड्डियां ही दिखाई पड़े व्यक्ति के स्पंदनशील हृदय की तो खबर होगी ही नहीं। वस्तुतः शरतचन्द्र के क्षय से पीड़ित मरीज नहीं हैं। फ्रायड की संदिग्ध उपलब्धियों को लेकर अवचेतन तिल-तिल खोज करना शरतचन्द्र का उद्देश्य नहीं रहा है जिससे शरतचन्द्र के उपन्य में मनोविज्ञान का फरमायशी व्यक्तित्व नहीं तैयार हुआ है। शरतचन्द्र मानव वृत्तियों को लेकर उनकी वास्तविकता को परिस्थितियों से पुष्ट कर चित्रित कर से कुशल हैं। इसी से शरतचन्द्र के उपन्यासों में जो व्यक्तित्व तैयार हुआ है बद हुए सामाजिक मूल्यों से भी प्रभावित करने वाला है।

प्रेमचन्द के यथार्थवादी पात्र आदर्श की निश्चित सीमाओं से बाहर नहीं पाते। प्रेमचन्द अपने पात्रों के चित्रण में यथार्थवादी दृष्टि तो रखते हैं किन्तु यथार्थ

शिष्टता और आदर्श से जकड़ते रहते हैं। 'सुमन', 'अमरकांत', 'चक्रधर', 'विनय', 'सोफिया' आदि सभी पात्र जीवन की वास्तविकता का उद्घाटन न करके आदर्श की अप्रत्यक्ष भावना मे बधे रहते हैं। 'सुमन' के यथार्थ जीवन को अंकित करते समय वेश्या-जीवन की नग्नता को अभिव्यक्त नहीं किया गया है। वेश्या होकर भी वह निश्चित आदर्शों का निर्वाह करती रहती है। मानव की दुर्बलताओ को स्पष्ट करके अंकित कर देना प्रेमचन्द को अभीष्ट नहीं है। इसी से प्रेमचन्द के यथार्थवादी पात्र आदर्श मे मंडित हैं। प्रेमचन्द, यथार्थ और आदर्श मे, सतुलन और सामञ्जस्य में विश्वास करने वाले उपन्यासकार हैं। जैसा उन्होंने स्वयं कहा है—"यथार्थवादी चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ नग्न रूप मे रख देता है। उसे इससे कुछ मतलब नही कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कि कुचरित्रता का परिणाम अच्छा—उसके चरित्र अपनी कमजोरियां या खूबियां दिखाते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त करते हैं। ससार मे सदैव नेकी का फल नेक और बदी का बद होना, बल्कि इसके विपरीत हुआ करता है, नेक आदमी धक्के खाते हैं, यातनाए सहते हैं, मुसीबतें झेलते हैं, अपमानित होते हैं, उनको नेकी का फल उलटा मिलता है और बुरे आदमी चैन करते है, नामवर होते हैं, यशस्वी बनते हैं। उनको बदी का फल उलटा मिलता है। (प्रकृति का नियम विचित्र है) यथार्थवादी अनुभव की बेड़ियों मे जकड़ा होता है और चूंकि ससार मे बुरे चरित्रों की ही प्रधानता है यहां तक कि उज्ज्वल से उज्ज्वल चरित्र मे भी कुछ-न-कुछ दाग-धब्बे रहते हैं, इसलिए यथार्थवादी हमारी दुर्बलताओ, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है और इस तरह यथार्थवादी हमको निराशावादी बना देता है, मानव-चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है।

इसमे सन्देह नही कि समाज की कुप्रथा की ओर उसका ध्यान दिलाने के लिए यथार्थवाद अत्यन्त उपयुक्त है क्योंकि इसके बिना बहुत सम्भव है कि हम उस बुराई को दिखाने मे अत्युक्ति से काम लें और चित्र को उससे कहीं काला दिखाएं जितना वह वास्तव मे है। लेकिन जब वह दुर्बलताओं का चित्रण करने मे शिष्टता की सीमाओं से आगे बढ़ जाता है तो आपत्तिजनक हो जाता है।

इसलिए वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं जहां आदर्श और यथार्थ का समावेश हो गया हो। उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं।"[1]

शरत्चन्द्र के सब यथार्थवादी पात्र जीवन की वास्तविकता का उद्घाटन करते हुए भी शिष्टता को नहीं छोड़ते। किन्तु प्रेमचन्द की भाँति शरत्चन्द्र अपने पात्रों को आदर्शों की ओर उन्मुख नहीं करते हैं। इसी से शरत्चन्द्र के यथार्थवादी पात्र [illegible] होकर भी

प्रेमचन्द से अधिक यथार्थ हैं। 'सुरेश' (गृहदाह), 'सतीश', 'सावित्री' (चरित्रहीन), 'कमल' (शेषप्रश्न), 'शैलेश्वर' (नवविधान), 'सुरेन्द्र' (बड़ी बहन), 'चन्द्रमुखी' (देवदास) आदि पात्रों में इस प्रवृत्ति को स्पष्टतः देखा जा सकता है। 'कमल' के जीवन की यथार्थ परिस्थितियों को अंकित किया गया है। 'आशुबाबू' से वार्तालाप करने पर 'कमल' अधिक आलोचनात्मक रहती है किन्तु व्यावहारिक जीवन में अपने ही सिद्धान्तों को पूर्ण रूप से नहीं उतार पाती। 'सावित्री' की यथार्थ परिस्थितियों का चित्रण करके भी उसके जीवन को आदर्शों से बाँध दिया गया है। 'रमा' (ग्रामीण समाज) के हृदय की वास्तविकता को अनावृत करके भी उसको सामाजिक मर्यादा की संकुचित परिधि में घुटने दिया गया है। यथार्थ का आग्रह होने पर भी शरतचन्द्र शिष्टता का किनारा नहीं छोड़ते।

आदर्शवादी पात्रों की चर्चा करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है कि "यथार्थवाद यदि हमारी आँखें खोल देता है तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुण है, वहीं इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धान्तों की मूर्तिमात्र हों—जिनमें जीवन न हो। किसी देवता की कामना करना मुश्किल नहीं है, लेकिन उस देवता में प्राण-प्रतिष्ठा करना मुश्किल है।"[31] आदर्श पात्रों में सजीवता उत्पन्न करने के लिए प्रेमचन्द ने यथार्थ की ओर संकेत किया है। किन्तु प्रेमचन्द अपने इस दृष्टिकोण का उपयोग अपने आदर्शवादी पात्रों के निर्माण में नहीं कर सके हैं। परिणामतः 'अमृतराय' (प्रतिज्ञा) और 'प्रेमशंकर' (प्रेमाश्रम) में गतिशीलता नहीं है। वे 'सिद्धान्तों की मूर्तिमात्र' प्रतीत होते हैं। शरतचन्द्र के भी आदर्शवादी पात्र यन्त्रचालित हैं। उनमें सजीवता नहीं है। अपने निश्चित सिद्धान्तों पर अटल रहकर सपाट आदर्श की स्थापना करते हैं। 'विश्वेश्वर' तथा 'रमेश' (ग्रामीण समाज) ऐसे ही पात्र हैं।

'प्रेमशंकर' और 'रमेश' दोनों जीवन के स्पन्दन से रहित पात्र हैं। दोनों पात्रों में आदर्श को सजीव और सप्राण बनाने के लिए यथार्थ का उपयोग नहीं किया गया है। 'प्रेमशंकर' और 'रमेश' दोनों ही त्याग, उदारता तथा परोपकार करने के लिए ही जैसे पैदा हुए हैं। 'प्रेमशंकर' ने किसानों की दयनीय अवस्था से प्रेरित होकर अपने सम्पूर्ण जीवन को किसानों की स्थिति सुधारने के लिए अर्पण कर रखा है तथा 'रमेश' के मन में ग्रामीण समाज की पतनावस्था देखकर सुधार की भावना जागृत हुई है। 'प्रेमशंकर' के समक्ष 'ज्ञानशंकर' ने बाधाएँ उत्पन्न की हैं तथा 'रमेश' के सम्मुख 'वेणी' ने [illegible] काँटे बिछाये हैं। 'प्रेमशंकर' और 'रमेश' [illegible] को [illegible] कर लेते हैं। 'प्रेमशंकर' और 'रमेश' दोनों पात्र सामाजिक रूढ़ि [illegible] के लिए [illegible]। किसी में सामाजिक रूढ़ि को तोड़ने का साहस नहीं हुआ है।

इस प्रकार दोनों पात्रों में जिस आदर्श की अभिव्यक्ति की गई है वह निर्जीव है। 'प्रतिज्ञा' के 'अमृतराय' तथा 'विप्रदास' (विप्रदास) में भी इसी प्रवृत्ति को देखा जा सकता है।

'मानव' की सम्यक् धारणाओं के आधार पर उपन्यासों में मानववादी पात्रों का निर्माण होता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में भावुक मानववादी पात्रों का निर्माण अधिक हुआ है। ऐसे पात्र दूसरों के हित की ही बात सोचते हैं तथा उनका विकास निश्चित सीमाओं के अन्दर होता है। 'सूरदास' में इस प्रवृत्ति को आसानी से देखा जा सकता है। 'सूरदास' मानव-कल्याण की भावना से अभिभूत है। जीवन में लांछित और अपमानित होकर भी वह परोपकार की भावना को नहीं त्यागता। 'भैरो' और 'जगधर' ने 'सुभागी' के सम्बन्ध को लेकर 'सूरदास' को लांछित करना चाहा है किन्तु 'सूरदास' मानवीय आदर्शों से विचलित नहीं होता। अपनी पाच बीघे भूमि को पशुचारण के लिए खाली पड़ी रहने देता है। 'सूरदास' में अविचलित धैर्य और गाभीर्य है। शरतचन्द्र के उपन्यासों में बौद्धिक मानववादी पात्रों का निर्माण हुआ है जिससे शरतचन्द्र के मानववादी पात्र जीवन की वास्तविकता के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। 'श्रीकांत' तथा 'सुरेश' (गृहदाह) में इस प्रवृत्ति को स्पष्टत देखा जा सकता है। 'श्रीकांत' का बौद्धिक स्तर ऊंचा है। किन्तु मानव-कल्याण की असीमित भावना 'श्रीकांत' में विद्यमान है। 'अभया' के पति की खोज करना, पूटू के विवाह के लिए अर्थ की व्यवस्था करना, हैजे से पीडित अपने मित्र की सहायता करना तथा निर्धनों के प्रति अकृत्रिम सहानुभूति 'श्रीकांत' की विशेषताएँ हैं। उसके सभी कार्यों में निष्क्रिय भावुकता नहीं दिखाई पड़ती है। वह बौद्धिक चेतना के उच्च स्तर पर उठकर मानव के कल्याण की कामना करता है। 'सुरेश' में भी इसी प्रकार की बौद्धिक मानवता को देखा जा सकता है। अपने व्यक्तिगत क्षेत्रों में उसकी धारणाएँ असामाजिक हो सकती हैं किन्तु दूसरों के प्रति अहित की कामना 'सुरेश' नहीं करता। अपने मित्र 'महिम' की निर्धनता को देखकर वह भावुक हो सकता है किन्तु दूसरों के मकान में आग लगने के समय अपने प्राणों की चिन्ता न कर उसमें कूद सकता है तथा प्लेग के दिनों दूसरों की सेवा करने के लिए अपने प्राण भी दे सकता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में कामवृत्ति के आधार पर पात्रों का प्रणयन नहीं हुआ है। कहीं-कहीं संकेत अवश्य दिया गया है। 'अमरकान्त' (कर्मभूमि) का 'सकीना' की ओर आकर्षण कामवृत्ति पर ही आधारित है। किन्तु प्रेमचन्द ने 'अमरकान्त' की इस वृत्ति को सदैव [illegible] की चेष्टा की है। 'मुन्नी' की ओर भी उसका आकर्षण [illegible] में कामवृत्ति [illegible] विकसित न करके उसको

कामवृत्ति के दमित रूप को देखा जा सकता है। 'विनय' और 'सोफिया' का प्र दैहिक था। 'सोफिया' के सम्बन्ध में उपन्यासकार ने लिखा है—"वह वासना के पराप्त हो चुकी थी।"[३१] 'सोफिया' में वासना की अतृप्ति की ओर संकेत करते हुए 'विनय' के साथ उसके सम्पर्क को स्थापित नहीं किया गया है तथा कामवृत्ति का रूपान्तरकरण करके अन्त में आत्महत्या का आश्रय लिया गया है। 'सिलिया' (गोदान) में कामवृत्ति का उन्नयन रूप चरितार्थ हुआ है। 'सिलिया' अपनी देह 'मातादीन' के लिए समर्पित कर चुकी है। किन्तु वह कामवृत्ति की संतुष्टि तक ही सीमित नहीं है। 'मातादीन' और 'सिलिया' के वैवाहिक सम्बन्ध को स्थापित करके उसके स्वरूप को बदल दिया गया है। 'झुनिया' और 'गोबर' के संदर्भ में भी कामवृत्ति का प्रकाशन हुआ है किन्तु उपन्यासकार ने उसका विश्लेषण न करके विवाह के सूत्र में बांधकर उसके स्वरूप को परिवर्तित कर दिया है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में कोई ऐसा पात्र नहीं मिलेगा जिसके सम्पूर्ण चरित्र का विकास कामवृत्ति पर आधारित हो। मानव हृदय की इस वृत्ति को अपने पात्रों में रूपायित करना प्रेमचन्द का अभीष्ट न है। इसीसे अवसर पड़ने पर भी पात्रों की कामवृत्ति को रूपांतरित करके मोड़ दिया गया है।

शरतचन्द्र के पात्रों में कामवृत्ति की समस्याएं पूर्णतः अविच्छिन्न एवं असम्पृक्त नहीं हैं। कामवृत्ति को केन्द्र मानकर काम-विकार से उत्पन्न परिस्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण 'गृहदाह' में स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। 'महिम', 'अचला' और 'सुरेश' में कामवृत्ति और विवाह की समस्याओं को अभिव्यक्त किया गया है। 'सुरेश' के लिए 'अचला' का प्यार उसकी सारी कल्पनाओं, वासनाओं और आकांक्षाओं की अन्तिम सीमा थी। 'अचला' के शरीर को पाने के लिए 'सुरेश' ने अपने मित्र को भी धोखा दिया है। वस्तुतः 'सुरेश' के मन में 'अचला' को लेकर कभी प्रेम नहीं हुई है। अपनी कामवृत्ति की संतुष्टि के लिए ही 'सुरेश' ने सदैव संघर्ष की स्थिति पैदा की है तथा 'अचला' के हृदय को 'महिम' की ओर से विमुख करना चाहा। 'अचला' के शरीर को पाकर भी 'सुरेश' संतुष्ट नहीं हुआ। उसका कारण यही है कि 'सुरेश' ने जिस द्वेष-पूर्ण भावना को लेकर अपने अन्तर की पीड़ा प्रकाशित करनी चाही है वही उसकी सबसे बड़ी भूल थी। वह समझता था कि 'अचला' को पाने के उपरान्त उसे तृप्ति और सुख मिलेगा किन्तु जिन परिस्थितियों में उसने 'अचला' को पाया है वही उसके जीवन की प्रवचना है जिसे 'सुरेश' ने भी समझ लिया था। 'सुरेश' में कामवृत्ति की संतुष्टि न होकर, घृणा और क्षोभ में उसका परिवर्तन हुआ है। तभी तो 'सुरेश' सोचता है—"तब सोचा करता था कि कैसे तुम्हें पाऊंगा, अब रात-दिन सोचा करता हूँ कि कैसे तुम्हें छुटकारा दूं। तुम्हारा भार मानो मुझसे अब सहा न

ता।"[33] 'अचला' को पाकर 'सुरेश' की समस्त आकांक्षाएं शून्य हो गई हैं। इसी से 'अचला' को छोड़कर वह भागा है। 'अचला' में कामवृत्ति की अतृप्ति को स्पष्टतः देखा जा सकता है। 'अचला' जिन मनोग्रंथियों से पीड़ित है वे अनिश्चित और अवर्णनीय हैं क्योंकि 'अचला' के हृदय में स्वयं एक गहरी असंगति और भ्रांति है। 'अचला' किसी दिन इस निश्चय पर नहीं पहुँच पाई कि किसे अपनाये और किसे छोड़े। 'महिम' को पाने के लिए 'अचला' अपने सम्पूर्ण मन से आकृष्ट हुई है किन्तु 'सुरेश' को अस्वीकृत भी नहीं कर सकी है। इतना ही नहीं 'अचला' जब 'महिम' के निकट हुई है तो 'महिम' से दूर भागने की चेष्टा की है तथा जब 'सुरेश' के पास हुई है तो 'महिम' के प्रति अवशित आकर्षण रहा है। 'महिम' को 'अचला' ने प्यार किया है, उसके प्रति श्रद्धा का भाव भी रहा है किन्तु 'सुरेश' के प्रति गहरी सहानुभूति और दयाहीन प्रीति से उसका हृदय सदैव आप्लावित रहा है। वस्तुतः 'अचला' की इस विकारी वृत्ति में उसकी काम-भावना की अतृप्ति अभिव्यक्त हुई है जिसे 'महिम' और 'मृणाल' के सम्बन्ध को लेकर भी 'अचला' ने स्पष्ट किया है—"यह न समझ लेना कि तुम जैसे सावधान आदमी भी झूठ को हमेशा दबाये रख सकते हैं। तुम्हारी भी तो कितनी ही गलतियां हो सकती हैं—देखो जरा अपनी टेबिल पर। सिर्फ हम लोगों का ही।"[34] 'महिम' की दृष्टि में 'अचला' और 'सुरेश' की पारस्परिक घनिष्ठता आ चुकी थी। 'अचला' अपनी सफाई के लिए ही 'मृणाल' और 'महिम' के सम्बन्धों में 'महिम' की कमजोरी ढूँढ़ती फिरती है।

'किरणमयी' (चरित्रहीन) में भी कामवृत्ति को केन्द्र बनाकर चरित्र की सृष्टि की गयी है। अपने पति से 'किरणमयी' सतुष्ट नहीं हो सकी है। इस बात को उसने अनेक बार कहा है—"मुझे अपने स्वामी से प्रेम नहीं था।"[35] "मैंने अपने स्वामी को प्यार नहीं किया और प्रेम पाया भी नहीं।"[36] काम-भावना की अतृप्ति को पति के मरने के उपरांत 'किरणमयी' ने 'उपेन्द्र' के सम्मुख अभिव्यक्त किया है। किन्तु 'उपेन्द्र' के अविचलित संयम ने उसे स्वीकार नहीं किया, जिसका आघात 'किरणमयी' के हृदय पर गहराई से हुआ है। अपनी अतृप्ति की सन्तुष्टि के लिए तथा 'उपेन्द्र' का सिर नीचा करने के लिए 'किरणमयी' 'दिवाकर' को लेकर भागी है। इस प्रकार अन्तर-चेतना की भूलभुलैया में 'किरणमयी' स्वयं खो गयी है, दिग्भ्रांत होकर भटकती रही है तथा अन्त तक उसे कोई ठिकाना नहीं मिला है। शरतचन्द्र के अन्य पात्रों 'श्रीकांत', 'सतीश', 'सावित्री' आदि में भी कामवृत्ति की समस्याओं को अंकित किया है। 'सावित्री' में कामवृत्ति को विकसित न करके उसका दमन किया गया है तथा धार्मिक रूढ़ियों के द्वारा उसके चरित्र का रूपान्तरकरण किया गया है। यही बात 'श्रीकांत' और 'सतीश' [illegible] द्र के कामवृत्ति के आधार पर पात्रों की

रचना-प्रक्रिया का अन्तर भी देखा जा सकता है। प्रेमचन्द कामवृत्ति का संकेत मात्र करते है तथा उसे सामाजिकता से पृथक् कर पक्षहीन दृष्टि नही देते। जबकि शरत मे कामवृत्ति को केन्द्र बनाकर पात्रों के मानसिक संघटनों का सूक्ष्म विश्लेषण किया।

क्रियाशीलता की दृष्टि से प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के पात्रों मे अन्तर है। प्रेमचन्द के पात्र, शरतचन्द्र के पात्रो की अपेक्षा अधिक गतिशील हैं। ई० एम० फार्स्टर ने जेन आस्टीन के पात्रो के सम्बन्ध मे कहा है कि उनके पात्रों का कार्यक्रम चतुर्दिक होता है अत यदि उनके उपन्यासों के कथानक, पात्रो की आवश्यकता, और [illegible] चाहे, तो वे पात्र उसके लिए भी उपयुक्त होते हैं।[37] प्रेमचन्द के पात्रों के सम्बन्ध में भी यही बात चरितार्थ होती है। प्रेमचन्द के पात्र भी अपने को जीवन के विस्तृत [illegible] के लिए प्रस्तुत करते है। ऐसी स्थिति मे प्रेमचन्द के पात्र अपनी गतिशीलता के कारण उपन्यास के कथानक के सम्मुख कभी नही झुकते। समाज की नवीन विचारधारा और वर्तमान की छाप रहने के कारण वे अधिक क्रांतिकारी होते हैं तथा जीवन के विविध क्षेत्रों को अपनाकर चलते हैं। 'अमरकान्त' (कर्मभूमि), 'चक्रधर' (कायाकल्प) और 'विनय' (रंगभूमि) सभी इस कारण से अधिक गतिशील है। ये सभी पात्र पारिवारिक और सामाजिक समस्याओं को वहन करते हुए अपनी सजीवता और गतिशीलता को बढ़ाते रहते हैं, जहां रहते है, वहा उनके कार्य व्यापक सामाजिक परिधि को अपना रहते हैं। 'गूदड़' के गांव मे पहुंच कर 'अमरकांत' उसे ही अपना कर्मक्षेत्र बना लेता है। 'चक्रधर' आगरा पहुँच कर हिन्दू-मुसलमान सम्प्रदायों के झगड़ों के बीच नेता बन जाता है। 'विनय' राजस्थान पहुँच कर अपनी क्रियाशीलता को बढ़ाता है। 'बलराज' (प्रेमाश्रम) युग की नवीन विचारधाराओं से अनुप्राणित होने के कारण ही अधिक गतिशील है। वस्तुतः प्रेमचन्द के पात्रों का कर्मक्षेत्र इतना व्यापक है कि सामाजिक जीवन का वे कोना-कोना छू लेते हैं।

शरतचन्द्र के पात्र भी गतिशील हैं किन्तु प्रेमचन्द की तुलना में वे स्थिर प्रतीत होते हैं। यद्यपि शरतचन्द्र के पात्र स्थिर नही हैं। इसका कारण है। शरत् के पात्रो मे चिन्तन और शाश्वत तत्त्वो को अभिव्यक्त किया गया है जिसके कारण प्रेमचन्द के पात्रो की भांति विविध कर्मशीलता नहीं है। प्रेम, निराशा और [illegible] आदि के कारण शरतचन्द्र के पात्रो की परिधि सीमित हो जाती है। अतः शरत् जब विराग अथवा उदासीन व्यक्ति का चित्रण करते हैं तो मनुष्य का [illegible] उद्घाटित हो पाता है। परिणामस्वरूप चरित्र स्थिर प्रतीत होता है। 'श्रीकान्त' को इस बात की पुष्टि के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। 'गंगामाटी' मे 'श्रीकान्त' की सम्पूर्ण कर्मशीलता स्थिर हो जाती है। 'गंगामाटी' मे उसके दिन [illegible] और उदा-सीनता मे व्यतीत होते है, क्योंकि गंगामाटी मे उसको कार्य करने का कोई क्षेत्र नहीं

भिन्नता । इसकी अपेक्षा 'श्रीकांत' जब बर्मा मे होता है तो उसमे अधिक क्रियाशीलता पाई जाती है । 'अभया', 'रोहिणी बाबू', 'टगर वैष्णवी' और 'ठाकुरदादा' का होटल तथा एक बर्मी स्त्री के बीच उसके कर्मक्षेत्र का विस्तार होता है । 'गगामाटी' मे रहते हुए श्रीकांत को सुदूर बर्मा की 'अभया' याद आती है । 'मुरारीपुर' के अखाड़े मे भी उसका मन लगता है क्योंकि यहां वह अपने अनुकूल वातावरण पाता है और उसी मे अपनी क्रियाशीलता को प्रदर्शित करता है । इस प्रकार उसके चरित्र की अनेक प्रवृत्तियां वैष्णवी 'कमललता' के सम्पर्क मे आने पर उद्घाटित होती हैं और उसका व्यक्तित्व नए गुसाई के रूप मे व्यक्त होता है । 'शेषप्रश्न' की 'कमल' का कर्मक्षेत्र 'श्रीकांत' की अपेक्षा अधिक विस्तृत है । वह अपनी सामाजिकता को निरन्तर बढाती है और इस प्रकार अपनी गतिशीलता का परिचय देती है ।

प्रेमचन्द के पात्र बहिर्मुखी हैं तथा शरतचन्द्र के अन्तर्मुखी हैं । प्रेमचन्द के पात्रों का विकास समाज के बीच होता है और शरतचन्द्र के पात्र अपनी स्वतन्त्र विशेषताओं को लेकर विकसित होते हैं । वैयक्तिक समस्याओ मे उलझे रहने के कारण शरतचन्द्र के पात्रो का सम्बन्ध समाज से कम रहता है । प्रेमचन्द पात्रो की सामाजिकता को उभारते हैं, जिससे पात्रो के आन्तरिक पक्ष का चित्रण नही हो सका है । रिक्वर्ड के शब्दो मे उन्हे 'बाह्य मानव'[३८] कहा जा सकता है । 'होरी', 'अमरकांत', 'विनय', पद्म सिंह', 'सुमन' आदि पात्रो मे यह बात देखी जा सकती है । समाज की समस्याओ को दृष्टि मे रखकर प्रेमचन्द ने अपने पात्रो का निर्माण किया है । परिणामत प्रेमचन्द के पात्रो मे हृदय का सघर्ष नही है । प्रेमचन्द के पात्र समाज मे सघर्ष करते हैं । इसलिए चरित्र के अन्तर्मुखी होने का प्रश्न ही नही पैदा होता । 'होरी' मे रूढि और

मे असामाजिक तत्व की अभिव्यक्ति हुई है। 'अमरकांत' अस्पृश्यता को नही मानता। इस बात के लिए वह अपने पिता का भी विरोध करता है। मन्दिर मे अछूतों के प्रवेश का वह प्रबल समर्थक है। 'सिलिया' और 'मातादीन' (गोदान) मे वर्ण की श्रेष्ठता को लेकर असामाजिक तत्व की अभिव्यक्ति की गयी है। 'सिलिया' चमारिन है और 'मातादीन' ब्राह्मण है। दोनों में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर प्रचलित सामाजिक रीति पर गहरी चोट की गयी है। 'विनय' और 'सोफिया' का पारस्परिक आकर्षण भी इसी प्रकार का है। 'सुमन' (सेवासदन) को वेश्या बना कर भी महनीय सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। शरतचन्द्र के पात्र प्रायः समाज मे प्रचलित नैतिक धारणाओं के विरुद्ध चरित्र का प्रकाशन करते हैं जिससे वे असामाजिक हो जाते हैं। 'सतीश' (चरित्रहीन) को समाज की प्रचलित धारणाओ के आधार पर चरित्रहीन ही कहा जाएगा क्योकि वह समाज की मान्यताओ के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा कर नए मूल्यों की स्थापना करता है। 'कमल' (शेषप्रश्न) भी सामाजिक धारणाओ का खण्डन करती है। इसी प्रकार 'श्रीकांत' (श्रीकांत) और 'सुरेश' (गृहदाह) नीति की प्रचलित धारणाओं और धर्म के असंगत रूप का खण्डन कर नवीन सामाजिक मूल्यों की स्थापना करते हैं।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों ही कथाकार कहीं-कहीं पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उनकी आकृति के अंकन के द्वारा स्पष्ट करते हैं। प्रेमचन्द, पात्र की आकृति खींचते समय उसके द्वारा बाह्य प्रभाव को उत्पन्न करते हैं जिससे उसकी भीतरी प्रवृत्ति का उद्घाटन कम हो पाता है। आकृति खींचते समय प्रेमचन्द, पात्र की सामाजिक परिस्थितियों तथा स्थानीय रंगों का विशेष ध्यान रखते हैं—"अमरकान्त सांवले रंग का छोटा-सा दुबला-पतला कुमार था। अवस्था बीस की हो गयी थी पर अभी मसें भी न भीगी थी। चौदह-पन्द्रह साल का किशोर-सा लगता था। उसके मुख पर एक वेदनामय दृढ़ता, जो निराशा से बहुत मिलती-जुलती थी अंकित हो रही थी, मानो संसार में उसका कोई नही है। इसके साथ ही उसकी मुद्रा पर कुछ ऐसी प्रतिभा, कुछ ऐसी मनस्विता थी, कि एक बार उसे देखकर फिर भूल जाना कठिन था।"" शरतचन्द्र मे यह प्रवृत्ति उस समय दिखायी पड़ती है जब वे आकृति को लेकर उसमें गुण-विशेष का सम्बन्ध जोड़ते है। इस प्रकार वे पात्र के स्वरूप को अंकित करते हुए उसकी भीतरी प्रवृत्ति को भी उद्घाटित करने का प्रयत्न करते हैं—"उनका चेहरा एक बार देखकर फिर भूलना मुश्किल था। उमर शायद पच्चीस छब्बीस के लगभग होगी, रंग बिलकुल साफ गोरा, सहसा देखने से अस्वाभाविक-सा मालूम पड़ता है। ऊंचा प्रशस्त ललाट, इसी उमर में बाल उड़ जाने के कारण सामने की ओर बहुत बड़ा

चमक रही हो। नीचे का मोटा होंठ सामने की ओर झुककर मानो अन्तःकरण के कठोर संकल्प को किसी तरह दबाये हुए है। सहसा देखने से ऐसा लगता है कि इस आदमी से बच कर चलना ही अच्छा है।"[४१] एक अन्य उदाहरण में भी इस प्रवृत्ति को स्पष्टत देखा जा सकता है "लड़की सलोनी-सांवली छरहरे बदन की है। कपोल, ठोडी, ललाट—सारे चेहरे का डौल अत्यन्त सुन्दर और सुकुमार है। आंखों की दृष्टि में एक तरह की स्थिर-बुद्धि की आभा है।"[४२]

प्रेमचन्द के उपन्यासों में अनेक गौण पात्रों की सृष्टि अनावश्यक हुई है। "ताहिर अली', 'ठाकुरदीन' (रंगभूमि) 'गुरुसेवक सिंह' (कायाकल्प) आदि ऐसे ही पात्र हैं। इनके चरित्र का विकास भी नहीं हुआ है तथा वे कोई विशेष प्रभाव भी नहीं डालते। 'गोदान' के 'मि० मेहता' की सृष्टि भी निरर्थक हुई है। उपन्यास के अन्तर्गत ऐसे पात्रों का प्रणयन विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं सिद्ध हुआ है। किन्तु अपने गौण और छोटे पात्रों को गरिमामय अंकित करना शरतचन्द्र की प्रमुख प्रवृत्ति है। शरतचन्द्र गौण पात्रों के चित्रण में भी इतने सजग रहते हैं कि वे पात्र अपनी लघुता में भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। शरत्चन्द्र उन पात्रों में कुछ ऐसी विशेषता, कुछ ऐसा गुण उद्भासित करते हैं जिससे उनकी क्षणिकता में भी प्रज्ज्वलित कर देने वाली चिनगारी छिपी रहती है जो सध्या के प्रथम तारे की भांति विशेष आभा और कान्ति से पूर्ण होती है। 'गौहर' और 'इन्द्र' (श्रीकान्त) शरतचन्द्र की इस प्रवृत्ति की पुष्टि के लिए प्रस्तुत किये जा सकते हैं। 'श्रीकान्त' से 'गौहर' की भेंट बहुत वर्षों बाद हुई है किन्तु 'श्रीकान्त' उसके अकृत्रिम मिलन को गरिमा से अंकित करता है—"आमन्त्रण की अकपट आन्तरिकता से मुग्ध हो गया। कितनी मुद्दतों बाद मुलाकात हुई है, लेकिन वह ठीक उस दिन जैसा ही गौहर है—जरा भी नहीं बदला है वैसा ही बचपन है, मित्र-मिलन में वैसा ही अकृत्रिम उल्लास है।"[४३] उसकी गरिमा पर विचार करते हुए 'श्रीकान्त' सोचता है- "सोचता हूँ न जाने कितने शोभाहीन, गंधहीन फूल लोक-चक्षुओं के अंतराल में मिलते है और फिर अपने आप ही मुरझा जाते है। परन्तु विश्व-विधान में यदि उनकी कोई सार्थकता है तो शायद गौहर की साधना व्यर्थ नहीं हुई होगी।"[४४] 'गौहर' के कवि रूप का चित्रण भी भव्यता से पूर्ण है—"आँखों के लिए जो एक साधारण घटना या बहुत मामूली-सी वस्तु है वही कवि की भाषा में 'नयी सृष्टि' हो जाती है। तुम जो देखते हो वह भी सत्य है, और जो मैं नहीं देख सका वह भी सत्य है। इसके लिए तुम दुःखी मत होना गौहर।"[४५] इसी प्रकार 'ब्रह्मो स्त्री' (श्रीकान्त) की सरलता और प्रेम की गहनता को अंकित कर उसके प्रति सहज आकर्षण को उत्पन्न किया है। 'टगर वैष्णवी' (श्रीकान्त) की ममता सहज ही में आकर्षित करने वाली है। 'ब्रजेन्द्र' (पथ के दावेदार) का चरित्र उसकी उद्दण्डता और निर्भयता के कारण ही

अपने सम्पूर्ण जीवन को दूसरों के हित के लिए कार्य करने, अन्याय के विरुद्ध लड़ने तथा सत्य पथ पर चलने में ही बिताया। अपने इन्हीं गुणों के कारण वह व्यक्तियों को सहज ही में आकर्षित कर लेता है। 'सोफिया' तो उसके इन्हीं गुणों के कारण उससे सर्वाधिक प्रभावित हुई है—"तुम उससे दो-चार बातें करके देखो। उससे आध्यात्मिक और दार्शनिक विचार सुनकर चकित हो जाओगे। साधु भी है और दार्शनिक भी। वही हम उसके विचारों को व्यवहार में ला सकते तो निश्चय सांसारिक जीवन सुखमय हो जाता। जाहिल है, बिलकुल निरक्षर, लेकिन उसका एक-एक वाक्य विद्वानों के बड़े-बड़े ग्रंथों पर भारी है।"[४३] इतना ही नहीं 'भैंरो' ने उसकी झोपड़ी में आग लगाई, उसके रुपये चुरा लिये किन्तु 'सूरदास' ने उसका कुछ भी अहित नहीं किया। 'भैंरो' ने उसे कलंकित भी किया किन्तु 'सुभागी' की रक्षा 'भैंरो' के भार से फिर भी करनी चाही है। 'प्रभुसेवक' से वार्तालाप करते समय 'सूरदास' ने इन बातों का उल्लेख करना भी उचित नहीं समझा तभी तो 'प्रभुसेवक' ने उसके सम्बन्ध में कहा है "तब तो वास्तव में कोई महापुरुष है। कुछ पता न चला किसके झोपड़े में आग लगाई थी।"[४४]

'सूरदास' जीवन-संग्राम को एक खिलाड़ी के रूप में देखता है। उसमें खिलाड़ी की भावना पूर्णरूप से विद्यमान है "खिलाड़ी जीतकर हारने वाले खिलाड़ी की हँसी नहीं उड़ाता, उससे गले मिलता है और हाथ जोड़कर कहता है—"भैया अगर हमने खेल में तुमसे कोई अनुचित बात कही हो तो या कोई अनुचित व्यवहार किया हो, तो हमें माफ करना। इस तरह दोनों खिलाड़ी हँसकर अलग होते हैं। खेल खतम होते ही दोनों मित्र बन जाते हैं, उनमें कोई कपट नहीं रहता।"[४५] 'सूरदास' का सम्पूर्ण जीवन इसी सिद्धान्त पर आधारित रहा है। 'राजा महेन्द्रकुमार सिंह' के विरुद्ध आन्दोलन करके भी व्यक्तिगत रूप में उनके विरुद्ध नहीं रहा तथा जीवन में हारकर भी आशा और विश्वास नहीं छोड़ता है—"सभी खिलाड़ी मन लगाकर खेलते हैं, सभी चाहते हैं कि हमारी जीत हो, लेकिन जीत एक ही की होती है, तो क्या उससे हारने वाले हिम्मत हार जाते हैं? वे फिर खेलते हैं, फिर हार जाते हैं, तो फिर खेलते हैं, कभी-न-कभी तो उनकी जीत होती ही है।"[४६] 'सूरदास' ने सत्यनिष्ठा, लगन और सेवा को अपने जीवन का व्रत मान लिया था। अतः उसके चरित्र में शील और सहानुभूति सहज ही में प्रस्फुटित हुए हैं। जीवन के अन्तिम क्षणों में उसे 'जानसेवक' और 'राजा महेन्द्रकुमार सिंह' से कोई शिकायत नहीं रही है।

शरतचन्द्र के अधिकांश नायक मध्यवर्ग और उच्चवर्ग के हैं। निम्नवर्ग के पात्रों का चयन शरतचन्द्र का उद्देश्य नहीं रहा है। अतः निम्नवर्ग के पात्रों का चित्रण भी प्रासंगिक रूप में हुआ है तथा 'सूरदास' अथवा 'होरी' की भाँति उन्हें नायक के

पर नहीं उठाया गया है। 'श्रीकांत', 'सतीश' (चरित्रहीन), 'सुरेश' (गृहदाह), 'देवदास' (देवदास), 'अरुण' (बाम्हन की बेटी), 'वृन्दावन' (पंडित जी), 'चन्द्रनाथ' (चन्द्रनाथ) 'विप्रदास' आदि पात्र अभिजात संस्कारों तथा मध्यवर्गीय संस्कृति और चेतना से परिव्याप्त हैं। 'विप्रदास' 'देवदास' तथा 'रमेश' जमींदार हैं तथा सभी उच्च वर्ग से सम्बन्धित हैं। 'विप्रदास' का परिवार धन-सम्पत्ति से परिपूर्ण है। उसका वंश भी कुलीन है। 'विप्रदास' में अभिजात वर्ग के अनेक संस्कार एक साथ प्रस्फुटित हुए हैं। उसकी आचारनिष्ठा तथा धर्म के प्रति आस्था उसके उच्च वर्ण का परिचायक है। 'रमेश' और 'देवदास' भी उच्च वर्ग के नायक हैं। इनके अतिरिक्त 'सुरेश', 'सतीश' तथा 'श्रीकांत' आदि मध्यवर्ग से सम्बन्धित नायक हैं। शरतचन्द्र के सभी नायक उच्च अथवा मध्यवर्ग से सम्बन्धित हैं। निम्न वर्ग का अच्छा परिचय होने पर भी शरतचन्द्र ने अपने नायकों का चयन निम्नवर्ग से नहीं किया है।

प्रेमचन्द के अधिकांश नायक समाज सुधारक तथा नेता हैं। 'विनय' (रंगभूमि) 'चक्रधर' (कायाकल्प) 'प्रेमशंकर' (प्रेमाश्रम) तथा 'अमरकान्त' (कर्मभूमि) में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये सभी पात्र पारिवारिक जीवन से क्षुब्ध होकर समाज की विभिन्न समस्याओं के बीच शरण लेते हैं जहाँ देश की राजनैतिक परिस्थितियों में पड़कर संघर्ष करते हैं तथा अपने सिद्धान्तों द्वारा समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की चेष्टा करते हैं। ये सभी पात्र अपने को संघर्ष में डालते हैं किन्तु अहिंसा का पल्ला कोई नहीं छोड़ते। वैयक्तिक समस्याएँ इनमें किसी की नहीं हैं। वे समाज के लिए पैदा होते हैं और समाज के लिए अपने सम्पूर्ण जीवन को अर्पित करते हैं।

'अमरकान्त' का पारिवारिक जीवन उसके सुधारवादी सिद्धान्तों के कारण ही विघटित हुआ है। बचपन में 'अमरकान्त' को अपनी माँ का स्नेह नहीं मिला। विमाता ने उस कमी को दूर करना चाहा है किन्तु पिता की व्यावसायिक प्रवृत्ति ने उसके बाल हृदय पर धनलिप्सा के विरुद्ध छाप अंकित की है। 'सुखदा' के भोग-विलास से युक्त जीवन को देखकर 'अमरकान्त' को जीवन के बनावटीपन और दिखावे से विरक्ति हुई है। परिणामस्वरूप पारिवारिक परिधि से बाहर निकल कर 'अमरकान्त' धीरे-धीरे सामाजिक क्षेत्र में बढ़ता है। 'डॉ॰ शान्तिकुमार' के सम्पर्क, तथा 'मुन्नी' की घटना ने उसके चरित्र को नया मोड़ दिया है। 'सकीना' का प्रेम उसकी प्रेरणा का स्रोत रहा है —"जहाँ उपेक्षा या अधिक-से-अधिक शुष्क उदासीनता थी, वहाँ अब एक रमणी का प्रोत्साहन था जो पर्वतों को हिला सकता है। उसकी कल्पना जो बन्धनों में पड़कर संकुचित हो गई थी, प्रेम का आश्रय पाकर और उड़ चली। [illegible] [illegible] कामनाएँ [illegible] उसने कभी न [illegible]। [illegible] अपने प्रेम-[illegible] में उसकी कल्पना को

भी कृपकों के शोषण तथा उनके प्रति अत्याचार के विरुद्ध है। दोनों पात्रों के सम्मुख उनके सत प्रयत्नो मे कठिनाइयां उत्पन्न हुई हैं किंतु कोई भी निराश नही हुआ है—"रमेश उन अनावश्यक व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है जो स्वयं जमींदार होकर भी इतना आर्थिक कारणो से नही जितना नैतिक तथा मानवीय कारणों से आसामियों के शोषण का अनुमोदन नहीं करता।"[१४] 'प्रेमशंकर' और 'रमेश' दोनो ही मानवता की अकृत्रिम भावना से प्रेरित होकर समाज के सुधार के लिए प्रस्तुत हुए हैं। 'रमेश' अर्थ के केन्द्रीयकरण के विरुद्ध है। 'प्रेमशंकर' का भी यही दृष्टिकोण है। इसी विचार-धारा से प्रेरित होकर दोनों पात्र कृपकों की अपरिमित सहायता करते हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासो मे 'मुन्शी तोताराम' (निर्मला) तथा 'रमानाथ' (गबन) न तो नेता हैं और न समाज के सुधारक ही हैं। 'मुन्शी तोताराम' तीन बेटो के पिता होकर भी नयी पत्नी घर मे लाते हैं तथा मानसिक ग्रंथियो से पीड़ित रहते हैं। अपने बड़े पुत्र और अपनी पत्नी के सम्बध को सदेह की दृष्टि से देखते हैं। परिणामत: पुत्र को घर छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ता है तथा पत्नी का जीवन अत्यत कारुणिक हो जाता है। इस प्रकार 'मुन्शी तोताराम' को पारिवारिक समस्याओं की परिधि के बाहर निकलने का अवसर ही नही प्राप्त हुआ। 'रमानाथ' को भी पारिवारिक समस्याओं मे उलझा हुआ अंकित किया गया है। अर्थाभाव, आत्मसम्मान और दिखावे की प्रवृत्ति से पीड़ित होकर पलायन करता है। अपराधी न होकर भी उसे सार्वजनिक जीवन मे घुलने-मिलने का अवसर नही प्राप्त हुआ है। अत: यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द के नायक नेता और सुधारक होने के कारण निश्चित सिद्धान्तो और आदर्शों को अपनाकर चलते हैं। 'प्रेमशंकर', 'चक्रधर', 'विनय' तथा 'अमरकान्त' के विवेचन के द्वारा यह देखा जा चुका है। 'पद्मसिह शर्मा' (सेवासदन) तथा 'अमृतराय' (प्रतिज्ञा) मे भी ये प्रवृत्तियां अंकित हुई हैं। 'पद्मसिह शर्मा' समाज मे वेश्या उन्मूलन के पक्षपाती हैं जिसका समर्थन वे अन्त तक करते हैं तथा 'अमृतराय' विधवा विवाह के समर्थक हैं। इसी से 'पूर्णा' के साथ विवाह करने के पक्ष मे भी 'अमृतराय' रहा है।

यहाँ प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र के नायकों की प्रवृत्तियों व अन्तर को भी देखा जा सकता है। प्रेमचन्द ने निश्चित आदर्शों और सिद्धान्तों के आधार पर नायकों का प्रस्तुत किया है। शरत्चन्द्र के अधिकांश नायक दुर्बल हृदय वाले हैं [illegible] मानव-सुलभ [illegible] अधिक है तथा समाज को [illegible] दोष है। नारी के प्रति प्रेम-भावना उनके चरित्र की [illegible] है। [illegible] 'सुरेश' 'श्रीकान्त', 'शिवनाथ' और [illegible] [illegible] शरत्चन्द्र ने [illegible]

के सूक्ष्म ब्यौरे प्रस्तुत कर उनको नायक-पद पर प्रतिष्ठित किया है।

'सतीश' का प्रणयन उसके निरुद्देश्य जीवन, 'सावित्री' के साथ प्रेम तथा उससे उत्पन्न परिस्थितियों को लेकर हुआ है। 'सतीश' का प्रारम्भिक जीवन अत्यंत अव्यवस्थित रहा है। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह ऐण्ट्रेंस पास नहीं कर सका है। अतः उसे छोड़कर कलकत्ते में डाक्टरी पढ़ना प्रारम्भ किया। परंतु उसमें भी उसका मन नहीं लगता तभी तो वह सावित्री से पूछता है—"अच्छा सावित्री बता सकती हो गधे की तरह लोग परीक्षा कैसे पास करते हैं।[१५] मेस की नौकरानी 'सावित्री' की ओर 'सतीश' आकर्षित हुआ है, "एक बात सुने जाओ सावित्री।"[१६] कहते हुए एक दिन उसने 'सावित्री' की धोती का अंचल भी पकड़ लिया है और एक रात वह मेस में शराब पीकर भी लौटा है—"बड़ी मुश्किल से, बहुत देर में, लड़खड़ाते पैरों से सीढ़ियाँ चढ़कर अपनी कोठरी में आकर लेट रहा। जड़ित, स्खलित, टूटे-फूटे स्वर में वह कहने लगा—सावित्री तुम्हारा ऋण मैं किसी जन्म में न चुका सकूंगा।"[१७] 'सतीश' के इन्हीं कार्यों को पृष्ठभूमि बनाकर उसी को संकेत करते हुए उपन्यास की रचना हुई है किंतु इन प्रवृत्तियों के होते हुए भी 'सतीश' कितना महान् और चरित्रवान् है, उपन्यासकार ने दिखाया है। मेस की नौकरानी को प्यार करने के कारण यदि समाज उसे चरित्रहीन कहता है तो कहा जा सकता है कि समाज व्यक्ति के यथार्थ से पूरी तरह अपरिचित रहता है। वास्तव में प्यार की गहराई और उसकी निष्ठा देखनी चाहिए। 'सतीश' ने 'सावित्री' को अपनी समस्त आकांक्षाओं के साथ प्यार किया है। 'सावित्री' के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री के प्रति उसका आकर्षण नहीं रहा है। 'सरोजनी' को उद्दण्ड युवकों के बीच से बचाया है। 'सरोजनी' ने उसके प्रति अपने आकर्षण को भी ज्ञापित किया है किन्तु 'सतीश' की दृष्टि 'सावित्री' पर ही केन्द्रित रही है। 'सावित्री' जब 'सतीश' से दूर हुई है तो उसका अपरिमित आकर्षण 'सावित्री' के प्रति व्यक्त हुआ है—"उस मुख पर पतिता नारी की तो कोई कालिमा नहीं नजर आती। वह गर्व से दीप्त, बुद्धि से स्थिर, स्नेह से स्निग्ध, परिपक्व यौवन के भार से गम्भीर अथच रस से भरा और लीला-विलास से चपल है—वह मुख, वह हँसी, वह दृष्टि, वह सदय परिहास सबसे बढ़कर उसकी वह सेवा, जिसमें बनावट का लेश नहीं।"[१८]

'सतीश' में मानव की सामान्य दुर्बलताएं अवश्य हैं किन्तु वह हीन चरित्र वाला व्यक्ति नहीं है। 'किरणमयी' उसके गुरुतर व्यक्तित्व को समझ गई थी। इसी से उसने 'सतीश' से अपने को उसकी भाभी बनने की अपेक्षा बहिन बनने का आग्रह किया था और 'सरोजनी' उसके गुण को सुनकर ही उसकी ओर आकर्षित हुई थी। 'सतीश' के सम्बन्ध में 'उपेन्द्र' की बात भी कितनी सटीक है, इसे देखा जा सकता है—

"जो आदमी सतीश को पहचान सकेगा, उसके सब गुण और दोष समझकर [illegible] अधिकार कर सकेगा, वह एक बहुत बड़ी चीज पावेगा।"६६ 'उपेन्द्र' का 'सतीश' [illegible] प्रति यह दृष्टिकोण 'सतीश' के चरित्र का निष्कर्ष कहा जा सकता है। 'देवी [illegible] के 'जीवानन्द' के चरित्रांकन में उच्छृङ्खल वृत्तियों का समावेश हुआ है। शरतचन्द्र [illegible] अन्य नायकों—'सतीश' या 'सुरेश'—की भांति उसके चरित्र का क्रमिक विकास [illegible] हुआ है। उसका प्रारम्भिक जीवन शराबी और कामुक चित्रित हुआ है किन्तु 'षोडशी' के संस्पर्श से उसमें परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार 'जीवानन्द' के चरित्र [illegible] घात-प्रतिघात का अभाव है। 'षोडशी' उसकी परित्यक्ता पत्नी 'अलका' ही है जिसे पुनः प्राप्त करने का नाटक किया गया है।

शरतचन्द्र के उपन्यासों में मनुष्य की निर्बलताओं को प्रकाशित करने वाले नायकों में 'देवदास' सबसे पतित और आचरणहीन कहा जा सकता है। 'सतीश', 'सुरेश' अथवा 'श्रीकांत' की भांति परिस्थितियों को अपने अनुकूल कर लेने की शक्ति 'देवदास' में नहीं है। 'गोविन्द पण्डित' की पाठशाला में लड़कपन से ही 'पार्वती' के साथ उसका स्नेह और प्यार हो गया था। 'पार्वती' के प्रति उसका प्यार अवस्था के साथ-साथ परिपुष्ट हुआ है। किन्तु कुलीनता और अकुलीनता की भावना के कारण 'पार्वती' का विवाह 'देवदास' के साथ न हो सका। 'देवदास' में सामाजिक बन्धनों को तोड़ सकने की शक्ति नहीं है। अपने मां-बाप के सामने वह अपने व्यक्तित्व को प्रभावशाली नहीं बना सका है। 'पार्वती' का सम्बन्ध दूसरी जगह हो जाने पर वह अपने निर्णय पर पछताया भी है।

'पार्वती' से निराश हो जाने पर 'देवदास' अपने हृदय पर संयम नहीं रख सका है। 'पार्वती' के विवाह के उपरान्त 'देवदास' दो-तीन दिन तक यों ही इधर-उधर [illegible] घूमता रहा—बहुत कुछ पागलों के समान।६७ चुन्नी का साथ होने पर 'चन्द्रमुखी' के सम्पर्क में आता है। किन्तु उसके उन्मथित हृदय को वहां भी शांति नहीं मिली है। 'चन्द्रमुखी' के यहां से ही वह शराब पीना भी प्रारम्भ कर देता है। 'चन्द्रमुखी' उससे प्रेम करने लगती है। 'देवदास' ने 'चन्द्रमुखी' को [illegible] किन्तु उसे प्रेम नहीं कर सका है। 'शराब' पीकर भी उसे 'पार्वती' का स्मरण [illegible] है—[illegible] और [illegible] करने लगा—'चन्द्रमुखी' [illegible] [illegible] करती है। लेकिन मैं नहीं चाहता, [illegible] और [illegible] मुंह पर [illegible] और चूना मलते हैं, चोरी करते हैं, [illegible] [illegible] करते हैं, प्रेम करते हैं, प्रेम भी न [illegible] [illegible] रोती हैं—ऐसा मालूम होता है कि जैसे [illegible] 'चन्द्रमुखी' [illegible] [illegible] है और मैं देखता हूं—लेकिन [illegible]

मानो सब कुछ हो गया। वह यहा चली गई और मैं किस रास्ते पर चल पड़ा। अब एक समस्त जीवन व्यापी बहुत बड़ा अभिनय आरम्भ हुआ है, एक भारी शराबी और यह एक—अच्छा होने दो—यही होने दो। बुरा क्या है। आशा नहीं, भरोसा नहीं, सुख भी नही और साथ भी नही। वाह! बहुत अच्छा।'"[71] देवदास की यह निराशा अंग्रेजी के कवि शैली से बहुत कुछ मिलती-जुलती है जो उसकी कविता—'स्टैन्ज़ाज रिटेन इन डिजेक्शन नियर नेपेल्स' मे अभिव्यक्त हुई है।[72] कहा जाता है कि शैली की निराशा का कारण भी एक स्त्री की ही मृत्यु थी जो उसे बहुत प्यार करती थी। 'देवदास' के हृदय मे भीषण अशान्ति थी। 'पार्वती' के अभाव मे उसने अपने जीवन को भावहीन बना डाला। पूर्व स्मृतियों को भुला देने के लिए 'देवदास' ने शराब पी है। वस्तुत उसके इन सब कार्यों मे उसके हृदय की दुर्बलता ही अभिव्यक्त हुई है।

इलाचन्द्र जोशी ने शरतचन्द्र के नायकों के सम्बध मे विचार करते हुए लिखा है कि—'उनके इस युग के नायक अधिकांशत या तो शराबी, चरित्रहीन और दुर्बलप्राण हैं या आवारागर्दी का व्रत लिये हुए हैं।'"[73] केवल देवदास' को लेकर शरतचन्द्र के नायकों पर यह आक्षेप समुचित नहीं प्रतीत होता। वस्तुत शरतचन्द्र के नायक प्रेम के परिपूर्ण स्वरूप हैं। प्रेम को लेकर शरतचन्द्र के नायकों का लक्ष्य किसी एक स्त्री पर होता है। कामुकता और वासना होने पर भी वे जिस-तिस के आगे नही गिरते। श्रीकांत अपने जीवन मे कई नारियो के ससपर्श मे आया है किंतु 'राजलक्ष्मी' के अतिरिक्त वह और किसी के समक्ष अपने हृदय की कमजोरी को प्रकट नही करता। 'राजलक्ष्मी' से भी केवल एक बार कहता है। 'सतीश' का लक्ष्य 'सावित्री' ही थी। 'सावित्री' को छोड़कर वह 'सरोजनी' की ओर किंचित् भी आकर्षित नही हुआ है। 'सुरेश' का लक्ष्य केवल 'अचला' ही थी। 'देवदास' का सम्पर्क 'चन्द्रमुखी' के साथ घनिष्ठ होने पर भी उसका ध्यान 'पार्वती' की ओर से फिर नहीं सका है। 'सतीश' ने केवल एक बार शराब पी है। 'श्रीकान्त' शराबी नही है। 'सुरेश' ने कभी शराब का स्पर्श भी नही किया है। 'जीवानन्द चौधरी' अवश्य शराबी है किंतु 'षोडशी' के सम्पर्क से उसने भी शराब पीना छोड़ दिया है। श्रीकान्त की देश-विदेश यात्रा काम-वासना की तृप्ति के लिए नही है। वह तो उसकी प्रवृत्ति है जो 'इन्द्र' के सम्पर्क से लड़कपन से ही विकसित हुई थी। अत उसके साहसिक जीवन को आवारागर्द कहा जाय तो निश्चित ही योरुप का प्रत्येक व्यक्ति बहुत [illegible] जातीय विशेषता है।

सयम के अभाव मे उन्हें कामी, शराबी और आवारागर्द भी नही कहा जा सकता
शरतचन्द्र मानव-हृदय के कुशल चित्रकार हैं। मानव-मन की असाधारण कमजोरियों
को, मन की चंचलता को तथा जीवन की वास्तविकता को अपने पात्रो मे प्रदर्शित
करना ही उनका उद्देश्य रहा है। अतः शरतचन्द्र के इन पात्रो को लेकर यह कह
कि 'ऐसा नही हो सकता' कठिन है बल्कि कहना पडता कि—'ऐसा भी होता है।'
उनके नायक सहृदय हैं, भावुक हैं, यह मान लेने में किसी को कठिनाई नही होती।

शरतचन्द्र के शिष्ट और संयत नायक भी प्रेमचन्द के 'अमरकांत' तथा
'विनय' से भिन्न हैं। 'महिम' (गृहदाह) तथा 'अजित' (शेषप्रश्न) शरतचन्द्र के ऐसे
पात्र हैं जिनके चरित्र मानव की उदात्त आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करते हैं।
'महिम' में यह भावना अधिक पुष्ट होकर विकसित हुई है। 'मृणाल' के साथ उसका
सम्बंध प्रेम की भावनाओं पर आधारित प्रतीत होता है किंतु 'महिम' के गाम्भीर्य ने
उसके सम्बंध को गौरव से पूर्ण अंकित किया है। वस्तुतः 'महिम' मे असाधारण
सहनशीलता है किंतु उसके साथ ही साथ उसके अन्तर में दूसरो के प्रति गहरी उपेक्षा
का भाव भी है, जिसके कारण उसके चरित्र मे शुष्कता परिलक्षित होती है। 'महिम'
की इन्ही प्रवृत्तियों के कारण उसके परम मित्र 'सुरेश' और पत्नी 'अचला' का जीवन
गहरे शोक में परिणत हुआ है। सिद्धान्तो के प्रति जो अडिग आस्था 'महिम' मे
परिलक्षित होती है वह जीवन के व्यावहारिक पक्ष के लिए बहुत उपयुक्त नही कही
जा सकती। 'अजित' के चरित्र मे 'महिम' की भांति शुष्कता और कठोरता नही है।
वह अपेक्षाकृत भावुक है। 'मनोरमा' और 'शिवनाथ' के पारस्परिक सम्बंधों को
जानकर उसने 'मनोरमा' से अपने को अलग कर लिया है। 'कमल' के प्रति उसका
आकर्षण धीरे-धीरे बढता गया है। 'कमल' के अतीत जीवन को सुनकर उसके मन
में एक बार 'कमल' के प्रति विरक्ति हुई है किंतु वह भावना स्थायी नही रही है।
वस्तुत. 'कमल' के लिए 'अजित' के मन में स्वय निर्बलता है जिसे उसने स्वयं स्वीकार
किया है—"कमल, अपने को शक्तिमान समझकर मैंने कभी तुम्हारे आगे घमण्ड नहीं
किया। वास्तव मे भीतर-भीतर मैं जितना कमजोर हूँ उतना ही असहाय भी,
किसी काम को जोर से कर डालने की ताकत ही नही मुझ मे।" 'अजित' की
इस कमजोरी को कमल भांप चुकी थी। किंतु 'अजित' का व्यवहार अत्यंत शिष्ट
रहा है।

नायकों की कतिपय प्रवृत्तियों के आधार पर सहज ही कहा जा सकता है कि
प्रेमचन्द के नायक जीवन के प्रति उत्साह, आशा और विश्वास की उद्घोषणा करते
हैं। जीवन की विभीषिका मे प्रेमचन्द के नायकों ने अपने को तपाया है, साधना की
है और समाज में नये विचारों के प्रेरणा-केन्द्र बने हैं। अतः प्रेमचन्द के पात्रों के

व्यक्तित्व पूर्ण रूप से अंकित हुआ है। '[illegible]' (कर्मभूमि), '[illegible]' [illegible]), 'शेखर' (गोदान) 'सूरदास' आदि ऐसे ही चरित्र-नायक हैं। ये सभी जीवन को स्पष्ट बनाने की ओर अग्रसर होते हैं तथा संघर्ष से डरते नहीं वरन् संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं। शरत्चन्द्र के अधिकांश नायक निराशा, उदासीनता, घृणा और अवसाद उत्पन्न करते हैं। 'देवदास' (देवदास) तथा 'सुरेश' (गृहदाह) आत्म-घातक मृत्यु में यह बात स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। 'श्रीकांत' [illegible]ीश' आदि के चरित्र भी नैराश्य-मूलक हैं। शरत्चन्द्र के ये नायक प्रतीकात्मक [illegible]त से दोलित भावनापूर्ण तथा रूमानी हैं। शरत्चन्द्र के नायक जीवन की बाह्य [illegible]नाइयों की अपेक्षा व्यक्तिगत समस्याओं से पीड़ित और आहत दिखाई पड़ते हैं, [illegible]नु इन नायकों का चरित्र इतना आकर्षक है कि अनेक दुर्बलताओं के होते हुए भी सहानुभूति और संवेदना प्राप्त करते हैं तथा पाठक के हृदय पर अपने व्यक्तित्व की [illegible]री छाप छोड़ते हैं।

शरत्चन्द्र के नायकों में 'सव्यसाची' (पथ के दावेदार) ठोस और कर्मठ पात्र [illegible]। 'सव्यसाची' के जीवन का लक्ष्य क्रांति है किंतु समाज में स्थायी शांति और सुख [illegible]लिए ही 'सव्यसाची' क्रांति के मार्ग को अपनाता है। अपनी विचारधारा को [illegible]ारती' से स्पष्ट करते हुए 'सव्यसाची' ने कहा है—"क्रांति के मानी ही खून-खराबी [illegible]र मार-काट नहीं भारती, क्रांति के मानी हैं अत्यंत शीघ्रता से आमूल परिवर्तन, [illegible]कारण महान् परिवर्तन।"[४४] अपने देश को पराधीनता से मुक्त कराने के लिए ही [illegible]सने क्रांति का मार्ग अपनाया है। क्रांतिकारी के अनुकूल गुणों का भी 'सव्यसाची' में [illegible]माव नहीं है। उसका बंदूक और पिस्तौल का निशाना अचूक है। पद्मा नदी को [illegible]र कर पार करना उसके लिए अत्यंत साधारण काम है। पहाड़ और जंगलों के बीच

की यात्रा करते समय हो गया था, तभी से 'सुमित्रा' को वह बर्मा से [illegible]
'सुमित्रा' उसे चाहने लगी है। किंतु 'सव्यसाची' कठोर न होते हुए भी [illegible]
परिस्थितियों से बाध्य है। 'सव्यसाची' जिस साधना मे लगा है उसे वह [illegible]
प्रेम की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् समझता है। इसी से 'सुमित्रा' के प्रेम को [illegible]
उपेक्षित रखा है। हृदय के आवेग को वह मूल्यवान् समझता है किंतु वह [illegible]
चेतना को परिव्याप्त कर ले, 'सव्यसाची' स्वीकार नही करता। इसी से 'भारती' [illegible]
बार-बार अनुरोध करने पर भी वह अपने मार्ग को नही बदल सका है। [illegible]
हृदयवान है, 'महिम' (गृहदाह) की तरह शुष्क और कठोर नही। 'भारती' के [illegible]
अपूर्व का प्रेम-सूत्र जुड़ा है। वह इसे जानता था तभी तो 'समिति' के समस्त [illegible]
की राय के विरुद्ध उसने 'अपूर्व' को समिति का भेद देने के भीषण अपराध से [illegible]
मुक्त कर दिया।

अभिजात्य संस्कारो से पोषित होकर भी प्रेमचन्द के उपन्यासों के [illegible]
नायक प्रखर बौद्धिक चेतना से अछूते हैं। 'विनय' (रंगभूमि) जैसे सुशिक्षित [illegible]
सम्पन्न नायक में भी यह बात देखी जा सकती है। शरतचन्द्र के नायकों का [illegible]
धरातल और उनकी बौद्धिक चेतना उच्चकोटि की है। 'श्रीकान्त', 'सतीश', 'सुरेश',
'महिम' को इस बात के समर्थन के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है।

प्रेमचन्द के पारिवारिक समस्या-प्रधान उपन्यासों के नायक [illegible]
पारिवारिक जीवन को प्रतिबिम्बित करते हैं। 'मुन्शी तोताराम' (निर्मला) और
'रमानाथ' (गबन) पारिवारिक परिधि मे केन्द्रित रहने वाले नायक हैं। [illegible]
अन्दर इन पात्रो का अस्तित्व गौण है। 'मुन्शी तोताराम' में असाधारण [illegible]
निर्ममता है। उनकी इन्ही प्रवृत्तियो के कारण परिवार के अन्दर कलह और [illegible]
रहती है। 'मुन्शी तोताराम' की ही भांति 'अतुल' (अरक्षणीया) का चरित्र [illegible]
और कठोरता पर आधारित है। इसी से 'ज्ञानदा' के साथ विवाह करने के लिए
'अतुल' अस्वीकार कर देता है, किंतु 'ज्ञानदा' की मां की मृत्यु के उपरान्त उसे [illegible]
अतीत जीवन की याद आती है जिससे वह पुनः प्रभावित होता है। [illegible]
'ज्ञानदा' को अपनाकर वह अपनी सहृदयता का परिचय भी देता है।

शरतचन्द्र के पारिवारिक समस्या प्रधान उपन्यासों के [illegible]
[illegible] में उभरते हुए भावुक और प्रायः [illegible] प्रवृत्ति के हैं। [illegible]
[illegible]) 'नरेन्द्र' (दत्ता) 'अरुण' (बाम्हन की बेटी) [illegible]
(दरिद्रीता) 'काशीनाथ' (काशीनाथ) तथा [illegible]
यह प्रवृत्ति [illegible] देखी जा सकती है। इन नायकों में [illegible]
[illegible] का भी अभाव है। किन्तु [illegible]

ा में पाया जाता है। 'बैकुण्ठ के दानपत्र' का 'गोकुल' अपनी सरल प्रकृति के कारण विशेष प्रभावशाली है। पिता की सम्पूर्ण सम्पत्ति का स्वामी होकर भी अपने ामातृ भाई को बहुत स्नेह करता है। उसका स्नेह अन्त मे अपने भाई 'विनोद' को पनाने मे समर्थ होता है। 'गोकुल' स्वयं अधिक नही पढ सका है किन्तु उसकी यह ादिक कामना है कि उसका भाई विनोद परीक्षा पर परीक्षा पास करे। 'गोकुल' के चरित्र की यह प्रमुख विशेषता है। 'नरेन्द्र' (विजया) मे नारी के प्रेम को लेकर अन्य-मनस्कता है। शिक्षित होने पर 'नरेन्द्र' मे जो उदासीनता है वह अस्वाभाविक प्रतीत होती है। 'नीलांबर' (विराजबहू) मे पारिवारिक उत्तरदायित्व के प्रति गहरी उदासीनता है। परिणामस्वरूप वह अपनी प्रिय पत्नी 'विराज' की करुणा और पतन का कारण भी बनता है। 'नरेन्द्र' ने 'विजया' को अपनाकर उसके जीवन को व्यर्थ होने से बचा लिया था किन्तु नीलाबर का पारिवारिक जीवन विशृंखलित हो गया है।

असद् प्रवृत्तियो के आधार पर जिन पात्रो का प्रणयन प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासो मे हुआ है उनमे 'ज्ञानशकर' (प्रेमाश्रम) और 'वेणी' (ग्रामीण समाज) प्रमुख हैं। इन दोनो पात्रो की प्रवृत्तिया प्राय एक-सी हैं। 'ज्ञानशकर' और 'वेणी' दोनों ही जमीदार हैं जिनमे शोषण करने तथा अपने स्वार्थ के लिए नीच से नीच कर्म करने की प्रवृत्तियो को स्पष्टत देखा जा सकता है। 'ज्ञानशकर' और 'वेणी' अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए कपट-झूठ और अनाचार करने मे किंचित् सकोच नही करते। दोनो पात्रो मे दम्भ, द्वेष, अनीति, अत्याचार तथा पाखण्ड साकार हो उठे हैं। 'ज्ञानशकर' किसानो के प्रति अत्यत निर्दय है। किसानो के ऊपर अत्याचार करने मे उसे कोई हिचक नही होती है। अपने भाई के प्रति उसका व्यवहार अत्यत कपटतापूर्ण रहा है। अपने ससुर 'राय कमलानन्द' को विष देने मे भी वह नही हिचका है। 'गायत्री' को अपने चगुल मे फसाने के लिए अनेक धूर्तताओ का आश्रय लेता है। इन सब कार्यो मे 'ज्ञानशकर' की नीचता 'वेणी' से अधिक पाई जाती है। 'वेणी' ने केवल 'रमेश' के मार्ग मे ही बाधाएँ पैदा की हैं। अत उसकी नीचता के उद्घाटन के अवसर कम हुए हैं। 'वेणी' ने अपनी नीच प्रवृत्तियो के परिमार्जन का भी सकेत किया है किन्तु 'ज्ञानशकर' नीचता की जिस सीमा पर पहुँच चुका था उसमे आत्महत्या के अतिरिक्त उसके लिए अन्य कोई मार्ग ही नही रह गया था। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने इन पात्रो की सृष्टि के द्वारा मानव की खल प्रवृत्तियो का चित्रण करके यह स्पष्ट किया है कि [illegible] त्तियों को अपनाकर समाज मे उसकी स्थिति कितनी दयनीय हो जाती [illegible] किस प्रकार असफल होता है।

[illegible] नायको मे नैतिक-अनैतिक की द्विधाग्रस्तता है। [illegible] ों के विरोधी होने पर भी सस्कारो

उथल-पुथल से प्रेमचन्द के नारी-पात्र केवल प्रभावित ही नहीं है वरन् संघर्ष में नेतृत्व ग्रहण करने की क्षमता भी रखते हैं। इस दृष्टि से 'सुखदा' को 'कर्मभूमि' का ही नहीं वरन् प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ नारी-चरित्र कहा जाये तो अनुचित न होगा। 'सुखदा' में प्रेमचन्द का नारी-जीवन से सम्बन्धित दृष्टिकोण संतुलित होकर उपस्थित हुआ है। उसमें न तो 'धनिया' (गोदान) का कठोर यथार्थ है और न 'श्रद्धा' (प्रेमाश्रम) का भावहीन आदर्श। 'सुखदा' गार्हस्थिक जीवन में अपनी दक्षता को सिद्ध कर राजनैतिक धरातल पर भी सफल सिद्ध हुई है। 'सुखदा' सामाजिक क्रांति में पुरुषों के बराबर नेतृत्व ग्रहण कर अपनी शक्ति का परिचय देती है। 'सुखदा' के नेतृत्व करने में दृढ़ता भी है। इसी से अपने निश्चय से वह कभी पीछे नहीं हटती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वह निराश नहीं होती। नगर में हड़ताल के समय जनता का पूरा सहयोग न मिलने पर वह प्रत्येक के द्वार पर जाने के लिए प्रस्तुत होती है तथा प्रत्येक व्यक्ति के पैरों में पड़ने को भी कहती है किंतु हड़ताल को स्थगित करने के लिए प्रस्तुत नहीं होती। अपनी दृढ़ता के कारण 'सुखदा' को अपने कार्य में सफलता प्राप्त हुई है—"*वह तो विजय की देवी थी। पग-पग पर* उसके नाम की जय-जयकार होती थी। कहीं फूलों की वर्षा होती थी, कहीं मेवों की, कहीं रुपयों की।"[७६] इतना ही नहीं नगर के निर्धन व्यक्तियों का पक्ष लेकर जेल जाने में भी वह नहीं हिचकती क्योंकि उसका विचार है कि "जिस समाज का आधार ही अन्याय पर हो उसकी सरकार के पास दमन के सिवा और क्या दवा हो सकती है? लेकिन इससे कोई यह न समझे कि यह आन्दोलन दब जायगा। उसी तरह जैसे कोई गेंद टक्कर खाकर और जोर से उछलती है, जितने ही जोर की टक्कर होगी, उतने ही जोर की प्रतिक्रिया होगी।"[८०] 'सुखदा' में राजनैतिक चेतना, तत्कालीन नारी-समाज के जागरण का द्योतक है। पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने वाली जिस नारी का आह्वान गांधी ने किया था उसे कथा-साहित्य के माध्यम से प्रेमचन्द ने प्रस्तुत किया है।

'सुखदा' का पारिवारिक जीवन सुखी नहीं कहा जा सकता। प्रारम्भ में 'सुखदा' विलास वृत्ति को महत्त्व देने के कारण अपने पति के प्रति उपेक्षा की दृष्टि रखती है। उसमें आत्मसम्मान की भावना भी इतनी प्रबल रूप में है कि अपने पति के सम्मुख भी कभी झुकने के लिए प्रस्तुत नहीं होती "भोग-विलास को वह जीवन की सबसे मूल्यवान् वस्तु समझती थी और उसे हृदय से लगाये रहना चाहती थी।"[८१] 'सुखदा' की इन्हीं प्रवृ

उसके प्रति उदासीन रहता है।

का कारण उसके अभिजात्य

स्वतन्त्रता में हुआ है।

इसी कारण नारी-जाति की सस्कारगत अबौद्धिक सहनशीलता उसमे नहीं है। इस प्रकार 'सुखदा' उस पुराने सस्कार को तोड़ती हुई प्रतीत होती है जिसके कारण नारी अपने को पुरुष से हीन समझती है। शरतचन्द्र की 'कमल' (शेषप्रश्न) अथवा 'किरणमयी' (चरित्रहीन) की भाँति बौद्धिक चेतना से दीप्त न होने पर भी उसमे बौद्धिक सूझ-बूझ का अभाव नही है। वह पारिवारिक जीवन के विघटन को संभालने का प्रयास करती है। पति के घर छोड़ देने पर 'सुखदा' ने पति का साथ देकर पति के स्वाभिमान की रक्षा की है तथा गार्हस्थिक जीवन मे अपनी दक्षता को प्रमाणित किया है।

'सुखदा' के अतिरिक्त भी प्रेमचन्द के कतिपय नारी-पात्र राजनैतिक भावना से परिव्याप्त अंकित हुए हैं। इस प्रकार के नारी-पात्र पारिवारिक परिधि को तोड़कर विस्तृत सामाजिक क्षेत्र मे प्रवेश करते हैं। इस दृष्टि से प्रेमचन्द के उपन्यासो मे ग्रामीण नारियां भी राजनैतिक हलचलो से उद्वेलित अंकित हुई हैं। 'सलोनी काकी' और 'मुन्नी' (कर्मभूमि) राजनैतिक प्रभावों से युक्त चित्रित हुई हैं। 'सलोनी काकी' और 'मुन्नी' गाव मे 'अमरकांत' द्वारा चलाये गये इजाफा लगान के विरुद्ध आन्दोलन मे 'अमरकांत' का पूरी तरह सहयोग करती हैं। 'मुन्नी' तो आन्दोलन मे भाग लेने के कारण जेल भी जाती है।

शरतचन्द्र के उपन्यास-साहित्य मे 'सुखदा' जैसे राजनैतिक चेतना से परिपूर्ण नारी-पात्रों की अवतारणा नहीं हुई है। शरतचन्द्र ने नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार तो किया है किन्तु उसे परिवार से बाहर निकाल कर विस्तृत सामाजिक धरातल पर नही प्रस्तुत किया है। परिणामस्वरूप शरतचन्द्र के नारी-पात्र राजनीतिक चेतना से अपरिचित हैं। पारिवारिक और सीमित सामाजिक परिधि के अन्दर ही उनके चरित्र का विकास हुआ है। 'पथ के दावेदार' की 'सुमित्रा' और 'भारती' अवश्य राजनैतिक हलचलो से परिचित हैं किन्तु 'सुखदा' की तुलना मे उनकी क्रियाशीलता साधारण ज्ञात होती है।

'सुमित्रा' वर्मा में भारतीय क्रांतिकारियो के सगठन मे सहयोग करती है तथा 'अधिकार समिति' के नेतृत्व को भी उसने ग्रहण किया है। किन्तु सम्पूर्ण उपन्यास में 'अधिकार समिति' के सिद्धान्तो की चर्चा ही अधिक हुई है; उन सिद्धान्तों को व्यव-हार मे परिणत नही किया जा सका है। परिणामस्वरूप 'सुमित्रा' का चरित्र भी राज-नैतिक दृष्टि से अधूरा और अस्पष्ट रहा है। 'सुमित्रा' के राजनैतिक जीवन से सम्ब-न्धित कुछ गुणों का पता अवश्य चलता है। 'अपूर्व' के विश्वासघात करने पर 'समिति' के सदस्यो ने उसे मृत्यु-दण्ड देने का निर्णय किया किन्तु 'सव्यसाची' ने इस निर्णय को ... 'सव्यसाची' के इस कार्य का विरोध करकर 'अपूर्व' को क्षमा कर दिया है।

'समिति' के सभी सदस्यों ने किया है। 'सुमित्रा' ने भी 'सव्यसाची' के निर्णय का तीव्रता-पूर्वक विरोध किया है—"हम सबो की राय एक है। इतने बड़े अन्याय को आश्रय देने से हम लोगो का सारा काम मिट्टी मे मिल जायगा।"[८२] तथा एक अन्य स्थल पर तो यहाँ तक कह डाला है—"ट्रेटर (देशद्रोही) के बदले अगर एक ट्रायेड (परीक्षित) कामरेड का खून ही तुम्हें चाहिये तो मैं दे सकती हूँ।"[८३] श्रमिको के संगठन तथा उनकी स्थिति का अवलोकन भी 'सुमित्रा' और 'भारती' ने किया है किन्तु उनकी क्रियाशीलता मे तीव्रता नही। इतना निश्चित है कि 'सुमित्रा' तथा 'भारती' मे राष्ट्रीय भावनाओ का अभाव नही है।

प्रेमचन्द के नारी पात्रो मे प्रेम का विकास मर्यादा और संयम के भीतर ही होता है, साथ ही वह आकस्मिक न होकर धीरे-धीरे होता है। 'विरजन' (वरदान), 'मनोरमा' (कायाकल्प) और 'सोफिया' (रंगभूमि) मे इसे स्पष्टत देखा जा सकता है। किन्तु इन सभी पात्रो मे जहाँ प्रेम की सृष्टि की गयी है वहाँ उसे सामाजिक समस्याओं के सामने गौण रूप मे उपस्थित किया गया है।

'विनय' के साथ 'सोफिया' का प्रेम-सूत्र धीरे-धीरे विकसित हुआ है। 'विनय' के प्रति 'सोफिया' का आकर्षण सम्पूर्ण रूप से हुआ था किन्तु सामाजिक बन्धनो ने उनके प्रेम को मान्यता नही दी है। 'सोफिया' का प्रेम इसी कारण सामाजिक धरातल पर ऊँचा नही उठ सका है। प्रेम के सम्बन्ध मे 'सोफिया' की धारणाएँ दार्शनिक हैं किन्तु वासना की ओर उसका झुकाव शुरू से है। 'विनय' से प्रेम के सम्बन्ध मे 'सोफिया' ने कहा है—"प्रेम एक भावनागत विषय है। भावना ही मे उसका पोषण होता है, भावना ही से वह जीवित रहता है और भावना ही से लुप्त हो जाता है। वह भौतिक वस्तु नही है।"[८४] वस्तुत 'सोफिया' के प्रेम मे काल्पनिकता और भावुकता अधिक है। 'सोफिया' के प्रेम मे सेवा-भावना और निष्ठा का भी अभाव नही है। आवश्यकता पड़ने पर वह 'विनय' की सेवा करने मे भी पीछे नहीं हटती। 'विनय' के आहत हो जाने पर उसने 'विनय' की सेवा करने मे भी तत्परता दिखाई है—"जब कमरे मे कोई न रहा तो सोफी ने खिड़कियों पर परदे डाल दिये और विनय का सिर अपनी जाघ पर रखकर अपना रूमाल उस पर झलने लगी।"[८५] 'क्लार्क' से उसका वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर 'सोफिया' की मा उसे 'विनय' की ओर से अलग कर देना चाहती है किन्तु 'सोफिया' के हृदय मे 'क्लार्क' के प्रति घृणा का भाव है। 'विनय' को जेल से छुड़ाने के लिए वह 'क्लार्क' को चकमा भी देती है। इससे पता चलता है कि 'सोफी' मे कर्त्तव्य-भावना अत्यन्त सचेष्ट है। 'विनय' की मृत्यु के उपरान्त 'सोफिया' निराश हो जाती है किन्तु 'विनय' के प्रति अपने एकनिष्ठ प्रेम को अपनी आत्म-घातक मृत्यु के द्वारा प्रमाणित करती है।

प्रेमिका के रूप मे 'मनोरमा' का चरित्र आंसुओं से भीगा हुआ, सजल है। 'मनोरमा' के प्रेम को परिपूर्णता नही मिली है किंतु मनोरमा ने अपने प्रेम की दिशा को मोड दिया है। उसने अपने जीवन को 'चक्रधर' के लिए अर्पित किया है। 'राजा विशालसिंह' से विवाह करके उसने 'चक्रधर' की सेवा करनी चाही है। 'मनोरमा' ने 'चक्रधर' से प्रेम किया है किंतु 'चक्रधर' की उदासीनता ने 'मनोरमा' के हृदय मे उसके प्रति अज्ञात विकर्षण की सृष्टि भी की है। 'चक्रधर' को लेकर उसके हृदय मे एक गहरा द्वंद्व रहा है जिसका निर्णय 'मनोरमा' नहीं कर सकी है। किंतु 'चक्रधर' का विवाह 'अहल्या' के साथ हो जाने के उपरांत उसके मन मे प्रतिक्रिया भी हुई है। 'विशालसिंह' से विवाह करके भी वह 'चक्रधर' की सेवा करने के लिए उन्मथित हुई है—"ईश्वर को साक्षी देकर कहती है, मैं कभी भोग-विलास में लिप्त न हुई थी। धन से मुझे प्रेम है, लेकिन केवल इस लिए कि उससे मैं कुछ सेवा कर सकती और करने वालों की कुछ मदद कर सकती।"८६ 'मनोरमा' की 'चक्रधर' के प्रति प्रेमभावना, 'मनोरमा' का विवाह हो जाने के उपरांत भी अभिव्यक्त हुई है। सघर्ष मे पड़े हुए 'चक्रधर' के सम्बन्ध मे अपने पति से 'मनोरमा' कहती है—"जिस समय आपके ये निर्दय हाथ बाबू चक्रधर पर उठे अगर उस समय मैं वहां होती तो कदाचित् कुन्दे का वह वार मेरी ही गर्दन पर पडता। मुझे आश्चर्य होता है कि उन पर आपके हाथ उठे क्योंकर। उसी समय से मेरे मन मे विचार हो रहा है कि क्या प्रभुत्व और पशुता एक ही वस्तु तो नहीं है।"८७ 'मनोरमा' अपने प्यार के बल पर 'चक्रधर' को शासित करना चाहती है—"मैंने कह दिया आप इस गाड़ी से नहीं जा सकते।"८८ किंतु 'मनोरमा' का व्यक्तित्व 'राजलक्ष्मी' (श्रीकांत) अथवा सावित्री' (चरित्र) की तरह असाधारण नही प्रतीत होता है। इसी से 'मनोरमा' के प्यार की शक्ति क्षुण्ण हुई है। अपने प्यार की परिपूर्णता के लिए वह जो साधन अपनाती है वही उसकी निर्बलता का कारण है। परिणामस्वरूप "वह आशा, नैराश्य, शांति और अशांति, गम्भीरता और उच्छृंखलता, अनुराग और विराग की एक विचित्र समस्या बन गयी है।"८९ 'मनोरमा' मे प्रेम का उन्नयन रूप अंकित हुआ है। 'मनोरमा' के प्रेम मे ऐन्द्रिकता और उच्छृंखलता नही, जैसी 'किरणमयी' (चरित्रहीन) मे पायी जाती है। इसी प्रकार 'मनोरमा' मे 'राजलक्ष्मी' की भांति भावविह्वलता भी नहीं है। वस्तुत 'मनोरमा' का मानसिक द्वंद्व विस्तार से चित्रित नही किया गया है किंतु प्रेमचन्द के अन्य नारी-पात्रों की अपेक्षा मानसिक द्वंद्व का चित्रण अधिक मार्मिक ढग से प्रस्तुत हुआ है। अपनी प्रणय-निराशा को लेकर 'सोफिया' की भांति आत्महत्या का मार्ग, 'मनोरमा' नहीं अपनाती है।

'अमरकांत' के प्रति 'सकीना' (कर्मभूमि) का आकर्षण तन और मन दोनों

[illegible] है किन्तु [illegible] परिवार से दूर [illegible] है। [illegible] के [illegible] है — [illegible] की [illegible] हो।" [illegible] है। इसी से [illegible] है। [illegible] निर्भर है किन्तु [illegible] नहीं [illegible]। इस दृष्टि से [illegible] की [illegible] जा सकती है। [illegible] है। [illegible] और [illegible] समझती है तथा [illegible] के प्रेम को [illegible] समझती है। [illegible] में यह बात नहीं पाई जाती है।

शरत्चन्द्र के कुछ नारी-पात्र अलौकिक प्रेम, आक्रोश और उद्दाम लालसा के द्योतक हैं। प्रेम के अगाध सागर में वे डूबते-उतराते हैं। वस्तुतः प्रेम, शरत्चन्द्र के नारी-पात्रों के सृजन के मूल में है। प्रायः प्रेम वृत्ति को ही केन्द्र बनाकर नारी-पात्रों का प्रणयन हुआ है। अतः प्रेमचन्द की अपेक्षा शरत्चन्द्र के नारी-पात्रों में प्रेम के विविध रूप दिखाई पड़ते हैं। 'किरणमयी' (चरित्रहीन) में प्रेम की उद्दाम भावना अंकित हुई है, 'राजलक्ष्मी' (श्रीकांत) तथा 'पार्वती' में प्रेम का अमित विकास हुआ है, 'सावित्री' (चरित्रहीन) में प्रेम की उदात्तता आदर्श के कारण हुई है तथा 'कमला' (श्रीकांत) का प्रेम, सामाजिक संस्कारों के विद्रोह के रूप में अंकित हुआ है। 'माधवी' (बड़ी बहन), 'संध्या' (बाम्हन की बेटी) 'रमा' (ग्रामीण-समाज) और 'पार्वती' में असफल प्रेम का चित्रण हुआ है। 'विजया' (दत्ता) तथा 'सरोजनी' (चरित्रहीन) में प्रेम को सरसता से परिपूर्ण अंकित किया गया है। साथ ही 'विजया' और 'सरोजनी' में प्रेमी की सहज प्रवृत्तियों का अभाव नहीं हुआ है जैसा कि प्रेमचन्द की 'सिलिया' (गोदान) में भी देखा जा सकता है।

'किरणमयी' के पति की उदासीनता के कारण 'किरणमयी' का प्रेम से परिपूर्ण

लेना चाहा है—"तुमको प्यार करती हूं—यह बता कर मैं बच गयी। अब तुम्हारी जो
खुशी हो करो, मुझे कुछ कहना नहीं है।"[६१] यह कहने पर भी 'उपेन्द्र', 'किरणमयी'
के प्रेम को स्वीकार नही कर सका। अतः 'उपेन्द्र' से बदला लेने के लिए वह
'दिवाकर' को लेकर भागी है। 'किरणमयी' मे असयम और उद्दाम काम-भावना की
अभिव्यक्ति हुई है। वह पाप और ईश्वर को भी नही मानती तभी तो 'दिवाकर' को
समझाती हुई कहती है "जब तक पाप को इस ससार से बिलकुल उठा न दिया
जायगा, जब तक मनुष्य का हृदय एक पत्थर की शिला के रूप मे न बदला जायगा,
तब तक इस पृथ्वी पर अन्याय और भूल-भ्रांति होती ही रहेगी और उसे क्षमा भी
करना होगा। पाप को दूर करने की शक्ति भी न हो और सहने की क्षमता भी चली
जाय, तो इससे भी भला क्या सुविधा होगी लल्ला।"[६२]

'राजलक्ष्मी' का 'श्रीकांत' से सम्बन्ध बचपन मे पाठशाला जाने के दिनो मे
करौंदों की मालाओं के हेर-फेर से स्थापित हो चुका था। इसी कारण उसके प्यार में
'पार्वती' (देवदास) की भांति गहराई अधिक है। उसका प्रेम 'कमल' (शेषप्रश्न)
की भांति दार्शनिक और 'सरोजनी' (चरित्रहीन) की भांति आकस्मिक नहीं है।
दीर्घ अवधि के अंतराल मे भी उसका प्रेम समाप्त नही हो सका है। वस्तुत.
'राजलक्ष्मी' के प्यार मे गहराई और ऊंचाई दोनों वर्तमान हैं। किंतु 'सावित्री' के
प्यार की स्थिति भिन्न है। 'सावित्री' का 'सतीश' के प्रति आकर्षण कुछ दिनों के
सहचर्य के कारण उत्पन्न हुआ है। 'सतीश' को मिलाकर उसे बार बार प्रेम प्राप्त
करने का अवसर मिला है किंतु 'सतीश' के प्रेम करने के पूर्व उसे धोखा ही उठाना
पड़ा है। 'सावित्री' ने 'सतीश' को अपने सम्पूर्ण हृदय से प्यार किया है किंतु संस्कारों
के प्रचण्ड वेग ने उसे आगे बढने नही दिया तथा 'सतीश' के निकट होते ही वह दूर
हो गयी है। इसी से उसके प्रेम को परिपूर्णता भी नहीं प्राप्त हो सकी है।

'पार्वती' के प्रेम को सूक्ष्म मानवीय सवेदनाओ मे अंकित किया गया है।
बाल्यावस्था से ही उसका प्रेम पल्लवित हुआ है इसी से उसके मानसिक संस्थान में
'अचला' (गृहदाह) अथवा 'किरणमयी' (चरित्रहीन) की भांति द्विविधा और अस्थि-
रता नही हैं। उसका प्रेम, प्रथम दृष्टि मे पैदा होने वाला भी नहीं है। 'देवदास' की
कमजोरी के कारण 'पार्वती' का प्रेम सफलता से मण्डित नहीं हो सका है किन्तु वह
अपने हृदय के मूल्य को समझती है। इसी से अन्य व्यक्ति के साथ विवाह हो जाने के
उपरान्त भी 'पार्वती' अपने 'देव भइया' को नहीं भूल सकी है। 'देवदास' की सेवा के
लिए 'पार्वती' सदैव तत्पर रही है। इस दृष्टि से 'पार्वती' की तुलना 'मनोरमा'
(कायाकल्प) से की जा सकती है। 'मनोरमा' ने 'चक्रधर' के लिए ही अपने स्वार्थ का
त्याग किया है तथा प्रेम मे असफल होने पर भी 'चक्रधर' को अपने हृदय से न

साथ उसकी तुलना करते हुए स्पष्ट किया है—"तुम दोनों में परस्पर कितना अन्तर है, फिर भी कितनी समानता है, एक आत्माभिमानिनी और उद्धत है, और दूसरी कितनी शात और सयत है। वह कुछ भी सहन नही कर सकती और तुम कितना सहन करती हो। उसका कितना यश और कितना सुनाम है और तुम पर कितना कलक है। उससे सभी प्रेम करते है और तुम से कोई प्रेम नही करता।"९५

'अचला' को सामाजिक दृष्टिकोण से हीन ही नही वरन् नितांत भ्रष्ट कहा जाएगा। अपने चचल मन को लेकर 'अचला' ने एक साथ दो पुरुषों को प्यार किया है। 'अचला' की मानसिक असगति का कारण 'महिम' की निष्ठुर उदासीनता भी है। 'महिम' की निर्धनता ने भी 'अचला' के मन को अस्थिर कर दिया है। इसी से 'सुरेश' के प्रति भी वह आकृष्ट हुई है। 'अचला' निर्धनता मे रहने की अभ्यस्त न थी। 'सुरेश' ने 'महिम' से इसे स्पष्ट कराते हुए कहा है—"उसका प्रेम तुम्हारी गरीबी के साथ ऐसी उलझन मे पड़ गया कि · खैर जाने दो।"९६ 'अचला' मे मानवीय संवेदना का अभाव नही है। डेहरी मे जब 'सुरेश' मरणासन्न की तरह एक अलग कोठरी में सो गया तो 'अचला' 'सुरेश' के आत्मघात की बात सोचकर रो उठी है तथा भीतर ही भीतर ईश्वर से उसके जीवन के लिए प्रार्थना की है। वास्तव मे 'अचला' का हृदय कभी शान्त नही रह सका है। अपने असंयत मन के कारण ही उसे जीवन मे भटकना पडा है। 'अचला' के सम्बन्ध मे 'सुरेश' का कथन अत्यन्त सटीक है—"मोर के पख लगाकर कौआ कभी सुन्दर नही होता अचला!"९७

शरतचन्द्र के कुछ नारी-पात्र स्वभाव की असाधारण ममता और अचल कर्त्तव्य-भावना के द्योतक है। अपनी ममता और कर्त्तव्य-भावना के बल पर शरतचन्द्र के ऐसे नारी-पात्र पुरुषो पर हुकूमत भी करते हैं। 'राजलक्ष्मी' (श्रीकान्त) और 'सावित्री' (चरित्रहीन) मे यह प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई जाती है। 'कमललता' (श्रीकात) मे भी ममता, सेवा और हुकूमत का सामंजस्य उपस्थित हुआ है। अपने अव्यवस्थित प्रारम्भिक जीवन मे 'श्रीकात' को 'राजलक्ष्मी' ने खो दिया है किन्तु 'कुमार साहब' के साथ 'श्रीकात' को दीर्घ अवधि के अंतराल के उपरांत भी 'राजलक्ष्मी' ने पहचान लिया है, वही से 'श्रीकात' के ऊपर 'राजलक्ष्मी' की बचपन से प्राप्त हुई बचपन हुकूमत भी प्रारम्भ हुई है—"रुपये लिये हैं, सो मुझे तो गाना ही पड़ेगा, परन्तु क्या आप भी इन पन्द्रह-सोलह दिनों तक इनकी मुसाहिबी करते रहेंगे? जाइये, बस ही आप अपने घर चले जाइये।"९८ इस हुकूमत के साथ-साथ 'राजलक्ष्मी' मे कर्त्तव्य का भी ज्ञान है—"किन्तु कुछ हो जायगा तो इस विदेश में, पराई जगह, राजे-रजवाड़े या मित्र-दोस्त, कोई काम नही आवेंगे, तब मुझे ही भुगतना पड़ेगा।"९९

'राजलक्ष्मी' अपनी सेवा के कारण ही 'श्रीकांत' पर अधिकार रखती है।

करता गया और ममता के कारण 'सावित्री' भी 'राजलक्ष्मी' की भाँति 'सतीश' पर अधिकार रखती है। असाधारण शक्तिशाली होते हुए भी 'सतीश' उससे डरता है। 'सावित्री' के अन्दर असीमित सेवा-भावना है तथा उसका हृदय भी शांत है। अपने प्रणय को वह उपन्यास के अन्त में व्यक्त कर सकी है—"तुम पूछते हो प्यार करती हूँ या नहीं? प्यार नहीं करती तो काहे के बल से तुम पर मेरा इतना जोर है? काहे के लिए मुझे इतना सुख है इतना दुःख है? अजी इसी से तो तुमको विश्वास से मैंने इतना दुःख दिया, किन्तु अपनी यह देह तुमको नहीं दे सकी।"[1]

प्रेमचन्द के नारी-पात्रों का बौद्धिक स्तर शरतचन्द्र के नारी-पात्रों की तुलना में साधारण अवश्य है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रेमचन्द के नारी-पात्र बौद्धिक दृष्टि से नितान्त हीन हैं। 'धनिया' (गोदान) शिक्षित न होने पर भी उसमें भविष्य को समझने की शक्ति है। परिणामस्वरूप 'धनिया' के निर्णय को 'होरी' भी मानने के लिए बाध्य होता है। अपने पति के प्रत्येक कार्य में उसका मत मूल्यवान् होता है। 'धनिया' में अपने कर्तव्य का भी पूरा-पूरा ज्ञान है। 'सुखदा' (कर्मभूमि) 'मनोरमा' (कायाकल्प) का बौद्धिक-धरातल 'धनिया' की अपेक्षा अधिक ऊँचा है। 'सुखदा' सामाजिक क्षेत्र में अपनी बुद्धि के आधार पर ही अपना विशिष्ट स्थान बना

लेती है। किन्तु इतना निश्चित है कि 'कमल' (शेषप्रश्न), 'किरणमयी' (चरित्रहीन) 'वन्दना' (विप्रदास) तथा 'अभया' (श्रीकांत) की भांति प्रखर बौद्धिक चेतना तर्कशील नारी-पात्रों का प्रणयन प्रेमचन्द के उपन्यासों मे नही हुआ है। वे नारी अपनी बौद्धिक प्रतिभा के बल पर पुरुषों को भी विलज्जित करने मे समर्थ हैं। कारण है कि प्रेमचन्द के नारी-पात्र जहा दया उत्पन्न करते हैं वहा शरतचन्द्र के नारी-पात्र अपनी ओर सहज ही मे आकर्षित कर लेते हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासो मे 'कमल' (शेषप्रश्न) जैसा प्रखर बौद्धिक चेतना से परिपूर्ण नारी-पात्र का सृजन नही हुआ है। "कमल के केवल रूप ही नही बातें भी कैसी मीठी थी उसकी।"[102] यह अनुमान 'आशुबाबू' ने उसके प्रथम परिचय में ही लगा लिया था। 'कमल' की तर्कशीलता और बौद्धिकता को स्वीकार करते हुए 'अविनाश' ने तो स्पष्टतः कहा है—"उसके सामने किसी चीज को अच्छा बताने की हिम्मत नहीं पड़ती—हो सकता है कि तीव्र प्रतिवाद के जोर से वह अभी साबित कर दे कि उनके छत की नक्काशी से लेकर फर्श तक सब कुछ बुरा है।"[103] 'शिवनाथ' के साथ 'कमल' का सम्बन्ध टूट जाने पर 'कमल' संकुचित नही हुई है। क्योंकि 'कमल' प्रेम को अस्थिर मानती है। वस्तुतः वह वैवाहिक बन्धनो को नही मानती। 'कमल' वैवाहिक जीवन मे प्रेम को महत्त्व देती है। उसका यह दृष्टिकोण भारतीय संस्कृति के अनुरूप नही पडता। 'आशुबाबू' ने 'कमल' के मत की आलोचना की है। किन्तु 'कमल' ने अपने मत को अत्यन्त तर्कपूर्ण ढंग से उचित सिद्ध किया है। 'शिवनाथ' को विदा करते हुए 'कमल' की तर्कशीलता को देखा जा सकता है—"देखो कोरी भावना को ही मूलधन मानकर दुनिया मे रोजगार नही किया जा सकता, मेरे साथ हो सकता है कि फिर तुम्हारी मुलाकात न हो, लेकिन मेरी तुम्हें याद आयेगी। जो होना था सो तो हो चुका—वह सब वापस नही आ सकता। परन्तु भविष्य में भी जीवन को और एक पहलू से देखने की कोशिश करोगे तो हो सकता है कि तुम्हारा भला हो—तुम अच्छी तरह रहो।"[104]

'कमल' अपनी तर्क-पद्धति के बल पर ही अनेक मान्यताओं को [illegible] करती है। वर्तमान में 'कमल' का अटूट विश्वास है। इसी से अतीत को किसी वस्तु को वह स्वीकार नही करती—'वस्तु अतीत होती है अपने काल धर्म से, मगर अच्छी होती है अपने गुणों से।'"[105] 'कमल' ने अपने इस मत का समर्थन [illegible] किया है—"वर्तमान की अपेक्षा अतीत को ध्रुव जानकर जीवन बिताने में [illegible] बड़ा भारी आदर्श है मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता।"[106] अपनी इसी धारणा के आधार पर 'कमल' ने 'आशुबाबू' की मृत-पत्नी भक्ति की [illegible] की है तथा 'ताजमहल' और 'नीलिमा' के आदर्श का विरोध भी किया है

वस्तुतः 'कमल' के लिए अतीत मृत है और भविष्य को वह अपने वर्तमान के आधार पर सुन्दर बना लेने के पक्ष में है। इसी से वह संसार का समस्त सौन्दर्य, समस्त ऐश्वर्य और समस्त प्राण लेकर जीवित रहना चाहती है। वर्तमान पर आस्था होने के कारण ही 'कमल' क्षण-भर भी विश्वास करती है तथा क्षण-भर के सत्य को जीवन की बहुत बड़ी देन स्वीकार करती है। इसी से 'कमल' सत्य को भी स्थायी नहीं मानती। 'अजित' के साथ अपने सम्बन्ध को किसी बन्धन में नहीं बांधना चाहती। इसी से 'अजित' ने उससे कहा है—"मुझे क्या लगता है जानती हो? लगता है कि तुम्हें पाना जितना सहल है, गंवा देना भी उतना आसान है।"[१९७] और 'नीलिमा' ने उसे 'नदी की मछली' कहा है। 'कमल' अपने सम्बन्ध में कुछ भी नहीं छिपाती। छिपाने योग्य जैसे उसके पास कुछ भी नहीं है। अपनी मां का घृणित इतिहास बताने में भी उसे संकोच नहीं हुआ है। अपनी मां की कुरुचि की, उसने भर्त्सना भी की है। इसी से 'अजित' उसके सम्बन्ध में सोचता है—"इससे भी ज्यादा उसे व्याकुल कर रखा था इस लज्जाहीन नारी की निर्दय सत्यवादिता ने। इस दुनिया में झूठ बोलने की इसे आवश्यकता ही नहीं। यह मानो सारी दुनिया को संकट में डालने और लांछित करने के लिए ही पैदा हुई है।"[१९८]

'किरणमयी' (चरित्रहीन) में भी 'कमल' की ही भांति बौद्धिक प्रतिभा और असाधारण दीप्ति है। 'किरणमयी' की प्रतिभा के सामने 'उपेन्द्र' का संयम और आदर्श नगण्य प्रमाणित हुआ है। 'उपेन्द्र' ने 'किरणमयी' की प्रतिभा को स्पष्टतः स्वीकार किया है—"ऐसी औरतें भी हैं जिनके सामने पुरुष का आकाश को छूने वाला सिर अपने आप ही झुक जाता है, जोर नहीं चलता सिर झुकाना ही पड़ता है। किरणमयी ऐसी ही नारी है।"[१९९]

प्रेमचन्द के अधिकांश नारी-पात्र समाज की रूढ़ सीमाओं से बाहर निकलते हैं तथा अपनी प्रतिभा का विकास करते हैं। इस दृष्टि से प्रेमचन्द के नारी-पात्रों में संस्कारों को तोड़ने की भी शक्ति है तथा वे नवीन चेतना से परिव्याप्त हैं। 'धनिया' (गोदान) 'सिलिया' (गोदान) और 'मुन्नी' (कर्मभूमि) के चरित्र इस दृष्टिकोण से विशेष उल्लेखनीय हैं। यहां यह भी ध्यान देने योग्य है कि ये सभी नारियां निम्नवर्ग की हैं। 'शरतचन्द' ने निम्न वर्ग की नारियों के चरित्र इतने उच्च धरातल पर नहीं अंकित किये हैं अपितु कहना तो यह चाहिए कि निम्न स्तरीय नारी-पात्रों का चारित्रिक निरूपण शरतचन्द के उपन्यासों में हुआ ही नहीं है। प्रेमचन्द के ये नारी-पात्र रूढ़ बन्धनों को तोड़ देने के लिए केवल आकुल ही नहीं हैं उन्हें तोड़ भी देते हैं। 'धनिया' निम्न वर्ग से सम्बन्धित प्रेमचन्द का महत्त्वपूर्ण नारी-चरित्र है। निम्नवर्ग की नारियां भी सामाजिक समस्याओं [illegible] कितना परिचित हैं, 'धनिया' इसका अप्रतिम उदाहरण है। पति के

[illegible] 'धनिया' [illegible] है—"उसका विचार था कि

हमने जमींदार के खेत जोते है, तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करे, उसके तलवे क्यो सहलायें।"[११०]

अंग्रेज फौजियो के अमानवीय व्यवहार से लांछित होकर 'मुन्नी' अपने पति के साथ पुन रहने के लिए सहमत नहीं हुई है। इस प्रकार 'मुन्नी' ने सामाजिक लाछना को अपने अदम्य साहस से चकनाचूर कर दिया है। समाज की [illegible] उसके व्यक्तित्व के सम्मुख हेय सिद्ध हुई है। अपने मातृत्व से पूर्ण हृदय को लेकर 'मुन्नी' ने समाज शक्ति पर गहरी चोट की है। 'सुमेर' ने 'मुन्नी' को गंगा में डूबने से बचाया है। 'सुमेर' ने अपने परोपकार का प्रतिदान भी चाहा है। किंतु 'मुन्नी' ने इस सम्बध मे बडे सयम से काम लिया है। 'मुन्नी' ने अपने क्रोध को [illegible] व्यक्त करते हुए कहा है "क्या तुम मुझसे इस रूप मे नेकी का बदला चाहते हो? अगर यह नीयत है तो मुझे फिर ले जाकर गगा मे डुबा दो।"[१११] इस प्रकार 'मुन्नी' ने सुमेर को लज्जित कर दिया है। 'अमरकांत' से भी उसका रागात्मक लगाव हुआ है किंतु 'मुन्नी' अपनी स्थिति को भली भांति समझती है। उसने स्वयं अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा है—"दरिद्र को सिंहासन पर भी बैठा दो तब भी उसे अपने राजा होने का विश्वास न आयेगा। वह उसे सपना ही समझेगा। [illegible] यही सपना जीवन का आधार है। मैं कभी जागना नहीं चाहती। [illegible] देखती रहना चाहती हूं।"[११२] 'मुन्नी' मे अपरिमित सेवा-भावना है। [illegible] वह अपनी चारित्रिक महानता और सेवा के कारण ही सभी की सहानुभूति प्राप्त कर लेती है। उसके इन्हीं गुणों के कारण 'सुखदा' भी बिना प्रभावित हुए नहीं रहती "सुखदा ने देखा इस गँवारिन के हृदय मे कितनी सहानुभूति, कितनी दया, कितनी जागृति भरी हुई है।"[११३]

प्रेमचन्द की निम्नवर्गीय नारियों में जो आत्मबल पाया जाता है वह [illegible] के नारी-पात्रो मे नही है। 'सिलिया' मे भी अन्य प्रवृत्तियो के साथ [illegible] उद्भासित हुआ है। 'मातादीन' को 'सिलिया' ने अपने पति के [illegible] किया है। 'मातादीन' से अपमानित होकर भी वह [illegible]। [illegible] अनुचित व्यवहार करने पर 'सिलिया' उसे फटकार देती है। [illegible] प्रेम एकनिष्ठ है। 'होरी' 'सिलिया' के सम्बन्ध में 'गोबर' से [illegible] सोचता है—"एक यह भोरी है और एक यह [illegible] उनसे सात दरजे अच्छी। चाहे तो दो को [illegible] लेकिन मजदूरी करती है, भूखों मरती है और [illegible] सिर्दी बात भी नहीं पूछता।"[११४] [illegible] आचरण को [illegible] है।

शरत्चन्द्र के नारी-पात्रों का चित्रण उनके मानसिक पीड़न तथा संस्कारों से उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व की करुण-कथा है। यही कारण है कि शरत्चन्द्र के नारी-पात्रों में द्वन्द्व है। शरत्चन्द्र के नारी-पात्र परिस्थितियों से छटपटाते हैं किंतु समाज के विरुद्ध संघर्ष में वे प्रवेश नहीं करते। 'राजलक्ष्मी' (श्रीकान्त), 'अन्नदा' (चरित्र-हीन), 'सावित्री' (चरित्रहीन), 'पार्वती' (देवदास) तथा 'किरणमयी' (चरित्रहीन) आदि इसी प्रकार के नारी-पात्र हैं। 'अभया' (श्रीकान्त) में अवश्य संस्कारों को तोड़ देने की क्षमता है। इसी से 'अभया' में घुटन नहीं है। 'कमल' को भी इस दृष्टि से प्रस्तुत किया जा सकता है। 'अभया' का व्यक्तित्व अधिक प्रौढ़ और उसकी बुद्धि रचनात्मक सिद्ध हुई है। यही कारण है कि उसमें विद्रोही शक्ति अधिक तीव्र है। इस दृष्टि से उसकी तुलना 'सिलिया' (गोदान) से की जा सकती है। 'अभया' और 'सिलिया' दोनों ने ही सामाजिक संस्कारों के विरुद्ध विद्रोह किया है। 'अभया' ने एक पति के रहते हुए दूसरे पुरुष के साथ वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ा है। पति की निर्ममता तथा समाज की अविवेकपूर्ण निष्ठुरता पर 'अभया' ने गहरा आघात किया है। 'सिलिया' ने 'मातादीन' से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर समाज में नया प्रतिमान स्थापित किया है। बौद्धिक स्तर का पर्याप्त अन्तर होते हुए भी 'अभया' से कम दृढ़ता 'सिलिया' में नहीं है। अपनी दृढ़ता और आत्मबल के द्वारा 'सिलिया' अन्ततोगत्वा 'मातादीन' को अपना बना लेती है। 'अभया' की उच्च बौद्धिक प्रतिभा संस्कारों को तोड़ने के लिए सकुचित भी हुई है किंतु 'सिलिया' के निकट संस्कारों का प्रश्न उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है।

प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र के कुछ नारी-पात्रों के चरित्र का विकास पारिवारिक जीवन की कठिनाइयों के बीच हुआ है। इस दृष्टि से 'निर्मला' (निर्मला) 'गोविन्दी' (गोदान) 'ऊषा' (नवविधान) और 'शुभदा' का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। 'निर्मला' में पारिवारिक जीवन की कठिनाइयाँ अत्यन्त कारुणिक रूप से प्रस्तुत हुई हैं। अपने वृद्ध पति की भ्रान्त धारणाओं को निर्मूल सिद्ध करने में ही 'निर्मला' ने अपना जीवन अर्पित कर दिया है। 'निर्मला' अपने बेटों से स्नेह करती है। उसके वृद्ध पति 'निर्मला' की इस भावना पर सन्देह करते हैं। 'निर्मला' के विषाद का यही प्रमुख कारण है। पारिवारिक जीवन की फूटन और अव्यवस्था ही उसकी मृत्यु का कारण हुई है। 'गोविन्दी' और 'ऊषा' का पारिवारिक जीवन उनके पति की उपेक्षा के कारण कारुणिक हुआ है। 'गोविन्दी' के पति 'मि० खन्ना' अपनी पत्नी को उपेक्षित रखते हैं। इसी प्रकार 'ऊषा' का पति 'शैलेश' अपनी पत्नी की धर्म भावना के कारण ही उसे त्याग देता है किंतु 'गोविन्दी' अपनी कर्तव्य-भावना के प्रति अत्यन्त सजग है तथा 'ऊषा' में भी असाधारण धैर्य और आत्मविश्वास है।

'गोविन्दी' की सद्भावना ने अपने पति को उसकी ओर आकर्षित होने के लिए बाध्य किया है तथा 'ऊषा' के शांत और गम्भीर व्यक्तित्व का प्रभाव शंखेश पर इतना पड़ा कि वह भी वैष्णव हो गया। इस प्रकार 'गोविन्दी' और 'ऊषा' का अन्ततोगत्वा दाम्पत्य जीवन सुखमय हो गया है।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों मे वृद्धा नारियो का चित्रण अपनी निजी विशेषताएं रखता है। प्रेमचन्द के उपन्यासो की वृद्धाएं टिपिकल नारी-पात्र हैं। वे गौण होकर भी कथानक मे विशेष स्थान रखती हैं तथा अपने वर्ग की वृत्तियों का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है। 'मिसेज जानसेवक' (रगभूमि), रानी जाह्नवी' (रगभूमि), 'रेणुका देवी' (कर्मभूमि), 'पठानिन' (कर्मभूमि) और 'लौंगी' (कायाकल्प) प्रेमचन्द के इसी प्रकार के नारी-पात्र हैं। 'मिसेज जानसेवक' निष्ठुरता और कठोरता की साक्षात् प्रतिमा है। अपनी पुत्री पर वे अपनी धार्मिक कट्टरता को लादना चाहती हैं। 'मिसेज जानसेवक' का हृदय मानवीय सवेदनाओ से नितान्त शून्य है। घमण्ड, ईर्ष्या और द्वेष की भावना का 'मिसेज जानसेवक' मे आधिक्य है। 'रानी जाह्नवी' की कोठी की साज-सज्जा को देखकर उसका हृदय जल उठा है। वस्तुतः 'मिसेज जानसेवक' व्यावसायिक बुद्धि मे प्रवीण और अपने पति की अनुगामिनी है। 'रानी जाह्नवी' मे भी कठोरता और तीव्रता है पर उसकी कठोरता कर्तव्य-भावना से मण्डित है। 'रानी जाह्नवी' अपने पुत्र को देशभक्त और जन-सेवक बनाना चाहती है। इसी से अपने पुत्र 'विनय' के प्रणय सम्बन्ध मे वह बाधक बनती है तथा पुत्र के राजभक्त होने पर वह उससे घृणा करती है। 'रानी जाह्नवी' मे राजपूत रमणी की उत्साहपूर्ण भावनाएं सजग हैं। अपने पुत्र मे अपनी भावनाओं को साकार होते न देखकर वह दु खी होती है किंतु सघर्ष के बीच 'विनय' के उत्सर्ग हो जाने पर 'रानी जाह्नवी' उत्साहित होती है—'कुंवर विनयसिंह' की मृत्यु के पश्चात् रानी जाह्नवी का सदुत्साह दुगुना हो गया। वह पहले से कहीं ज्यादा क्रियाशील हो गया।"११५

'रेणुका' मानवीय सवेदना से परिपूर्ण चरित्र है। उसमे दया, ममता और त्याग की भावना है। 'अमरकान्त' और 'सुखदा' के घर से अलग हो जाने पर 'रेणुका' उनकी सहायता करती है। धन और सम्पत्ति का उसे मोह नहीं है। अपनी इस उदारता के कारण अनेक सेवा समितियों को आर्थिक सहायता भी वह करती है। 'रेणुका' का हृदय नि स्वार्थ सेवा-भावना से परिपूर्ण है। 'नैना' की हत्या करने पर 'मनीराम' के सम्बन्ध मे वह कहती है—"दुनिया में ऐसे-ऐसे आदमी भी पड़े हुए है, जो स्वार्थ के लिए अपनी स्त्री की हत्या कर सकते है।"११६ सामाजिक [illegible] 'रेणुका' राजनीतिक स्पन्दन से भी पूर्णतः परिचित है। [illegible]

स्वर 'पठानिन' के चरित्र का सृजन हुआ है। वस्तुत निर्धन होते हुए भी 'पठानिन' चरित्र उदात्त भावनाओ से परिपूर्ण है। 'पठानिन' ने अपनी निर्धनता का अदम्य साहस से निर्वाह किया है। 'सकीना' के प्रति 'अमरकान्त' के आकर्षण को जान कर उसने जो फटकार बताई है उससे 'पठानिन' के चरित्र की गरिमा का पता चलता —"हम गरीब है, मुसीबत के मारे है, रोटियो के मुहताज हैं। जानता है क्यो ? इस लए कि हमें आबरू प्यारी है।"[११७] 'पठानिन' मे दासी की कर्त्तव्य भावना की सच्चाई है। इसमे उसने 'सुखदा' से कहा है—"अरे बेटा जिसका जिन्दगी भर नमक खाया, उसका घर उजाड कर अपना घर बसाऊ।"[११८] 'लौंगी' की गार्हस्थिक दक्षता के कारण 'ठाकुर हरि सेवक सिंह' ने अपनी पत्नी के देहान्त हो जाने के उपरान्त 'लौंगी' को दासी से गृहिणी के रूप मे प्रतिष्ठित किया—"उसने इतनी कुशलता से घर संभाला कि ठाकुर साहब उस पर रीझ गये और उसे गृहिणी के रिक्त स्थान पर अभिषिक्त कर दिया।"[११९] ब्याहता न होने पर भी 'लौंगी' आदर्श पत्नी को विलज्जित करने वाली है।

शरतचन्द्र के वृद्धा नारी-पात्रो को सत् और असत् वृत्तियो के आधार पर उन्हे दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथम मे स्नेह, करुणा और दया मे परिपूर्ण वृद्धाए आती हैं, दूसरे वर्ग मे कठोर हृदय और कर्कशा वृद्धाओ को लिया जा सकता है। 'करुणामयी' (पथ के दावेदार) 'दयामयी' (विप्रदास) और 'विश्वेश्वरी' (ग्रामीण समाज) करुणा, दया और ममता से परिपूर्ण नारियां है। मातृहृदय मे पूर्ण ये सरल और घर की दक्ष मालकिनें हैं। किन्तु इन नारी-पात्रो मे एक विशेषता प्राय पायी जाती है जिसके सम्बन्ध मे डा० सुबोधचन्द्र सेन ने भी लिखा है—"एक चीज प्राय ही देखी जाती है। वह यह कि उनके श्रेष्ठ चित्रो मे माता का स्नेह अपने गर्भ से उत्पन्न सन्तान के लिए उतना नही उमडा जितना कुछ दूर का सम्बन्ध रखने वाले पुत्र स्थानीय आत्मीय के लिए।"[१२०] यह बात 'दयामयी' और 'विश्वेश्वरी' के सम्बन्ध मे समीचीन है। 'विश्वेश्वरी' अपने पुत्र 'वेनी' की अपेक्षा 'रमेश' को अधिक स्नेह करती है। 'रमेश' पर उसकी सचमुच ममता है। 'दयामयी' अपने सौतेले पुत्र 'विप्रदास' को 'द्विजदास' की अपेक्षा अधिक चाहती है। इसी से 'द्विजदास' ने कहा है कि वे सौतेली मां है किन्तु 'विप्रदास' की नहीं बल्कि 'द्विजदास' की हैं।

पैदा कर देना उसकी प्रमुख प्रवृत्ति है—"स्वर्णमंजरी ने गुस्से मे होश खोकर [illegible] चिल्लाकर एक हंगामा खड़ा कर दिया। कहने लगी, अच्छी बात तो है बच्चा, [illegible] लिए अगर इतनी पीड़ा पैदा हुई है तो अपनी मौसी को जो अब सास हो गयी है [illegible] यात्रा क्यों कराओगे? अपने घर क्यो नही टिका लेते? गाव भर के लोग [illegible] करेगे? अनेक जहर की ज्वाला से अतुल का दिमाग खराब हो गया।"[1] इतं[illegible] होने पर भी 'स्वर्णमंजरी' मे 'रासमणि' की तरह नीचता नही है। यद्यपि [illegible] की दु:खद परिस्थितियों का बहुत कुछ कारण 'स्वर्णमंजरी' का [illegible] हुआ है।

प्रेमचन्द के अधिकाश नारी-पात्र सामाजिक सीमाओ और रूढ़ियो को तोड़ [illegible] अपने व्यक्तित्व का विकास करते हैं। शरतचन्द्र के नारी-पात्र अव्यवस्थित पारि[illegible] जीवन तथा प्राचीन मान्यताओ के बीच घुटन से पीड़ित और आकुल हैं जिससे शर[illegible] चन्द्र के नारी-पात्रों मे करुणा का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ है। शरतचन्द्र के ना[illegible] पात्र व्यक्तिगत आकांक्षाओं से परिबद्ध रहे हैं तथा नारी-पात्रो के मानसिक [illegible] का सूक्ष्म अध्ययन शरतचन्द्र के उपन्यासो मे हुआ है। अतः व्यक्तिगत भावना शरतचन्द्र के नारी-पात्रों में स्पष्ट होकर अभिव्यक्त हुई है।

४३. श्रीकांत (चतुर्थ पर्व), पृ० ११
४४. वही, पृ० १६
४५. वही, पृ० ६८
४६. गोदान, पृ० १७२
४७. वही, पृ० ८४
४८. श्रीकांत (प्रथम पर्व), पृ० १२२
४९. श्रीकांत, (चतुर्थ पर्व), पृ० १५६
५०. चरित्रहीन, पृ० २६०
५१. दि लिविंग नावेल—ए सिम्पोजियम एडीटेड बाई ग्रेनविल हिक्स (देखिए—दि मिस्ट्री आफ परसनैलिटी इन दि नावेल), पृ० १००
५२. रंगभूमि, पृ० ५५३
५३. वही, पृ० २१८
५४. वही, पृ० १३३
५५. वही, पृ० २२६
५६. वही, पृ० ५१८
५७. कर्मभूमि, पृ० १०२
५८. वही, पृ० ३७८
५९. वही, पृ० ४०२
६०. वही, पृ० ४०१
६१. वरदान, पृ० ५
६२. रंगभूमि, पृ० १००
६३. वही, पृ० १०२
६४. शरतचन्द्र : चिंतन व कला—डॉ० इन्द्रनाथ मैदान, पृ० १२४
६५. चरित्रहीन, पृ० १३
६६. वही, पृ० १६
६७. वही, पृ० ३५
६८. वही, पृ० १३६
६९. वही, पृ० १२१
७०. देवदास, पृ० ५६
७१. वही, पृ० ६२
७२. अलास ! आई हैव नार होप नार हेल्थ नार पीस विद इन नार काम अराउण्ड (दि गोल्डेन ट्रेज़री, पृ० २२७)
७३. आजकल—नवम्बर १९५२, पृ० १४
७४. शेषप्रश्न, पृ० २२२
७५. पथ के दावेदार, पृ० २७३
७६. वही, पृ० २३२

७७. [illegible] पृ० १५२
७८. चरित्रहीन, पृ० ६५
७९. कर्मभूमि, पृ० २१४
८०. वही, पृ० २७१
८१. वही, पृ० १३
८२. पथ के दावेदार, पृ० २०८
८३. वही, पृ० २५५
८४. कर्मभूमि, पृ० ८८
८५. वही, पृ० २८१
८६. [illegible], पृ० २५६
८७. वही, पृ० ११३
८८. वही, पृ० २२५
८९. वही, पृ० ३०६
९०. कर्मभूमि, पृ० ११७
९१. चरित्रहीन, पृ० २५७
९२. वही, पृ० ३००
९३. देवदास, पृ० ७७
९४. सेवासदन, पृ० ८५
९५. देवदास, पृ० १०२
९६. गृहदाह, पृ० ३००
९७. वही, पृ० ११६
९८. श्रीकान्त (प्रथम पर्व), पृ० ८६
९९. वही, पृ० १०६
१००. गोदान, पृ० ३०७
१०१. चरित्रहीन, पृ० ४३५
१०२. शेषप्रश्न, पृ० ३०
१०३. वही, पृ० १२४
१०४. वही, पृ० १६७
१०५. वही, पृ० २७८
१०६. वही, पृ० ४३
१०७. वही, पृ० २२२
१०८. वही, पृ० १३८
१०९. चरित्रहीन, पृ० २१२
११०. गोदान, पृ० ५
१११. कर्मभूमि, पृ० १८६
११२. वही, पृ० २६८

११३. वही, पृ० ३३८
११४. गोदान, पृ० ३०७
११५. रंगभूमि, पृ० ५५२
११६. कर्मभूमि, पृ० ३६६
११७. वही, पृ० १२८
११८. वही, पृ० १६६
११९. कायाकल्प, पृ० २०
१२०. शरत-प्रतिभा—डॉ० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त, पृ० ६५
१२१. अरक्षणीया, पृ० १

८

स्वाधीनता-पूर्व भारत की नारी : आधुनिक दृष्टि

राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों के कारण कालान्तर में भारतीय नारी का सम्मानित पद क्षीण होने लगा और आधुनिक युग तक आते-आते वह घर की देवी के स्थान पर दासी बन गयी। आधुनिक युग में नारी की सामाजिक प्रतिष्ठा अत्यन्त हीन और उसका गार्हस्थिक जीवन अत्यन्त कारुणिक हो गया। आधुनिक नारी की सामाजिक स्थिति इतनी दयनीय हो गयी कि वह पुरुष की छाया मात्र रह गयी। उसके स्वतन्त्र अस्तित्व का लोप हो गया, उसका अपनापन समाप्त हो गया तथा उसमें हीन भावना की जड़ें गहरी हो गयीं। इस प्रकार आधुनिक भारतीय नारी का सामाजिक अस्तित्व तो समाप्त हो ही गया किन्तु उसका पारिवारिक जीवन भी विशृंखलित होकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। भारतीय नारी में अनेकानेक कुरीतियाँ और रूढ़ियाँ पनप चुकी थीं। युग के अनुसार अपने को परिवर्तन करने की क्षमता भी समाप्त हो गयी। पर्दा प्रथा और अशिक्षा जैसे दोषों से वह घिर चुकी थी। विधवा की सामाजिक स्थिति और भी ×

असहाय स्थिति ने युग के कलाकारो और विचारकों का ध्यान सहज ही मे आकर्षित किया है। आधुनिक युग में नारी-पुरुष के बीच एक भावनात्मक सामजस्य और सतुलन की आवश्यकता का अनुभव किया गया। अतीत की सम्मानित नारी की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित कर, समाज मे नारी को समुचित स्थान देने के प्रयास किये गये। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र भी इन स्थितियों से प्रभावित हुए।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के नारी विषयक विचारो का विवेचन करने के पूर्व सामाजिक पृष्ठभूमि को जान लेना भी आवश्यक प्रतीत होता है क्योकि दोनो उपन्यासकारो की कृतियों पर पूर्ववर्ती और साम्प्रतिक परिस्थितियो का गहरा प्रभाव पडा है। भारत ही नही अपितु सम्पूर्ण विश्व मे उन्नीसवी सदी नारी-समाज के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है।

उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ से ही योरप के नारी-समाज मे अपनी दयनीय स्थिति के प्रति जागृति पैदा हो चुकी थी। औद्योगिक क्रान्ति ने जहा समस्त योरप को सुधार की लहर से आप्लावित कर दिया था वहां नारी समाज को भी नव जागरण से सचेत कर दिया था। कैथोलिक चर्च के कडे प्रतिबन्धनो के विरुद्ध प्रोटेस्टेंट के शक्तिपूर्ण आन्दोलन नारी स्वातन्त्र्य भावना को विकसित करने में सहायक सिद्ध हुए थे। योरप की नारी उन्नीसवी सदी के अन्त तक आर्थिक और सामाजिक प्रतिबन्धनो से पूरी तरह स्वतन्त्र हो चुकी थी। निश्चित ही योरप की नारी की स्वातन्त्र्य-भावना का प्रभाव भारत पर भी पड़ा। उन्नीसवी सदी के भारतीय सुधारको ने समाज को नए प्रकाश मे गतिमय कर देने का जो प्रयास किया उसमे तत्कालीन भारतीय नारी की स्थिति पर भी विचार हुआ है। उत्तर भारत मे स्वामी दयानन्द और बगाल मे राजा राममोहनराय ने सामाजिक रूढियो और परम्पराओ का विरोध कर तत्कालीन नारी-समाज की शोचनीय स्थिति को दृष्टि मे रखकर सुधार पर बल दिया। अपने तूफानी व्यक्तित्व को लेकर स्वामी दयानन्द ने समस्त उत्तर भारत का दौरा किया तथा सामाजिक परिस्थितियो का गहराई से अध्ययन किया। वेदो मे अखण्ड विश्वास के साथ-साथ पाश्चात्य विज्ञान और उसके आविष्कारो से वे प्रभावित हुए तथा जातीय विभेदों और बाल विवाह जैसी सामाजिक विकृतियों का विरोध किया।[1]

राजा राममोहनराय ने पाश्चात्य सस्कृति से प्रेरित होकर बगाल मे ब्रह्म समाज की स्थापना की, जिसके प्रमुख कार्यों मे तत्कालीन बगाल की नारी की स्थिति को सुधारना भी था। रायसाहब स्वय बहु-विवाह, बाल-विवाह आदि के विरोधी तथा विधवा विवाह और स्त्री-शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। धार्मिक परिवर्तनों के साथ-साथ वे शिक्षा और हिन्दू परिवार के सुधारो मे अधिक रुचि रखते थे।[2] राजा राममोहनराय के उपरान्त बगाल के प्रमुख नवयुवको ने 'नए समाज' [illegible] स्थापना की।

इन नवयुवकों ने अधिक उत्साह के साथ स्त्री-शिक्षा और नारी-स्वातन्त्र्य पर जोर दिया। ईसाइयों की तरह सामाजिक उत्सवों में स्त्रियों के साथ भाग लेने और विदेश वस्त्रों को पहनकर बाहर निकलने तथा वैवाहिक कार्यों में भी ईसाइयों की अनुरूपता प्रदान की। बाल-विवाह समाप्त करने तथा विधवाओं का विवाह करने पर विशेष जोर दिया तथा अन्तर्जातीय विवाहों का प्रारम्भ भी किया।[४] इस प्रकार बंगाल में नारी की सामाजिक प्रतिष्ठा धीरे-धीरे पुन स्थापित होने लगी।

राजकीय स्तर पर भारतीय नारी की परिस्थितियों को सुधारने का कोई समुचित प्रयास बीसवीं सदी के पूर्व तक नहीं हुआ। यद्यपि भारतीय काग्रेस की स्थापना सन १८८५ में हो चुकी थी किन्तु प्रारम्भ में उसका कार्यक्षेत्र राजनीति तक ही सीमित होने के कारण भारत की सामाजिक समस्याओं को काग्रेस द्वारा नहीं उठाया गया। उसका प्रमुख उद्देश्य भारत को अग्रेजों की दासता से मुक्ति दिलाना था। सन् १९१७ में ब्रिटिश सरकार ने माण्टेगू को राजनैतिक विकास की दृष्टि से तथा स्वशासन प्राप्त करने की योग्यता का निरीक्षण करने के लिए भारत भेजा। माटेगू के भारत आने पर भारतीय महिलाओं ने भी अपनी समस्याओं को एक स्मृति-पत्र के माध्यम से डेलीगेशन द्वारा माटेगू चेम्सफोर्ड के प्रबन्धकों के सम्मुख प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् माटेगू चेम्सफोर्ड कमीशन की जो विज्ञप्ति प्रकाशित हुई उसमें नारियों के मताधिकार का विवेचन नहीं किया गया। उनके मताधिकार में केवल इतनी छूट थी कि उनके साथ योनि सम्बन्धी कोई अयोग्यता नहीं मानी जायगी।[५] सन् १९१७ के काग्रेस अधिवेशन ने भी स्त्रियों के डेलीगेशन चुनने तथा उन्हें वक्ता के रूप में प्रचार के लि भेजने का निश्चय किया। इसी वर्ष काग्रेस के अध्यक्ष पद पर भी एक स्त्री चु गयी।[६] वस्तुत बीसवीं सदी के प्रारम्भ में भारत, योरप के सास्कृतिक प्रभाव में पूर्ण रूप से आ चुका था। योरप के प्रभाव के कारण ही भारतीय परिवारों की प्राचीन मान्यताओं में भी कुछ परिवर्तन हुए। डा० डी० पी० मुखर्जी ने इस विषय में विचार करते हुए लिखा है कि 'आज भारतीय समाज के सम्बन्ध में पहला तथा प्राचीन कौटुम्बिक बन्धनों का टूटना है। यह प्रथम विश्व-युद्ध के पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था। यह आगामी दो दशकों में ध्यान देने योग्य था।[७] इस कथन से यह स्पष्ट है कि बीसवीं सदी के प्रारम्भ में ही भारतीय परिवार के कड़े और प्राचीन बन्धन शिथिल होने लगे थे तथा नारी समाज में आत्मगत चेतना की लहर आने लगी थी।

उन्नीसवीं सदी के धार्मिक-सामाजिक आन्दोलनों के द्वारा समाज-सुधार की जो पृष्ठभूमि तैयार हुई, उसे बीसवीं सदी में प्रथम बार गाधी द्वारा व्यापक अर्थ प्रदान किया गया। दयानन्द तथा राजा राममोहनराय आदि द्वारा प्रवर्तित सिद्धान्त विभिन्न सम्प्रदायों के रूप में परिवर्तित हो गये जिससे समाज-सुधार का कार्य सकुचित हो

असहाय स्थिति ने युग के कलाकारों और विचारको का ध्यान सहज ही मे आकर्षित किया है। आधुनिक युग में नारी-पुरुष के बीच एक भावनात्मक सामजस्य और सतुलन की आवश्यकता का अनुभव किया गया। अतीत की सम्मानित नारी की प्रतिष्ठा को पुन: स्थापित कर, समाज मे नारी को समुचित स्थान देने के प्रयास किये गये। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र भी इन स्थितियो से प्रभावित हुए।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के नारी विषयक विचारो का विवेचन करने के पूर्व सामाजिक पृष्ठभूमि को जान लेना भी आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि दोनों उपन्यासकारो की कृतियों पर पूर्ववर्ती और साम्प्रतिक परिस्थितियो का गहरा प्रभाव पड़ा है। भारत ही नही अपितु सम्पूर्ण विश्व मे उन्नीसवी सदी नारी-समाज के लिए विशेष महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है।

उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ से ही योरप के नारी-समाज मे अपनी दयनीय स्थिति के प्रति जागृति पैदा हो चुकी थी। औद्योगिक क्रान्ति ने जहा समस्त योरप को सुधार की लहर से आप्लावित कर दिया था वहा नारी समाज को भी नव जागरण से सचेत कर दिया था। कैथोलिक चर्च के कड़े प्रतिबन्धनों के विरुद्ध प्रोटेस्टेंट के शक्ति-पूर्ण आन्दोलन नारी स्वातन्त्र्य भावना को विकसित करने मे सहायक सिद्ध हुए थे। योरप की नारी उन्नीसवी सदी के अन्त तक आर्थिक और सामाजिक प्रतिबन्धनों से पूरी तरह स्वतन्त्र हो चुकी थी। निश्चित ही योरप की नारी की स्वातन्त्र्य-भावना का प्रभाव भारत पर भी पड़ा। उन्नीसवी सदी के भारतीय सुधारको ने समाज को नए प्रकाश मे गतिमय कर देने का जो प्रयास किया उसमे तत्कालीन भारतीय नारी की स्थिति पर भी विचार हुआ है। उत्तर भारत मे स्वामी दयानन्द और बगाल मे राजा राममोहनराय ने सामाजिक रूढ़ियो और परम्पराओं का विरोध कर तत्कालीन नारी-समाज की शोचनीय स्थिति को दृष्टि मे रखकर सुधार पर बल दिया। अपने प्रभावी व्यक्तित्व को लेकर स्वामी दयानन्द ने समस्त उत्तर भारत का दौरा किया तथा सामाजिक परिस्थितियो का गहराई से अध्ययन किया। वेदो मे अनन्य विश्वास के साथ-साथ पाश्चात्य विज्ञान और उनके आविष्कारों से वे प्रभावित हुए तथा जातीय विभेदों और बाल विवाह जैसी सामाजिक विकृतियों का विरोध किया।[१]

राजा राममोहनराय ने पाश्चात्य संस्कृति से प्रेरित होकर
समाज की स्थापना की, जिसके प्रमुख कार्यों मे तत्कालीन
को सुधारना भी था। रायसाहब स्वय बहु-विवाह, बाल
तथा विधवा विवाह और स्त्री-शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। ध
साथ वे शिक्षा और हिन्दू परिवार के सुधारों मे अधिक रुचि
मोहनराय के उपरान्त बगाल के प्रमुख नवयुवकों ने नए ।

गया। गांधी ने राजनीतिक उद्देश्य को व्यापक अर्थ देकर भारत की सामाजिक समस्याओं को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया। परिणामत: राजनीतिक आन्दोलन के साथ-साथ अछूतों और नारियों को सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाने का प्रयत्न किया गया। कहा जा सकता है कि गांधी ने सामाजिक आन्दोलन को राजनीति के साथ मिलाकर अधिक व्यावहारिक बनाया तथा उन्नीसवी शताब्दी के समाज-सुधारक नारी को सामाजिक सम्मान दिलाने का जो कार्य पूरा न कर सके थे उसे गाधी के असाधारण व्यक्तित्व ने सहज ही मे पूरा कर दिया। गांधी के नेतृत्व मे प्रथम बार आधुनिक भारतीय नारी को उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। महात्मा गांधी ने स्त्रियो की शक्ति खोल दी। असहयोग आन्दोलन के प्रारम्भ मे ही गाधी ने भारतीय महिलाओ से सहयोग की सीधी अपील की। के० एम० पनिक्कर ने इस सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखा है "जब महात्मा गाधी ने अपने असहयोग आन्दोलन का श्रीगणेश किया था तब आरम्भ से ही उन्होंने भारतीय महिलाओं के नाम सीधी अपील की थी। इस दिशा मे महिलाओ के प्रति उनके विश्वास को पर्याप्त पुरस्कार मिला, क्योकि स्त्रिया इस महान सघर्ष मे सब जगह अग्रिम मोर्चों पर डटी हुई दिखाई देती थी। मदिरा की दूकानो पर धरना देने, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करने और सविनय अवज्ञा चलाने मे उन्होंने जो कुशलता दिखाई उसके सामने पुरुष भी विलज्जित हो गए और गाधी ने उनकी सेवाओ की बार-बार सराहना करते हुए कहा कि वे उनके आन्दोलन का मेरुदंड हैं।"[८] राजनीति मे नारियों के पदार्पण के फलस्वरूप परम्परागत मान्यताएँ, धारणाएं और रूढिया एकदम धराशायी हो गयी। गांधी का प्रभाव शहर की शिक्षित नारी पर ही नही बल्कि गांव की अशिक्षित नारियो पर भी पडा। इस प्रकार आधुनिक भारतीय नारी पारिवारिक जीवन से बाहर निकल कर अपनी परिधि को बढाती हुई विशाल सामाजिक धरातल पर आ उपस्थित हुई है।

आधुनिक कथा-साहित्य मे नारी की स्थिति विशेष ध्यान देने योग्य है। नारी आधुनिक कथा-साहित्य की धुरी रही है। आधुनिक उपन्यास-साहित्य मे नायक की अपेक्षा नायिका का चरित्र अधिक आकर्षक रूप मे प्रस्तुत किया गया है। यह बात प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों तथा सुखदा (कर्मभूमि), सुमन (गबन), किरणमयी (चरित्रहीन), राजलक्ष्मी (श्रीकांत) तक ही नही सीमित है। इस विशेषता को आधुनिक विश्व कथा साहित्य में भी परिलक्षित किया जा सकता है तथा जिसके समर्थन मे टालस्टाय की 'नताशा', अनातोले फ्रान्स की, 'थाया' एमिल जोला की 'नाना' तथा फ्लावेयर की 'मैडम बावरी' को प्रस्तुत किया जा सकता है। नारी के विद्रोही व्यक्तित्व के कारण ही उसी के आसपास आधुनिक उपन्यास की कथा घूमती रही है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र आधुनिक उपन्यासकार हैं अतः उनके उपन्यास

करते हैं किन्तु साथ ही उनके सामाजिक उत्तरदायित्व तथा पुरुष के साथ उनके समान अधिकार की ओर भी संकेत करते हैं। इसीलिए प्रेमचन्द के उपन्यास-साहित्य में नारी, पुरुष के साथ-साथ पैर बढ़ाती हुई दिखाई पड़ती है। यहीं प्रेमचन्द की नारी-विषयक भावना अधिक प्रगतिशील दिखाई पड़ती है।

शरतचन्द्र के उपन्यास साहित्य में नारी की स्वतन्त्रता तथा कुसंस्कारों से मुक्ति का समर्थन किया गया है। शरतचन्द्र के नारी-विषयक विचारों में गांधी जैसा सुधारवादी तथा जन-आन्दोलन से युक्त स्वर नहीं मिलता। यद्यपि उन्होंने स्वातन्त्र्य-आन्दोलन में नारी के सहयोग की आवश्यकता का अनुभव किया है। जैसा अपने एक निबन्ध में शरतचन्द्र ने स्वयं लिखा है—"जिस चेष्टा में, जिस आन्दोलन में, देश की नारियाँ सम्मिलित नहीं हैं, उनकी सहानुभूति नहीं है, इस सत्य को समझने का कोई ज्ञान, कोई शिक्षा, कोई साहस आज तक जिनको हमने नहीं दिया, उनको केवल घर के घेरे के भीतर बिठाकर, केवल चरखा चलाने के लिए बाध्य करके ही कोई बड़ी वस्तु प्राप्त की जा सकेगी। औरतों को हमने जो केवल औरत बनाकर ही रखा है, मनुष्य नहीं बनने दिया, उसका प्रायश्चित्त स्वराज्य के पहले देश को करना ही चाहिए। अत्यन्त स्वार्थ की खातिर जिस देश ने जिस दिन से केवल उनके सतीत्व को ही बड़ा करके देखा है, उनके मनुष्यत्व का कोई ख्याल नहीं किया, उसे उसका देना पहले चुका देना ही होगा।"[११] किन्तु शरतचन्द्र के उपन्यास-साहित्य में उनका उक्त दृष्टिकोण कहीं भी स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं हुआ है और न ऐसे पात्रों का सृजन ही किया गया है जो इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हों। शरतचन्द्र के उपन्यास-साहित्य में भारतीय नारी का आधुनिकतम रूप भी अंकित हुआ है किन्तु वह उन्हें ग्राह्य नहीं। प्राचीन आस्थाओं में विश्वास करने वाली रमणी को शरतचन्द्र का समर्थन सहज ही में प्राप्त हो जाता है। डा० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त ने शरतचन्द्र के इस दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए लिखा है—"शरतचन्द्र-साहित्य में नये युग की नारी का परिचय नहीं है। उनके साहित्य में नारी केवल स्नेह और ममता जानती है और उनके उपन्यासों का क्षेत्र राजनीति का क्षेत्र भी नहीं है। वह है माया-ममता का क्षेत्र और उसमें नारी का अचल कर्तव्य या हुकूमत है।"[११] शरतचन्द्र ने अपने उपन्यास-साहित्य का क्षेत्र प्रायः पारिवारिक जीवन तक ही सीमित रखा है। इसी से शरतचन्द्र ने स्वाधीनता-संग्राम में नारी के सहयोग और महत्त्व को स्वीकार तो किया है, किंतु प्रेमचन्द की भांति 'सुखदा' (कर्मभूमि) जैसी नारी-पात्र की कल्पना अपने उपन्यास-साहित्य में नहीं की है। 'पथ के दावेदार' की 'सुमित्रा' की राजनैतिक क्रियाशीलता सीमित और कुछ विशेष परिस्थितियों से ही प्रेरित है।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों में नारी की विभिन्न परिस्थितियों

करते हैं किन्तु साथ ही उसके सामाजिक उत्तरदायित्व तथा पुरुष के साथ उसके समान अधिकार की ओर भी संकेत करते हैं। इसीसे प्रेमचन्द के उपन्यास-साहित्य में नारी, पुरुष के साथ-साथ पैर बढ़ाती हुई दिखाई पड़ती है। यहाँ प्रेमचन्द की नारी-विषयक भावना अधिक प्रगतिशील दिखाई पड़ती है।

शरत्चन्द्र के उपन्यास-साहित्य में नारी की स्वतन्त्रता तथा कुसंस्कारों से मुक्ति का समर्थन किया गया है। शरत्चन्द्र के नारी-विषयक विचारों में गांधी जैसा सुधारवादी तथा जन-आन्दोलन से युक्त स्वर नहीं मिलता। यद्यपि उन्होंने स्वराज्य-आन्दोलन में नारी के सहयोग की आवश्यकता का अनुभव किया है। जैसा अपने एक निबन्ध में शरतचन्द्र ने स्वयं लिखा है—"जिस चेष्टा में, जिस आयोजन में, देश *नारियाँ सम्मिलित नहीं हैं, उनकी सहानुभूति नहीं है, इस सत्य* को उपलब्ध क का कोई ज्ञान, कोई शिक्षा, कोई साहस आज तक जिनको हमने नहीं दिया, उन केवल घर के घेरे के भीतर बिठाकर, केवल चरखा कातने के लिए बाध्य करके कोई बड़ी वस्तु प्राप्त की जा सकेगी। औरतों को हमने जो केवल औरत बनाकर रखा है, मनुष्य नहीं बनने दिया, उसका प्रायश्चित स्वराज्य के पहले देश को कर ही चाहिये। अत्यन्त स्वार्थ की खातिर जिस देश ने जिस दिन से केवल उसके सतीत्व को ही बड़ा करके देखा है, उसके मनुष्यत्व का कोई ख्याल नहीं किया, उसे उसका देना पहले चुका देना ही होगा।"[10] किन्तु शरतचन्द्र के उपन्यास-साहित्य में उक्त उक्त दृष्टिकोण कहीं भी स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं हुआ है और न ऐसे पात्रों का सृज ही किया गया है जो इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हों। शरतचन्द्र के उपन्यास साहित्य में भारतीय नारी का आधुनिकतम रूप भी अंकित हुआ है किंतु वह उन्हें ग्राह नहीं। प्राचीन आस्थाओं में विश्वास करने वाली रमणी को शरतचन्द्र का समर्थ

'गृहदाह' के माध्यम से पुरुष के अनधिकार को चुनौती दी गयी है।

शरतचन्द्र ने भी अपने उपन्यासों में नारी के प्रति पुरुष के अत्याचारों के विरुद्ध सम्पूर्ण शक्ति लगा दी है। समय-समय पर पुरुष ने समस्त विधि-विधानों को अपने पक्ष में कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ कर लिया। परिणामतः नारी को न्याय-संगत अधिकार से भी वंचित होना पड़ा। शरतचन्द्र ने पुरुष के इस अमानवीय काम का विरोध किया है। अपने अत्यन्त क्रान्तिकारी सामाजिक उपन्यास 'शेषप्रश्न' में 'कमल' के माध्यम से इस विचार को व्यक्त किया है "इसी तरह संसार में न्याय चिरकाल से लांछित होता आ रहा है, नारी अपमानित होती रही है और पुरुष का चित्त संकीर्ण और कलुषित होता गया है। इसी से इस झूठे मामले का आज तक फैसला नहीं हुआ। अविचार से सिर्फ एक ही पक्ष दण्डित नहीं होता अजित बाबू दोनों पक्षों का सर्वनाश होता है।"[१६] पुरुष ने नारी के प्रति जो अन्याय किया है उसके विरुद्ध शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों में अनेक स्थलों पर विचार व्यक्त किए हैं। नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व को तो पुरुष ने स्वीकार किया ही नहीं साथ ही उसकी किसी भूल को भी नहीं क्षमा कर सका है। पुरुष को नारी पर आधिपत्य रखने की भावना का घोर विरोध किया है, तथा उसके न्यायोचित अधिकारों का समर्थन किया है। प्राचीन आस्थाओं में विश्वास रखने वाले 'अपूर्व' (पथ के दावेदार) के द्वारा भी नारी के अधिकारों का समर्थन शरतचन्द्र ने किया है— "नारी की स्वाधीनता के विषय में उसके मन ने कभी गवाही न दी। उसकी रुचि और जन्मगत संस्कार हर वक्त उसके कान में कहते रहे हैं कि इसमें मंगल नहीं है, यह अच्छा नहीं, पर साथ ही शास्त्रीय अनुशासनों में इनके प्रति बहुत अविचार किया गया है, इस सत्य को भी इसका न्यायनिष्ठ चित्त किसी तरह अस्वीकार नहीं कर पाता।"[१७] शरतचन्द्र ने अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'नारी का मूल्य' में भी नारी-विषयक विचारों का विस्तृत विवेचन कर, पुरुष की भावनाओं की आलोचना की है—"मिथ्या की कभी जीत नहीं होती यदि इस हिसाब से जाचकर देखा जाय तो नारी का जो मूल्य पुरुष अब तक देता आया है उससे यदि अब तक बराबर उसका भला ही होता आया हो तो निश्चय ही यह मानना पड़ेगा कि वह नारी का प्राप्य मूल्य है, और नहीं तो यह बात स्वीकृत करनी पड़ेगी कि पुरुषों ने नारी को अब तक ठगा है, उसे सताया है और साथ ही साथ समाज पर अकल्याण भी लाकर लाद दिया है।"[१८]

नारी को उसका न्याय-संगत अधिकार दिलाने का आग्रह प्रेमचन्द और शरतचन्द्र में एक-सा है। दोनों ही उपन्यास[illegible]ों का विचार है कि मनुष्य न तो सिर्फ पुरुष ही है और न केवल स्त्री। स्त्री और पु[illegible]ष मिलकर ही परिपूर्ण मनुष्य बनता है। परिणामतः चिरकाल से प्रवचित नारी के [illegible] बहुत बड़े समर्थक हैं। प्रेमचन्द और

है, लेकिन अंधी नकल तो मानसिक दुर्बलता का ही लक्षण है। पश्चिम की स्त्री आज गृह-स्वामिनी नहीं रहना चाहती। भोग की विदग्ध लालसा ने उसे उच्छृंखल बना दिया है। वह अपनी लज्जा और गरिमा को जो उसकी सबसे बड़ी विभूति थी, चंचलता और आमोद-प्रमोद पर होम कर रही है।"[१४] प्रेमचन्द ने आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र नारी के दुष्परिणामों को जानते हुए भी, नारी को कुछ न कुछ काम करने के लिए प्रेरित किया है। 'मालती' के सांस्कृतिक जीवन को प्रेमचन्द पसन्द अवश्य नहीं करते किन्तु नारी स्वावलम्बन के लिए उसके व्यवसाय का समर्थन अवश्य करते हैं। 'सुखदा' (कर्मभूमि) और 'अहल्या' (कायाकल्प) अवसर पड़ने पर जीविका चलाने में स्वयं समर्थ हुई हैं। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने नारी की आर्थिक समस्या के समाधान की ओर संकेत अवश्य कर दिया है।

शरतचन्द्र ने भी पाश्चात्य संस्कृति के नारी-विषयक आर्थिक दृष्टिकोण का विरोध उससे उत्पन्न दुष्परिणामों के कारण ही किया है। शरतचन्द्र ने स्पष्ट कहा है—"दूसरों के अनुकरण से हमारा कल्याण नहीं हो सकता। भारतीय नारी की जो विशिष्टता है, जो अपनी चीज है, अगर लोभ और मोहवश होकर हम उससे उसे भ्रष्ट करें तो हर तरफ से असफल होंगे।"[१५] इस दृष्टिकोण को शरतचन्द्र ने अपने एक पत्र में भी व्यक्त किया है—"केवल उनका बनना बिगड़ा का प्रदर्शन और कुसंस्कार वर्जित रोशनी का दम्भ और जो सच नहीं है उसका मान इन्हीं बातों को देखकर मुझे इतनी अरुचि है।"[१६]

आर्थिक दृष्टि से नारी की स्थिति वेश्या और विधवा के रूप में अत्यन्त कारुणिक होती है। नारी के इन दोनों स्वरूपों पर प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों में व्यापक रूप से विचार हुआ है। दोनों ही उपन्यासकारों ने वेश्या और विधवा के जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण अपने-अपने उपन्यासों में किया है। पारिवारिक उत्पीड़न, पति के अमानुषीय व्यवहार तथा अर्थाभाव से पीड़ित होकर जब कभी नारी विद्रोह करने के लिए प्रस्तुत होती है तो उसकी स्थिति अत्यन्त भयंकर होती है। समाज उसे स्वावलम्बी नहीं बनने देता, उसे स्वतन्त्र रूप से जीविका उपार्जन करने में अनेक बाधाएं उत्पन्न करता है। परिणामतः परिस्थितियों से घबराकर नारी अर्थागम के सस्ते और निम्नकोटि के उपाय ग्रहण करती है। इस प्रकार अपने को प्रसाधित और शृंगार से युक्त कर, स्त्री पुरुषों के आकर्षण और विलास की वस्तु बन जाती है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास 'सेवासदन' में नारी की ऐसी ही परिस्थितियों का चित्रण किया है। दारिद्र्य की कारा में बन्दी न रह सकने पर 'सुमन' को वेश्या होने के लिए बाध्य होना पड़ा। ऐसी ही नारियों के सम्बन्ध में प्रेमचन्द ने लिखा है—"वे स्त्रियां बहुत ही सुन्दर हैं, बहुत ही कोमल हैं, पर उन्होंने अपने

वहू' परिवार मे गृहिणी की दयनीय आर्थिक स्थिति के ज्वलत उदाहरण हैं। 'धनिया' ने आर्थिक अभाव के कारण गृहस्थी के सुख का कभी अनुभव नही किया। धन के अभाव मे भी गृहस्थी चलाने का भार उसी पर रहा है। इसी प्रकार 'सुभद्रा' और 'बिराज बहू' का सम्पूर्ण जीवन दारिद्र्य से सघर्ष करने मे ही व्यतीत हुआ है।

नारी की आर्थिक समस्या ने उसके प्रेम को भी प्रभावित किया है। परिणामत. नारी को कभी अपना सम्पूर्ण जीवन वैधव्य मे ही व्यतीत कर देना पड़ा है तथा कभी प्रेम के साधारण स्वरूप को स्वीकार करना पडा है। प्रेमचन्द ने 'कायाकल्प' मे नारी के इस पक्ष को भी स्पर्श किया है। 'मनोरमा' को 'चक्रधर' की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए 'ठाकुर विशाल सिह' से विवाह करना पडता है। यहा नारी का प्रेम आर्थिक परिस्थितियों के कारण ही कुचल गया है। 'मनोरमा' ने अपने इस विचार को स्पष्ट स्वीकार किया है—"ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूँ, मैं कभी भोग-विलास में लिप्त न हुई थी। धन से मुझे प्रेम है, लेकिन इस लिए कि उससे मैं कुछ सेवा कर सकती और करने वालो की कुछ मदद कर सकती।"[२२] शरतचन्द्र ने भी 'परिणीता' की 'ललिता' और 'पथ निर्देश' की 'हेमागिनी' के द्वारा नारी की आर्थिक निर्भरता से उत्पन्न प्रेम की स्थिति का चित्रण किया है। 'ललिता' और 'हेमागिनी' दोनो ही स्त्रियों पर पुरुष की आर्थिक सहायता का बल, हृदय की भावना की अपेक्षा अधिक है। 'चरित्रहीन' की ['किरणमयी' पर 'डा० अनगपाल' ने अपनी आर्थिक सहायता के बल पर ही दावा करना चाहा है तथा 'किरणमयी' ने भी उसके हलके प्रेम को स्वीकार किया है।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों मे भारतीय नारी के आर्थिक स्वातंत्र्य के जो चित्र प्रस्तुत किये हैं उससे यह स्पष्ट है कि दोनों उपन्यासकार किन्हीं निश्चित समाधानो पर नही पहुच सके हैं। दोनों ही उपन्यासकार भारतीय नारी की आर्थिक निर्भरता को योरप के ढर्रे पर ले जाने के पक्ष मे नही हैं। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र यह भली भाति जानते हैं कि योरप के अनुकरण पर भारतीय नारी के आर्थिक प्रश्नों को सुलझाने से सम्पूर्ण भारतीय नारी-समाज मे एक व्यापक क्रांति आ जाने की सम्भावना है जिससे भारतीय नारी की निजी विशेषताओं का अन्त हो जाना नितान्त सम्भव है। परिणामतः दोनों ही उपन्यासकार अत्याधुनिक नारी का भी विरोध करते हैं। प्रेमचन्द के सम्बन्ध मे यह बात 'गोदान' की 'मालती' के सदर्भ मे स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। 'मालती' के प्रति प्रेमचन्द की कोई सहानुभूति नही है तथा प्रो० मेहता प्रूफ देखने वाली स्त्री को अपनी पत्नी बनाने के पक्ष मे नहीं हैं। 'प्रो० मेहता' द्वारा इस दृष्टिकोण को और भी अधिक स्पष्ट कर दिया गया है—"पश्चिम मे जो चीजें अच्छी हैं वह उनमे तो लीजिये, संस्कृति में सदैव आदान-प्रदान होता आया

है, लेकिन असी नग्न मो मानसिक दुर्बलता का ही लक्षण है। पश्चिम की स्त्री आज गृह-स्वामिनी नहीं रहना चाहती। भोग की विशद लालसा ने उसे उच्छृंखल बना दिया है। वह अपनी लज्जा और गरिमा को जो उसकी सबसे बड़ी विभूति थी, चंचलता और आमोद-प्रमोद पर होम कर रही है।"[१४] प्रेमचन्द ने आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र नारी के दुष्परिणामो को जानते हुए भी, नारी को कुछ न कुछ काम करने के लिए प्रेरित किया है। 'मालती' के सांस्कृतिक जीवन को प्रेमचन्द पसन्द अवश्य नही करते किन्तु नारी स्वावलम्बन के लिए उसके व्यवसाय का समर्थन अवश्य करते हैं। 'सुखदा' (कर्मभूमि) और 'अहल्या' (कायाकल्प) अवसर पड़ने पर जीविका चलाने मे स्वय समर्थ हुई है। इन उदाहरणो से यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने नारी की आर्थिक समस्या के समाधान की ओर सकेत अवश्य कर दिया है।

शरतचन्द्र ने भी पाश्चात्य संस्कृति के नारी-विषयक आर्थिक दृष्टिकोण का विरोध उससे उत्पन्न दुष्परिणामो के कारण ही किया है। शरतचन्द्र ने स्पष्ट कहा है—"दूसरो के अनुकरण मे हमारा कल्याण नही हो सकता। भारतीय नारी की जो विशिष्टता है, जो अपनी चीज है, अगर लोभ और मोहवश होकर हम उसमे उसे भ्रष्ट करें तो हर तरफ से असफल होंगे।"[१५] इस दृष्टिकोण को शरतचन्द्र ने अपने एक पत्र मे भी व्यक्त किया है—"केवल उनका बनना विद्या का प्रदर्शन और कुसस्कार वर्जित रोशनी का दम्भ और जो सब नही है उसका मान इन्ही बातों को देखकर मुझे इतनी अरुचि है।"[१६]

आर्थिक दृष्टि से नारी की स्थिति वेश्या और विधवा के रूप मे अत्यन्त कारुणिक होती है। नारी के इन दोनो स्वरूपो पर प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासो मे व्यापक रूप से विचार हुआ है। दोनो ही उपन्यासकारो ने वेश्या और विधवा के जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण अपने-अपने उपन्यासो में किया है। पारिवारिक उत्पीडन, पति के अमानुषीय व्यवहार तथा अर्थाभाव से पीडित होकर जब कभी नारी विद्रोह करने के लिए प्रस्तुत होती है तो उसकी स्थिति अत्यन्त भयकर होती है। समाज उसे स्वावलम्बी नही बनने देता, उसे स्वतत्र रूप से जीविका उपार्जन करने मे अनेक बाधाए उत्पन्न करता है। परिणामत परिस्थितियो से घबराकर नारी अर्थागम के सस्ते और निम्नकोटि के उपाय ग्रहण करती है। इस प्रकार अपने को प्रसाधित और शृगार से युक्त कर, स्त्री पुरुषों के आकर्षण और विलास की वस्तु बन जाती है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास 'सेवासदन' मे नारी की ऐसी ही परिस्थितियो का चित्रण किया है। दारिद्र्य की कारा मे बन्दी न रह सकने पर 'सुमन' को वेश्या होने के लिए बाध्य होना पड़ा। ऐसी ही नारियो के सम्बन्ध मे प्रेमचन्द ने लिखा है—"वे स्त्रिया बहुत ही सुन्दर हैं, बहुत ही कोमल हैं, पर उन्होंने अपने

स्वर्गीय गुणों का कैसा दुरुपयोग किया है ? उन्होने अपनी आत्मा को कितना गिरा दिया है ? हां केवल इन रेशमी वस्त्रों के लिए, इन जगमगाते हुए आभूषणो के लिए उन्होंने अपनी आत्मा को विक्रय कर डाला है। वे आंखें जिनमे प्रेम की ज्योति निकलनी चाहिए थी, कपट, कटाक्ष और कुचेष्टा से भरी हुई हैं। वे हृदय जिनमें विशुद्ध निर्मल प्रेम का स्रोत बहना चाहिए था, कितनी दुर्गन्ध और विषाक्त मलिनता से ढके हुए हैं।"[२७] नारी के वेश्या हो जाने पर पुरुष उस स्त्री की कृपा का आकांक्षी हो जाता है। पुरुष की कलुषित भावना का विरोध प्रेमचन्द ने 'सुमन' के माध्यम से किया है—"तुम आज अपनी बदनामी को डरते हो, तुमको इज्जत बड़ी प्यारी है। अभी एक वेश्या के साथ बैठे हुए फूले न समाते थे। उसके पैरो तले आंख बिछाते थे, तब इज्जत न जाती थी। आज तुम्हारी इज्जत मे बट्टा लगा है।"[२८] नारी के वेश्या होने के कारण को भी प्रेमचन्द ने स्पष्ट कर दिया है—"साहसी पुरुष को कोई सहारा नहीं होता तो वह भीख मागता है लेकिन स्त्री को कोई सहारा नही तो वह लज्जाहीन हो जाती है।"[२६]

शरतचन्द्र ने नारी के वेश्या होने की परिस्थितियो पर विचार किया है। शरतचन्द्र ने अपने एक पत्र में लिखा है—"अनेक दु.खो से ही नारी अपना धर्म नष्ट करने के लिए तैयार होती है और जिस लिए होती है वह पर-पुरुष का रूप नहीं और किसी बीभत्स प्रवृत्ति का लोभ भी नहीं। जब वे अपनी इतनी बड़ी वस्तु को नष्ट करती हैं तो बाहर आकर किसी आश्चर्य वस्तु को पाने के लोभ से नहीं किसी बाध से अपने को मुक्त करने के लिए ही इस दु.ख को सिर पर उठा लेती हैं।"[३०] शरतचन्द्र ने वेश्या बनने के उपरात समाज के खोखलेपन का प्रदर्शन किया है। समाज ने परिस्थितिवश नारी के पतन को सुधारने का कभी कोई प्रयत्न नही किया किंतु उसके वेश्या रूप मे परिवर्तन हो जाने पर, उस पर मुग्ध हुआ है—"चाहे जिस कारण से हो, जो नारी केवल एक बार भी भूल करती है, उसके साथ हिन्दू किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं रखता। इसके उपरात क्रमशः जब वह भूल उसके जीवन मे पाप रूप से प्रतिष्ठित हो जाती है और जब वह वेश्या हो जाती है तब फिर उसी वेश्या के अभाव मे हिन्दू का स्वर्ग भी सर्वांग सुन्दर नहीं होता। उसकी इतनी अधिक आवश्यकता मानी जाती है।"[३१]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनो ही उपन्यासकारो ने वेश्या को नारीत्व का कलंक माना है। दोनों उपन्यासकारो ने वेश्यावृत्ति का घोर विरोध किया है तथा इस बात को स्पष्ट किया है कि वेश्याएं सदैव इसको त्यागने के लिए प्रस्तुत रहती है तथा नारी कभी इतने नीच कर्म के लिए अपना जीवन अर्पित नहीं करना चाहती है। प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' की 'सुमन' तथा 'गबन' की 'जोह

रम्पराओं और मान्यताओं का विरोध कर दोनों उपन्यासकारों ने विधवा के प्रेम
रने के अधिकार का समर्थन किया है। यह बात दोनों कथाकारों के उपन्यासों में
वस्तार से देखी जा सकती है। प्रेमचन्द का 'प्रतिज्ञा' उपन्यास विधवा-समस्या पर ही
ाधारित है। प्रस्तुत उपन्यास में प्रेमचन्द ने विधवा नारी की सामाजिक स्थिति का
वस्तार से चित्रण किया है तथा विधवा नारी के अतृप्त प्रेम की आकांक्षा को उद्-
ाटित कर उसे पूर्ववत् सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठित कराने का प्रयास किया है।
ति के अभाव में 'पूर्णा' का जीवन कितना कारुणिक हो सकता है, इस ओर उपन्यास-
ार ने स्पष्ट संकेत किया है। 'प्रेमाश्रम' की 'गायत्री' द्वारा भी प्रेमचन्द ने विधवा
ी कुंठित और दमित भावनाओं को अभिव्यक्त किया है। 'गायत्री' में विधवा हो जाने
र भी प्रेम करने की लालसा विद्यमान है। इसको प्रेमचन्द ने 'पूर्णा' और
ायत्री' के वैधव्य जीवन में उद्घाटित किया है तथा विधवा की प्रेम-भावना को
ौरमाहित कर उसकी परिणति विवाह में स्वीकार की है।

शरतचन्द्र के उपन्यासों में विधवा की दमित आकांक्षाएं और उसके प्रेम करने
ी भावना का उद्घाटन अनेक स्थलों पर हुआ है। शरतचन्द्र ने विधवा के प्रेम को
यायसंगत माना है तथा उसके प्रेम करने के अधिकार का बलपूर्वक समर्थन किया है।
जसका जो दावा है, जो अधिकार है, वह उसे पाने दो, वह चाहे जहां और चाहे जिसका
ो।"[29] शरतचन्द्र का यह सिद्धान्त सब कहीं ठीक बैठता है। इसी से शरतचन्द्र का
विचार है कि सब कुछ होकर भी नारी, नारी ही है। और नारी होकर उसमें
प्रेम-भावना का होना स्वाभाविक ही है। काल की छाया उसको प्रेम-भावना को
धुंधला कर सकती है, समाज आचरण और नीति का आवरण डाल सकता
है। किन्तु उसे मिटाया नहीं जा सकता। नारी विधवा होकर भी प्रेम कर सकती है
शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों में इस विचार की स्थापना की है। यह दृष्टिकोण 'श्री-
कान्त' की राजलक्ष्मी, 'चरित्रहीन' की 'किरणमयी' तथा 'सावित्री' और 'ग्रामीण समाज'
की 'रमा' द्वारा प्रस्तुत हुआ है। 'सावित्री' ने अपने प्रेम का समर्थन करते हुए स्पष्ट
कह दिया है - "मैं विधवा हूं, मुझ पर किसी का न्यायसंगत दावा नहीं है और तुम
भी अविवाहित हो, तुम्हारे हृदय के ऊपर किसी का अधिकार नहीं है, अतएव यह बात
तो समझना बहुत कठिन नहीं है कि मुझे प्यार करके तुमने कुछ अन्याय नहीं किया।"[30]

"ग्रामीण समाज' की विधवा 'रमा' ने भी प्रेम किया है। 'रमा' के प्रेम को
लेकर शरतचन्द्र पर अनेक प्रकार के आक्षेप हुए हैं। इसका उद्घाटन उन्होंने स्वयं किया
है। 'ग्रामीण समाज' के सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखते हैं - "उसकी विधवा
रमा ने अपने बाल बन्धु रमेश को प्यार किया था, इसके लिए मुझे बहुत झिड़कियां
और तिरस्कार सहना पड़ा है। एक विशिष्ट आलोचक ने ऐसा अभियोग भी किया

करते हुए उन्होंने लिखा है कि किस प्रकार समाज विधवाओं के लिए धनोपार्जन करने के लिए अवरोध उपस्थित करता है—"भले घर की विधवाओं को स्वाधीन रूप से शारीरिक परिश्रम करके जीविका अर्जन नही करने दिया जाता और इसका कारण यह है कि इसमे पितृ-कुल अथवा श्वसुर-कुल की मर्यादा की हानि होती है। लेकिन वास्तव मे भले घर में विधवाओं की जो अवस्था होती है वह किसी से छिपी नहीं है।"[३५]

हिन्दू पारिवारिक जीवन मे विधवा नारी भी एक समस्या रही है। सती-प्रथा का अन्त हो जाने के उपरांत समाज ने विधवा नारी को अनेक प्रकार से उत्पीडित किया है। समाज ने अपनी निषेधाज्ञाओ द्वारा विधवा की सामाजिक स्थिति को अत्यंत हीन बना डाला। विधवाओ के सामाजिक जीवन को सीमित कर उन्हे परिवार की सीमाओ मे बाध दिया गया। विधवाओ को सभी प्रकार की शृगारिक वस्तुओं के उपयोग करने का निषेध कर दिया गया। यद्यपि उत्तर भारत मे विधवाओ के ऊपर कड़े प्रतिबंध नही रहे हैं किंतु विधवाओ को हेय दृष्टि से यहा भी देखा जाता रहा है। बंगाल मे विधवाओं की स्थिति अत्यंत कारुणिक रही है। बंगाल मे विधवाओ के पारिवारिक कर्म को भी सीमित कर दिया गया। पूजा-पाठ के अतिरिक्त विधवाओ को घर की दासी के रूप मे ही प्रतिष्ठित किया गया। परिवार के बच्चों का पालन-पोषण तथा भोजन आदि बनाने का भार भी विधवाओ पर ही सौंपा जाता रहा है। शरतचन्द्र ने विधवाओं की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है—"राजा ने अपना काम कर डाला, लेकिन अब समाज रक्षकों का काम बढ गया। उन लोगो ने सोचा कि ऐसी आफत के समय चुपचाप बैंठे रहने से काम नही चलेगा। वे लोग कहने लगे कि म्लेच्छो ने हमारे धर्म पर ध्यान नही दिया और कानून बना दिया। लेकिन हम लोग भी सहज में नही छोड़ेंगे। हम यहीं बैठे-बैठे ही अपनी विधवाओं को 'देवी' बना डालेंगे। इसके बाद शास्त्रों मे से ऐसे बहुत से पुराने श्लोक ढूंढ निकाले गए जिनका इतने दिनों तक कभी कोई व्यवहार नहीं हुआ था और जो न जाने कहां पडे हुए थे और उन्ही श्लोकों का आधार लेकर लोकाचार की दुहाई देकर और सुनीति की पुकार मचाकर जितने प्रकार की कठोरताओ की कल्पना की जा सकती थी वे सभी कठोरताएं सब विधवाओं के सिर पर लादकर उन्हें नित्य थोडा-थोडा करके 'देवी' बनाने का काम शुरू कर दिया। वह आभूषण आदि न पहनें, वह दिन-रात मे केवल एक बार खावें, वह हड्डियां तोड़ डालने वाला परिश्रम करें, थान में से फाडी हुई और बिना किनारी की धोती पहनें क्योंकि वह देवी जो ठहरीं।"[३६]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने ऐसी ही विधवाओं को वाणी दी है। सामाजिक

था कि इतनी दुर्नीति को प्रश्रय देने से गाव में फिर कोई विधवा नही रहेगी।"[३९] इसका उत्तर भी शरतचन्द्र ने उसी निबन्ध में आगे दिया है—"इसको प्रश्रय देने से भला होगा या बुरा, हिन्दू समाज स्वर्ग में जायगा या रसातल मे, इस मीमासा का भार मेरे ऊपर नही है। रमा जैसी नारी और रमेश जैसे पुरुष किसी भी काल मे और किसी भी समाज मे दल के दल नही जनमते। दोनों के सम्मिलित पवित्र जीवन की महिमा की कल्पना करना कठिन नही है। किन्तु हिन्दू-समाज मे इस समाधान के लिए जगह न थी।"[४०]

'सावित्री' 'किरणमयी' और 'रमा' के द्वारा विधवा जीवन की करुणा दिखाना शरतचन्द्र का उद्देश्य है। इन विधवाओं के द्वारा उन्होने नारी की मर्मान्तिक वेदना का उद्घाटन किया है। इसी से शरतचन्द्र ने विधवा-विवाह का भी समर्थन किया है—"कितने ही बडे और सुन्दर जीवन समाज में केवल विधवा विवाह नही होने के कारण ही सदा के लिए व्यर्थ और निष्फल हो गए हैं।"[४१] 'शेषप्रश्न' को 'कमल' के माध्यम से शरतचन्द्र ने अपने इस विचार की पुष्टि की है—"पति की स्मृति को छाती से चिपटाये रहकर विधवाओं को दिन काटने चाहिये, इसके समाजरवतः सिद्ध पवित्रता की धारणा को स्वीकार करने मे मुझे तब तक हिचकिचाहट रहेगी जब तक कि कोई प्रमाणित नही कर देगा।"[४२] किन्तु समाज की परिस्थितियों से शरतचन्द्र भली-भांति परिचित थे। वे यह भी जानते थे कि समाज मे विधवा को सम्मान और आदर की दृष्टि मे नही देखा जायगा। 'श्रीकांत' मे इस विचार को शरतचन्द्र ने व्यक्त भी किया है—"ये लोग विधवा विवाह की पत्नी को बाजार की वेश्या की अपेक्षा ऊँचा आसन नही देते।"[४३]

प्रेमचन्द्र और शरतचन्द्र दोनो ही उपन्यासकार वेश्या और विधवा को उच्च सामाजिक स्तर पर प्रतिष्ठित करने के पक्षपाती हैं। किन्तु शरतचन्द्र को अपने उपन्यासो में विधवाओं और पतिताओं के प्रति सहानुभूति और संवेदना व्यक्त करने के कारण अनेक आक्षेप सुनने पडे हैं। शरतचन्द्र को पतिताओ, लाछिताओ का समर्थक कहा गया। शरतचन्द्र ने इस सम्बन्ध मे अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहा है—"आत्मरक्षा के बहाने भी मनुष्य का असम्मान करना मुझसे नही होता। देखो न लोग कहते हैं कि मैं पतिताओं का समर्थन करता हूँ। समर्थन मैं नही करता, केवल उनका अपमान करने को मेरा मन नही चाहता। मैं कहता हूँ कि वे भी मनुष्य हैं, उन्हे भी फरियाद करने का अधिकार है। और महाकाल के दरबार मे उसका विचार एक दिन अवश्य होगा। अथच सस्कारो से अन्धे हो रहे लोग इस बात को किसी तरह स्वीकार करना नही चाहते।"[४४] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि शरतचन्द्र के हृदय मे पतिताओ के प्रति आत्मिक सवेदना और सम्मान की भावना थी। शरतचन्द्र

की 'कमल' भी सामाजिक संस्थाओं को तोड़ने की क्षमता नहीं रखती है तथा 'पार्वती' और 'अचला' की आत्मघातक मृत्यु या मृत्यु पीडा-सी घुटन उनके प्रेम की परिणति ही कही जा सकती है।

विवाह और प्रेम के सम्बन्ध में प्रेमचन्द परम्परावादी हैं। प्रेमचन्द प्रेम की परिणति विवाह में ही स्वीकार करते हैं। यौन-प्रवृत्ति का समर्थन न करने के कारण ही प्रेमचन्द ने स्वच्छंद प्रेम को प्रोत्साहित नहीं किया है तथा परम्परायुक्त वैवाहिक संस्था में गहरी आस्था व्यक्त की है। प्रेमचन्द विवाह-बन्धन को धर्म और कर्त्तव्य पर आधारित मानते हैं। जैसा उन्होंने स्वयं कहा है—"हमारे यहाँ विवाह का आधार प्रेम और इच्छा पर नहीं धर्म और कर्त्तव्य पर रखा गया है।"[४७] वस्तुतः प्रेमचन्द ने विवाह को सामाजिक समझौता माना है तथा उसकी पवित्रता को अपने उपन्यासों में सुरक्षित रखा है। यह बात निम्नांकित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाती है—"विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूँ।"[४८] तथा 'प्रिये तुम्हें मालूम है, विवाह का संबंध देह से नहीं आत्मा से है।"[४९]

शरतचन्द्र, विवाह की प्रचलित पद्धति के पूरे विरोधी हैं। उनके अनुसार प्राचीन वैवाहिक नियम अहितकर, निष्ठुर और नैतिकता विहीन हैं। अतः शरतचन्द्र दो हृदयों के सच्चे मिलन को ही विवाह समझते हैं—"मन का मिलन ही तो सच्चा विवाह है। नहीं तो विवाह के मंतर चाहे भाषा में पढ़े जायं, चाहे संस्कृत में, भट्टाचार्य महाशय पढ़ें, चाहे आचार्य महाशय पढ़ें इससे क्या होता जाता है।"[५०] इस कारण शरतचन्द्र विवाह को संसार में होने वाली अनेक घटनाओं में एक घटना मात्र ही मानते हैं—"संसार में होने वाली अनेक घटनाओं में से विवाह भी एक घटना है, उसमें ज्यादा कुछ नहीं। उसी को जिस दिन से नारी का सर्वस्व मान लिया गया है उसी दिन से स्त्रियों के जीवन की सबसे बड़ी ट्रेजडी शुरू हो गयी है।"[५१] यहाँ शरतचन्द्र ने विवाह-विषयक विचार को अत्यन्त स्पष्ट कर दिया है। वे विवाह को नारी-जीवन की चरम सार्थकता नहीं स्वीकार करते। साथ ही शरतचन्द्र इस बात को बहुत बड़ा अन्याय समझते हैं कि स्त्री की इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह कर दिया जाय—"भला इस संसार में ऐसा कौन-सा सभ्य देश है जहाँ इतना बड़ा अन्याय हो सकता है? क्या औरतों के जान नहीं होती? उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह करके इस प्रकार जन्म-भर उन्हें जलाने का अधिकार किसको है और कौन ऐसा देश है जहाँ की स्त्रियाँ इच्छा करने पर इस प्रकार के ब्याह पर लात मार और उसे तोड़कर जहाँ जी चाहे वहाँ नहीं जा सकती।"[५२] यहाँ शरतचन्द्र के दृष्टिकोण में प्रेमचन्द से भिन्नता भी देखी जा सकती है। शरतचन्द्र विवाह-बंधन की पवित्रता को धार्मिकता से संलग्न नहीं मानते। एक अन्य स्थल पर भी शरतचन्द्र ने विवाह के धार्मिक स्वरूप

है। परिणामत: उनके उपन्यासों में नारी के स्वच्छंद प्रेम का संकेत-भर किया गया है। उसमें उनके परम्परागत संस्कारों से विद्रोह का स्वर नहीं फूटा है। वस्तुत: नारी की प्रेम-भावना के सम्बन्ध में प्रेमचन्द का दृष्टिकोण उस भारतीय विचारधारा के अनुकूल है जिसके द्वारा प्रेम और आराधना को अन्योन्याश्रित माना गया है। भारतीय चिन्ता-धारा में प्रेम और आराधना को स्पष्ट नहीं किया गया है। परिणामत: प्रेमचन्द प्रेम में उन्मत्त हो जाने की भावना के प्रबल समर्थक हैं तथा उन्होंने स्वजाति रति और अवैध प्रेम जैसी समस्याओं की उपेक्षा की है। 'रंगभूमि' की 'सोफिया' तथा 'कर्मभूमि' की 'मुन्नी' के परित्राण में यही दृष्टि उभरकर सामने आती है।

नारी की प्रेम-भावना को लेकर शरतचन्द्र का दृष्टिकोण प्रेमचन्द से भिन्न है। शरतचन्द्र भी नारी की प्रेम-भावना के संबन्ध में मर्यादा और संयम के समर्थक हैं किंतु इन शब्दों के पीछे निहित स्वार्थ के वे विरोधी हैं। शरतचन्द्र के अनुसार इन शब्दों को समाज ने अतिरंजित कर डाला है। इसी से शरतचन्द्र ने नारी की प्रेम-भावना की वास्तविकता का समर्थन किया है। 'शेषप्रश्न' की 'कमल' द्वारा शरतचन्द्र ने नारी के प्रेम को बन्धनों में बाँधकर संकुचित न करने का ही आग्रह किया है—"एक दिन जिससे प्रेम किया है फिर किसी दिन किसी कारण उसमें किसी परिवर्तन का अवकाश नहीं हो सकता, मन का यह अचल अडिग जड़ धर्म न तो स्वस्थ है और न सुन्दर है।"[११] शरतचन्द्र ने रमणी के प्रेम को अपने उपन्यासों में विभिन्न परिस्थितियों और विभिन्न रूपों में देखा है तथा उन्होंने नारी हृदय की दुर्बलता को सहानुभूति-पूर्वक सोचा है। अतः नारी की प्रेम-भावना के सम्बन्ध में प्रेमचन्द ने जहाँ काठिन्य को अपनाया है वहाँ शरतचन्द्र ने रमणी के प्रेम को भावुकतापूर्वक सोचा है। शरतचन्द्र का विचार है कि नारी की प्रेम-भावना को न दबाया जाय। यदि नारी को प्रेम करने का अवसर न दिया गया तो उसका अज्ञात विक्षोभ अपने से ही निकल भागने की चेष्टा करता है और यौवन और माधुर्य से पूर्ण कितनी ही सुकुमार नारियाँ कठोर हो उठती हैं और अपने श्रेष्ठ धर्म को त्यागने के लिए ही प्रस्तुत हो जाती हैं। शरतचन्द्र के इस दृष्टिकोण के समर्थन के लिए 'चरित्रहीन' की किरणमयी को प्रस्तुत किया जा सकता है। स्वच्छंद प्रेम तथा अवैध प्रेम के सबन्ध मे शरतचन्द्र ने जिस भावुकतापूर्ण दृष्टि से विचार किया है उसको व्यावहारिक रूप अपने उपन्यासों मे नहीं दे सके हैं। 'देवदास' की 'पार्वती' का विवाह हो जाने के उपरात 'देवदास' के प्रति 'पार्वती' की भावनाओं को प्रेमसी के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। 'अचला' के द्विविध प्रेम को अत्यंत सहानुभूतिपूर्वक अंकित किया गया है। किन्तु अवैध प्रेम के इन परिणामो का समर्थन शरतचन्द्र समाज-शक्ति की मान्यता को तोड़ कर नही कर सके हैं। परिणामतः स्वच्छंद प्रेम अथवा अवैध प्रेम का तर्कपूर्ण समर्थन करने वाली 'शेषप्रश्न'

और वस्तु है। प्रेम चित्त की प्रवृत्ति है और ब्याह एक पवित्र धर्म है।"[२७] 'रंगभूमि' में भी प्रेम के इसी तत्त्व का समर्थन करते हुए प्रेमचन्द कहते हैं—"प्रेम मे प्रतिकार नही होता। प्रेम अनन्त क्षमा, अनन्त उदारता, अनन्त धैर्य से परिपूर्ण होता है।"[२८]

शरत्चन्द्र, प्रेम को चित्त की प्रवृत्ति नहीं, नारी की मूल भावना मानते है। इसी से शरत्चन्द्र ने वैवाहिक मंत्रो की व्यर्थता और प्रेम के अभाव में दाम्पत्य-जीवन की निस्सारता का चित्रण किया है। इस सम्बंध मे शरतचन्द्र का दृष्टिकोण प्रेमचन्द से नितांत भिन्न है। प्रेमचन्द ने परम्परागत विचारो के अनुकूल दाम्पत्य-प्रेम का समर्थन किया है तथा उसे नैतिकता और धार्मिकता से सम्बद्ध किया है। शरत्चन्द्र ने प्रेम को ही दाम्पत्य-जीवन मे महत्त्व दिया है तथा प्रेम के अभाव में दाम्पत्य-जीवन की कटुता का अंकन किया है। इस दृष्टिकोण को शरतचन्द्र के उपन्यासों मे देखा जा सकता है।

शरतचन्द्र ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'शेषप्रश्न' की कथा का आधार पुरुष और नारी के पारस्परिक सम्बन्ध और प्रेम को बनाया है। 'कमल' के माध्यम से प्रेमहीन दाम्पत्य-जीवन के त्याग तथा पुन: प्रेम के आधार पर ही नव दाम्पत्य-जीवन का समर्थन किया गया है। इतना ही नही 'कमल' ने अपने पक्ष का तर्कपूर्ण समर्थन करते हुए अतीत के दाम्पत्य-प्रेम का खण्डन किया है। इसी से 'आशुबाबू' के आदर्श की भी आलोचना हुई है और अंत मे 'कमल' ने 'आशुबाबू' को भी अपने पक्ष मे कर लिया है। अपनी स्वर्गवासिनी पत्नी की प्रशंसा करने वाले 'आशुबाबू' भी अंत मे 'कमल' के दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए पाये जाते हैं—'आशुबाबू' कहने लगे—"कमल तुम ही उसकी आदर्श हो पर चाद की चादनी मानो सूर्य-किरणो से भी बढ गई है। तुमसे जो कुछ उसने पाया है, अपने हृदय के रस मे भिगोकर स्निग्ध माधुर्य के साथ उसने उसे न जाने कितनी तरफ बिखेर दिया है। स्त्री का प्रेम मैंने पाया था, उसका स्वाद मैं पहचानता हू, स्वरूप जानता हू, परन्तु इस नवीन तत्त्व ने कि नारी के प्रेम का वह सिर्फ एक ही पहलू था, सहसा आज मुझे आच्छन्न कर दिया है। इसमे न जाने कितनी बाधा है, न जाने कितनी व्यथा है, अपने को विसर्जन करने की न जाने कितनी बिन जानी तैयारिया हैं। यद्यपि मैं उन्हे हाथ पसारकर ले नहीं सका, पर क्या कहके उसे नमस्कार करू सो भी मेरी समझ में नही आ रहा है कमल।"[२९]

शरतचन्द्र का विचार है कि दाम्पत्य-जीवन मे पुरुष-नारी के बीच संतुलन की स्थापना मंत्रो की आवृत्तिया नहीं कर सकती। पति के प्रति सेवा का भाव वैदिक मंत्रों के जोर से नही उत्पन्न किया जा सकता। विवाह के अर्थहीन नियम सुख और आनन्द नहीं दे सकते, केवल प्रेम के बल पर ही दाम्पत्य-जीवन शांत और

का खण्डन बड़े सशक्त शब्दों में किया है—"हमारे देश में छोटी-बड़ी सभी जातियों में सिर्फ ब्याह ही नहीं है बल्कि एक धर्म है।"[४३] इसी की विवेचना शरतचन्द्र ने आगे भी की है "इसे अगर धर्म ही समझ लिया है तो फिर यह शिकायत ही किस बात की ? और जिस धर्म-कर्म में मन प्रसन्न न होकर ग्लानि के भार से काला ही होता रहता है उसे धर्म समझ कर अंगीकार ही कैसे किया जाता है।"[४४] इसी कारण शरतचन्द्र ने मन्त्रों की व्यर्थता और विवाह के अस्थायी आनंद की ओर भी संकेत किया है-- "ब्याह के मंत्र कर्तव्य बुद्धि दे सकते हैं, सहमरण की प्रवृत्ति भी दे सकते हैं किन्तु माधुर्य देने की शक्ति उनमें नहीं है।"[४५] शरतचन्द्र ने विवाह-बंधन को मान्यता न देकर नारी के प्रेम करने की आकांक्षा का समर्थन किया है।

विवाह-बंधन को पवित्र मानने के कारण ही प्रेमचन्द ने दाम्पत्य-जीवन में भी प्रेम की उपेक्षा विवाह-बंधनों की निष्ठुरता को प्रधानता दी है। परिणामतः अनमेल विवाह तथा पति के अमानुषिक व्यवहार के विरुद्ध प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में विद्रोह नहीं किया है। सम्भवतः इस संबंध में नारी के विद्रोह को प्रेमचन्द कल्याणकारी नहीं समझते। अनमेल विवाह और कलहपूर्ण दाम्पत्य जीवन की कारा में प्रेमचन्द ने 'निर्मला' को बंदी रखा है, अपने वृद्ध पति को प्रेम न कर सकने पर भी गार्हस्थिक जीवन को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कराया है किन्तु इस सब के विरुद्ध आवाज नहीं उठाई गयी है। इसका कारण वैवाहिक अनुष्ठानों में प्रेमचन्द की निष्ठा और परम्परा-प्रियता है। प्रेमचन्द, दाम्पत्य-जीवन में प्रेम को नितान्त उपेक्षित करने के पक्ष में भी नहीं हैं। दाम्पत्य-जीवन में प्रेम के महत्त्व को उन्होंने स्वीकार किया है जैसा उनके अनेक उपन्यासों में व्यक्त भी हुआ है। 'कर्मभूमि' की 'सुखदा' और 'अमरकांत' के दाम्पत्य-जीवन में तनाव का कारण प्रेम का अभाव है। एक-दूसरे को समझने और प्रेम की भावना जागृत होने पर 'सुखदा' और 'अमरकांत' के सुखमय जीवन की ओर संकेत किया गया है। गोदान की 'धनिया' और 'होरी' के दाम्पत्य-जीवन के बीच अनेक अभाव हैं किंतु प्रेम की भावना विद्यमान है। अतः दोनों ने एक-दूसरे को कभी गलत नहीं समझा। 'गोदान' की 'गोबिन्दी' और 'खन्ना' का विवाह भली-भांति ग्रह-नक्षत्र मिलाकर हुआ किंतु प्रेम के अभाव में शुष्क और नीरस हो गया। पति का प्रेम न प्राप्त कर सकने के कारण 'प्रतिज्ञा' की 'सुमित्रा' तो यहाँ तक कह डालती है कि 'मेरा विवाह तो महल से हुआ है।"[४६] अतः यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रेमचन्द, दाम्पत्य-जीवन में प्रेम को अत्यंत गहराई के साथ स्वीकार करते हैं और उसे महत्त्व भी देते हैं किंतु वे इस बात को स्वीकार नहीं करते कि प्रेम के अभाव में दाम्पत्य-जीवन को छिन्न-भिन्न कर दिया जाय। इसका कारण है। प्रेमचन्द स को दो भिन्न वस्तुएं मानते हैं जैसा उन्होंने स्वयं कहा है—"प्रेम और

[illegible] है । [illegible] की [illegible], '[illegible]' की '[illegible]' [illegible] को [illegible] के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है ।

[illegible] ने भी [illegible] के [illegible] से [illegible] प्रदान की है । [illegible] उनके दृष्टिकोण से [illegible] है । [illegible] की भावना को [illegible] है । [illegible] ने [illegible] हृदय के प्रति [illegible] हुआ है । किन्तु [illegible] को [illegible] कहकर नारी को जो [illegible] किया गया है उसका विरोध किया है—"इसे [illegible] शब्दों में नाना अलंकार [illegible] किया लोगों ने इस प्रकार [illegible] कि [illegible] में नारी की चरम सार्थकता है, [illegible] लोगों ने [illegible] को [illegible] किया [illegible] ।"[11] [illegible] का यह दृष्टिकोण उनके एक निबन्ध में भी व्यक्त हुआ है—'नारियों का सम्मान [illegible] उनके कारण नहीं होता बल्कि यह उनके [illegible] और पुत्र उत्पन्न करने पर निर्भर करता है । यदि पुरुष की दृष्टि में नारी के जीवन का एक मात्र यही उद्देश्य हो तो वह किसी प्रकार उनके गौरव का विषय नहीं हो सकता ।'[12]

भारतीय समाज ने नारी को लक्ष्मी, देवी और पूजनीया कहकर नारी को सम्मान और प्रतिष्ठा देने का प्रयत्न किया है । किन्तु इन शब्दों से भी पुरुष की स्वार्थी वृत्ति समाप्त नहीं हो सकी है तथा इस प्रकार नारी को बड़ा नाम देकर उसे प्रवंचित किया गया है । सतीत्व को हिन्दू समाज में उच्च कोटि के त्याग की संज्ञा दी । सतीत्व की भावना ऊंची वस्तु है । स्त्री को अपनी मर्यादा की रक्षा का ध्यान रखना ही होता है । किन्तु चरित्र की पवित्रता का सारा महत्त्व स्त्रियों को ही बनाया गया । पुरुषों ने अपने सम्बन्ध में उसकी महिमा ही नहीं समझी । परिणामतः सतीत्व और पातिव्रत के कारण भी भारतीय नारी उत्पीड़ित हुई है । प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों में इसे स्पष्टतः देखा जा सकता है ।

प्रेमचन्द, सतीत्व और पातिव्रत-भावना के पक्षपाती प्रतीत होते हैं । सतीत्व की भावना को अपने उपन्यासों में प्रेमचन्द ने गरिमापूर्ण अंकित किया है । 'पूर्णा' (प्रतिज्ञा) और 'गायत्री' (प्रेमाश्रम) के विचलित हो जाने पर उन्हें पुनः पातिव्रत के मार्ग पर मोड़ना इसी भावना का द्योतक है । किन्तु वे ऐसे सतीत्व के समर्थक नहीं हैं जिससे नारी का सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ हो जाता है । 'पूर्णा' और 'गायत्री' के सतीत्व की रक्षा, प्रेमचन्द ने अवश्य की है किन्तु उनके जीवन की व्यर्थता की कचोट उनके हृदय में अवश्य रही है । इसे 'सुमन' (सेवासदन) में अत्यंत स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । पति की भ्रांति के कारण ही उसे जीवन भर भटकना पड़ा है क्योंकि पुरुष जब कभी नारी पर संदेह करता है तो वह सतीत्व पर आधारित होता है । 'गजाधर' को 'सुमन' पर उसके सतीत्व को लेकर ही भ्रांति हुई है । जिसे 'गजाधर' ने कहा भी

सुरामय हो सकता है। परिणामस्वरूप शरतचन्द्र के उपन्यासो मे विवाह-बंधन की यन्त्रणा को स्वीकार न कर नारी ने विद्रोह की घोषणा भी की है। इसके समर्थन के लिए 'श्रीकांत' की 'अभया', 'चरित्रहीन' की 'किरणमयी' और 'गृहदाह' की 'अचला' को प्रस्तुत किया जा सकता है। 'अभया' ने अत्यंत सशक्त शब्दों में विवाह के मिथ्या आडम्बरो का विरोध किया है तथा प्रेम की सत्यता पर आस्था व्यक्त की है - "न कुछ एक रात्रि के विवाह अनुष्ठान को, जो कि पति-पत्नी दोनों के निकट स्वप्न की तरह मिथ्या हो गया हो, जबरदस्ती जीवन भर सत्य कहकर खड़ा रखने के लिए इतने बड़े प्रेम को क्या मैं बिलकुल ही व्यर्थ कर दूं।"[१०] 'चरित्रहीन' की 'किरणमयी' मे यह दृष्टिकोण विद्रोहात्मक रूप में प्रस्तुत हुआ है। उसने अपने पति को कभी प्रेम नही किया है—"भूल तो थी ही— मुझे तो अपने स्वामी से प्रेम नही था।"[११]

"मैंने स्वामी को प्यार नही किया और प्रेम पाया भी नही।"[१२] "अपने स्वामी को मैंने हृदय के भीतर नही पाया।"[१३]

पति के प्रेम के अभाव में ही, पति के रहते हुए भी 'किरणमयी' मे प्रेम करने की आकांक्षा समाप्त नही हो सकी है। यदि पति से उसे प्रेम प्राप्त हो गया होता तो सम्भव था कि उसका जीवन कारुणिक होने से बच जाता। दाम्पत्य-जीवन मे प्रेम के अभाव मे नारी-जीवन की यह करुणा दिखाना शरतचन्द्र का उद्देश्य है। इसी से शरतचन्द्र ने दाम्पत्य-जीवन मे प्रेम का समर्थन किया है तथा उनके दृष्टिकोण को 'अचला' के द्वारा अत्यन्त सशक्त शब्दों मे व्यक्त किया है—"सुरेश बाबू मुझे तुम यहां से ले जाओ; जिससे प्रेम नही है उसकी गृहस्थी चलाने के लिए मुझे तुम लोग यहां मत डाल जाओ।"[१४] दाम्पत्य-जीवन की एकाग्रता और एकनिष्ठा के समर्थक शरतचन्द्र भी हैं किंतु प्रेम से युक्त पति के, प्रेम-विहीन पति के नहीं।

दाम्पत्य-जीवन मे नारी को मां बनने की लालसा प्रबल रूप से होती है। वह संसार को जन्म देती है, इसी से उसे जननी भी कहा गया है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासो मे मातृत्व की महिमा का चित्रण समान रूप से किया है। नारी के जननी रूप पर प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों ही उपन्यासकारों को अपार श्रद्धा है। प्रेमचन्द ने 'गोदान' मे मातृत्व के महत्त्व का उल्लेख किया है जिससे उनके दृष्टिकोण का पता चलता है—"नारी केवल माता है और इसके उपरांत वह जो कुछ भी है वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है। मातृत्व संसार की सबसे बडी साधना है, सबसे बडी तपस्या, सबसे बडा त्याग और सबसे महान् विजय है। एक शब्द में मैं उसे लय कहूंगा—जीवन का, व्यक्तित्व का और नारीत्व का भी।"[१५] प्रेमचन्द ने नारी के मातृत्व रूप को तथा उसके गौरव को अपने उपन्यासों में अत्यंत श्रद्धा के साथ उपस्थित किया है। 'गोदान' की 'धनिया' मे उसका गौरवपूर्ण रूप

[illegible] कि प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र दोनों ही [illegible] नारी को [illegible] [illegible]। दोनों ही [illegible] नारी के [illegible] का [illegible] है। किन्तु [illegible] की तरह वे [illegible] होते है, उनका विरोध [illegible] के [illegible] किया है।

[illegible] और शरत्चन्द्र ने [illegible] का कारण भारतीय नारी का संस्कारों [illegible] है। किन्तु [illegible] संस्कारों और रीतियों को लेकर [illegible] है। नारी के [illegible] संस्कारों ने ही उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध किया है। धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक प्रतिबन्धों ने नारी को संस्कारों [illegible] उसकी धर्मभीरु बुद्धि और प्रतिष्ठित [illegible] की आस्था [illegible] संस्कारों की जड़ गहरी की है। संस्कारों को मानकर [illegible] भारतीय नारी ने [illegible] बड़ा कर्तव्य समझा तथा उसने प्रचलित संस्कारों और [illegible] पर कभी [illegible] नहीं किया और न ही उन्हें तर्क की कसौटी पर कसने की [illegible] की। [illegible] नारी संस्कारों की दासी बनी और उसकी स्थिति दयनीय हो गयी। प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र ने नारी को उसके संस्कारों से मुक्त कराने का प्रयास अपने उपन्यासों में किया है।

प्रेमचन्द ने प्रचलित संस्कारों पर नारी की आस्था का समर्थन नहीं किया है। उन्होंने नारी के संस्कारों को उनके विकास का अवरोध माना है। इसी से प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में नारी को सीमित और संकुचित क्षेत्र से बाहर निकाल कर उसके जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों पर गहरा आघात किया है। किन्तु प्रेमचन्द के उपन्यासों में कहीं भी विद्रोह उस स्तर तक नहीं उठाया गया है कि नारी अपने समस्त प्रचलित संस्कारों को तोड़कर नये वातावरण की सृष्टि कर सकने में समर्थ हुई हो। इसे 'प्रेमाश्रम' की 'गायत्री' तथा 'निर्मला' (निर्मला) में नितान्त स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। दोनों ही पात्रों में संस्कारों की सारहीनता को दिखाकर भी, संस्कारों को तोड़ देने का सामर्थ्य नहीं प्रदान किया गया।

शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों में नारी को प्रचलित संस्कारों से मुक्त करने का समर्थन किया है। संस्कारों से लिप्त नारी की आकुलता का चित्रण उन्होंने अपने अनेक उपन्यासों में किया है। 'अभया' (श्रीकांत) 'किरणमयी' (चरित्रहीन) 'सुमित्रा' (पथ के दावेदार) और 'कमल' (शेषप्रश्न) के माध्यम से शरतचन्द्र ने नारी के परम्परागत संस्कारों पर आघात किया है। 'कमल' के द्वारा शरतचन्द्र ने नारी के संस्कारों की असत्यता का उद्घाटन किया है –"रहने की आखिर इतनी व्याकुलता क्यों ? जो जाने के नहीं सो नहीं जायेंगे। मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुसार फिर वे नवीन रूप, नवीन सौंदर्य, नवीन मूल्य लेकर दिखाई देंगे। वही होगा उनका सच्चा परिचय।

है—"उसका ऊँचा आदर्श मेरे अविश्वास का कारण हुआ। मैं उसके चरित्र पर सन्देह करने लगा। अंत को यह दशा हो गई कि एक दिन रात को एक मुंशी के घर पर [illegible] जरा विलम्ब हो जाने के कारण मैंने उसे घर से निकाल दिया।"[२८] इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है प्रेमचन्द सतीत्व के उच्चादर्शों को स्वीकार करते हुए कठोर प्रतिबन्धों और नियमों को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं हैं।

सतीत्व के महत्त्व को शरतचन्द्र भी अस्वीकार नहीं करते। सतीत्व और पातिव्रत-भावना पर उनकी श्रद्धा है। 'अन्नदा दीदी' (श्रीकांत) तथा कुसुम (गृहदाह) जैसी सती-साध्वी नारियों के प्रति शरतचन्द्र ने अपनी श्रद्धा का ज्ञापन किया है। 'मृणाल' की पातिव्रत-भावना को अत्यंत आदर के साथ प्रस्तुत किया है। 'अन्नदा दीदी' ने अपने बर्बर पति के लिए अपने धर्म को भी त्याग दिया है तथा अपने सम्पूर्ण जीवन को अपने पति के साथ ही बिताने का संकल्प करके उन्हें दर कुपथों में मारे-मारे घूमना पड़ा है। पति के व्यवसाय में भी मदद की है। सतीत्व की इस भावना का समर्थन शरतचन्द्र नहीं कर सके हैं। फलतः वे सतीत्व को नारी-जीवन का चरम सत्य नहीं मानते। अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए शरतचन्द्र ने कहा भी है—"सतीत्व को मैं तुच्छ नहीं कहता। किंतु इसी को जीवन का चरम और परम श्रेय जानने को भी मैं कुसंस्कार समझता हूँ। कारण मनुष्य का मनुष्य होने का जो स्वाभाविक और सच्चा दावा है उसे चकमा देकर जिस किसी ने जिस किसी चीज को बड़ा करके खड़ा करने की चेष्टा की है उसने उसे भी धोखा दिया है और आप भी ठगा गया है। उसने उसे भी मनुष्य नहीं बनने दिया और वैसे ही अनजान में अपने मनुष्यत्व को छोटा कर डाला है। यह बात उसका बुरा करने की चेष्टा में भी सत्य है और उसका भला करने की चेष्टा भी सत्य है।"[३३]

'शेषप्रश्न' में शरतचन्द्र ने सतीत्व और पातिव्रत-भावना का तीव्र विरोध किया है। 'श्रीकांत' की 'अभया' के माध्यम से तो उन्होंने इस दृष्टिकोण को वाणी दी है। अपने सतीत्व और पातिव्रत-धर्म को लेकर ही जब 'अभया' अपने छोड़े हुए पति को ढूँढ़कर उसके सम्मुख उपस्थित हुई है तो निष्ठुर पति ने उसे भरपूर मार दी है। भारतीय पति के अमानवीय व्यवहार पर व्यंग करती हुई 'अभया' कहती है—"यह तो मेरे सती धर्म का एक छोटा-सा पुरस्कार है। वे मेरे पति हैं और मैं उनकी विवाहिता स्त्री—यह इसी की जरा सी बानगी है।"[३४] इसी से शरतचन्द्र ने 'अभया' में वह विद्रोह-शक्ति दी है जिससे वह सती के झूठे पद को उतार फेंकने में समर्थ हुई है। वास्तविक प्रेम को ठुकराकर 'अभया' न तो 'सती' होने की आकांक्षा करती है और न अपने सम्पूर्ण जीवन को व्यर्थ कर डालना चाहती है—"ऐसे मनुष्य के सारे जीवन को लंगड़ा बनाकर मैं 'सती' का खिताब नहीं खरीदना चाहती।"[३५] यहाँ पर स्पष्ट

अन्यथा सिर्फ इसलिए कि बहुत दिनों से कोई चीज है, उसे और भी बहुत दिनों तक पकड़े रहना होगा—यह कैसी बात है।"[७१] किन्तु शरतचन्द्र सुदीर्घ संस्कारों में छिपे सत्य की अवहेलना भी नहीं करते। वे समय के अनुसार उनमें परिवर्तन के पक्षपाती हैं।

दहेज और अनमेल विवाह के कारण भी भारतीय नारी का जीवन करुणा से आप्लावित हुआ है। अनुकूल पति न प्राप्त होने के कारण नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय रही है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों में नारी-जीवन के इन पक्षों पर भी विचार हुआ है। प्रेमचन्द ने 'निर्मला', 'सेवासदन' और 'गबन' में दहेज और अनमेल विवाह से उत्पन्न नारी-जीवन की करुणा का चित्रण किया है। दहेज और अनमेल विवाह के कारण नारी जिस पतन के गर्त में गिरती है उसी का चित्रण 'सेवासदन' में हुआ है तथा दाम्पत्य-जीवन कितना कलहपूर्ण हो जाता है, इसे 'निर्मला' में दिखाया गया है। 'गबन' में 'रतन' और उसके पति के सम्बन्ध में प्रेमचन्द लिखते हैं—"वकील साहब को रतन से पति का प्रेम नहीं पिता का सा स्नेह था। और कोई स्नेही पिता मेले में लड़कों से पूछ-पूछ कर खिलौने लेता है वह भी रतन से पूछ-पूछ कर खिलौने लेते थे, उसके कहने भर की देरी थी।"[७३] शरतचन्द्र ने भी ठीक ऐसा ही दृष्टिकोण 'देवदास' में प्रस्तुत किया है—"उस समय वृद्ध महाशय मारे उत्साह के उठ बैठते थे। वे पार्वती का सम्बन्ध भूल कर उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहते—तुम्हारा भला होगा, मैं आशीर्वाद देता हूँ तुम सुखी होगी—भगवान् तुम्हें दीर्घायु करेंगे।"[७४] वस्तुतः दहेज और अनमेल विवाह का सीधा शिकार नारी ही होती है। उसी को सबसे अधिक दुःख भोगना पड़ता है। नारी का यह बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि पति के साथ उसका व्यवहार पति-पत्नी का न होकर पिता-पुत्री का हो। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने इसी से दहेज और अनमेल विवाह का विरोध किया है। इसकी विद्रूपता को प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है तथा दोनों उपन्यासकारों का आग्रह यही है कि इन सामाजिक कुरीतियों को दूर करके नारी को परिवार की पूज्य गृहिणी बनने का अवसर दिया जाय।

दहेज और अनमेल विवाह जैसी कुरीतियों का विरोध करने पर भी प्रेमचन्द और शरतचन्द्र किसी ने भी तलाक-प्रथा का समर्थन नहीं किया है। दोनों उपन्यासकार पाश्चात्य पद्धति पर परित्याग-प्रथा के विरोधी हैं। प्रेमचन्द ने नारी के समस्त अधिकारों का सशक्त समर्थन किया है किन्तु पाश्चात्य देशों की भाँति तलाक-प्रणाली पर उन्हें विश्वास नहीं है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में दाम्पत्य-जीवन में तलाक की अपेक्षा प्रेम की विजय की घोषणा की है। प्रेमचन्द का विचार है कि नारी को पति के सम्बन्ध में सोचने और समझने का अवसर दिया जाय किन्तु योरप की भाँति आपस

से विच्छेद और त्याग की चर्चा हो ऐसा उचित नही। 'कर्मभूमि' की 'सुखदा' और 'अमरकान्त' का दाम्पत्यिक जीवन सुखमय न था। 'गोदान' की 'गोविन्दी' और 'खन्ना' के बीच आपसी मतभेद चरम सीमा पर पहुँचा हुआ था। फिर भी प्रेमचन्द ने इन अवसरो पर भी तलाक का समर्थन नही किया है। प्रेमचन्द तलाक को भारतीय संस्कृति के अनुकूल नहीं मानते। उनके अनुसार दाम्पत्य-जीवन मे प्रेम का अकुर सेवा-त्याग के बल पर विकसित हो सकता है। 'गोविन्दी' अपने त्याग और सेवा के बल पर ही 'मिस्टर खन्ना' का प्रेम प्राप्त करती है और इसी प्रकार 'सुखदा' और 'अमरकान्त' अपनी भूलो पर पश्चाताप करके पुन एक हो जाते हैं।

शरतचन्द्र भी, पाश्चात्य धारणाओ के अनुरूप तलाक के समर्थक नही प्रतीत होते हैं किन्तु अवसर पड़ने पर नारी द्वारा पति के परित्याग का पक्ष शरतचन्द्र ने लिया है "सत्य न तो पति के त्याग में है और न पति की दासी वृत्ति करने मे, ये दोनो ही सिर्फ दाएँ-बाएँ के रास्ते हैं, गन्तव्य स्थान तो अपने आप ढूँढ लेना पडता है।"[७५] शरतचन्द्र ने इस दृष्टिकोण को 'नारी का मूल्य' मे अधिक स्पष्ट कर दिया है—"लेकिन हमारी इन बातो से पाठको को यह भ्रम नही होना चाहिए कि हम डाइवोर्स या तलाक को कोई अच्छी चीज बतला रहे हैं—लेकिन जब हम लोगो मे स्त्री को त्याग कर देना प्रचलित है तब वह त्याग स्त्री और पुरुष दोनो ही पक्ष मे क्यो उचित नहीं है ? स्त्री क्यो न अपने पुरुष को त्याग कर सके।"[७६] यहा यह स्पष्ट हो जाता है कि शरतचन्द्र नारी के पति त्यागने के अधिकार का समर्थन केवल इसलिए करते हैं कि नारी को भी न्यायसगत अधिकार प्राप्त होना चाहिए तथा जिससे नारी पर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध नारी को मुक्ति प्राप्त कर सकने का अवसर प्राप्त हो। 'अभया' ने 'श्रीकान्त' से प्रश्न करके इस दृष्टिकोण की पुष्टि की है—"मैं आपसे यह बात जानना चाहती हूँ कि पति जब एक मात्र बेंत के जोर से स्त्री के समस्त अधिकारो को छीन लेता है और उसे अंधेरी रात मे अकेली घर के बाहर निकाल देता है तब उसके बाद भी वैदिक मन्त्रों के जोर से उस पर पत्नी के कर्तव्यों की जिम्मेदारी बनी रहती है या नही।"[७७] वस्तुत शरतचन्द्र समस्त परम्पराओ के ऊपर जीवन को महत्त्व देते हैं तथा समाज के अनेक अत्याचारो से नारी-जीवन की व्यर्थता को बचाना ही शरतचन्द का उद्देश्य है। 'शेषप्रश्न' मे यह दृष्टिकोण स्पष्ट हो गया है—"वास्तव मे जीवन कोई बच्चों का खेल तो है नही। भगवान् का इतना बडा दान इसलिए नही आया। ऐसी बात भी भला मैं कैसे कह सकता था कि कोई एक आदमी किसी दूसरे के जीवन मे विफल हो गया तो उसी शून्यता की जिन्दगी भर जय घोषणा करता रहे।"[७८]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों ही उपन्यासकारो ने भारतीय नारी को, अपने

उपन्यासों में गौरव से मंडित कर मानवीय स्तर पर प्रतिष्ठित करने का आग्रह किया है। अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर कर नारी के पारिवारिक सामाजिक अधिकारों को दिलाने पर बल दिया है। नारी की अनेकानेक समस्याओं के प्रति प्रेमचन्द का दृष्टिकोण सुधारवादी है। दहेज, अनमेल विवाह आदि समस्याओं को समाप्त कर, नारी के सुखमय गार्हस्थिक जीवन का समर्थन उनके सभी उपन्यासों में हुआ है। किन्तु नारी को परिवार के बाहर निकाल कर, सामाजिक-राजनैतिक क्षेत्र में भी पुरुष के समस्त कार्य करने का समर्थन किया है। ऐसी स्थिति में प्रेमचन्द को पारिवारिक जीवन के प्रति मोह नहीं है। प्रेमचन्द ने नारी को पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर साथ देने और उसके प्रत्येक क्षेत्र में जीवन-संगिनी बनने का समर्थन किया है। साथ ही प्राचीन संस्कारों का विरोध भी नहीं कर पाये हैं। अतः प्रेमचन्द क्रांतिकारी होते हुए भी कुछ प्राचीन संस्थाओं में विश्वास करते हैं। 'सेवासदन' की 'सुमन' को प्रस्तुत कर उसको गरिमा से ही मण्डित किया है। उसे कहीं नीचा करने का प्रयास नहीं हुआ है किन्तु 'निर्मला' की करुणावस्था के प्रति केवल सहानुभूति ही उत्पन्न की है।

नारी के प्रति शरतचन्द्र की आत्मिक सहानुभूति है किन्तु विधवा विवाह हो या उसके प्रेम करने की समस्या अथवा वेश्या के सामाजिक स्तर का प्रश्न हो या स्वच्छंद प्रेम की समस्या, शरतचन्द्र एक पग आगे बढ़ा अवश्य देते हैं किन्तु उसी क्षण पीछे लौटा लेने का भी विचार करने लगते हैं। वस्तुतः नारी को लेकर उनके मन में प्राचीन और नवीन का गहरा द्वंद्व है जिसे उनके सभी उपन्यासों में देखा जा सकता है। कहीं प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रभाव में आकर नारी का 'विराजबहू' रूप समर्थन पाता है और कहीं 'किरणमयी' के द्वारा घोर क्रांतिकारी कदम उठाया गया है। 'शेषप्रश्न' की 'कमल' में यह द्वंद्व एक साथ प्रस्तुत हुआ है। किन्तु शरतचन्द्र ने सर्वदा नारी के सहगामिनी और सहधर्मिणी रूप का ही समर्थन किया है तथा अपनी समस्त क्रांतिकारिता के होते हुए भी प्राचीन पारिवारिक प्रथा का समर्थन किया है। इस प्रकार शरतचन्द्र के नारी-विषयक विचार क्रांतिकारी होते हुए भी परम्पराओं से नितांत मुक्त नहीं हैं।

३. वही, पृ० ३३
४. वही, पृ० ४८
५. स्टेटस ऑफ वीमेन इन साउथ ईस्ट एशिया—डॉ० ए० अप्पादोराय द्वारा संपादित (पोलिटिकल स्टेटस ऑफ वीमेन इन इंडिया—मिसेज लक्ष्मी एन० मेनन), पृ० ६५
६. वही, पृ० ८६
७. वही (इंडियन वीमेन एण्ड दि माडर्न फेमिली—डॉ० डी० पी० मुकर्जी), पृ० ६५
८. हिन्दू समाज निर्णय के द्वार पर—के० एम० पनिक्कर, पृ० ३६
९. प्रेमचन्द घर में—शिवरानी देवी, पृ० २०३
१०. शरत्-निबंधावली (स्वराज्य-साधना में नारी), पृ० १३
११. शरत्-प्रतिभा—डॉ० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त, पृ० ३६
१२. गबन, पृ० १०३
१३. शरत-निबंधावली, पृ० १४
१४. कायाकल्प, पृ० २८७
१५. वही, पृ० २४३
१६. शेषप्रश्न, पृ० २१६
१७. पथ के दावेदार, पृ० ६८
१८. नारी का मूल्य, पृ० ६३
१९. शेषप्रश्न, पृ० १५
२०. स्त्रीशक्ति—विनोबा, पृ० २६
२१. शेषप्रश्न, पृ० २१६
२२. कायाकल्प, पृ० २४६
२३. गोदान, पृ० ५२
२४. वही, पृ० १७२
२५. शेषप्रश्न, पृ० ८८
२६. शरत-पत्रावली, पृ० ६५
२७. सेवासदन, पृ० २०४
२८. वही, पृ० ४६
२९. वही, पृ० ६०
३०. शरत-पत्रावली, पृ० ६६
३१. नारी का मूल्य, पृ० ३४
३२. चरित्रहीन, पृ० ४४८
३३. देवदास, पृ० ५२
३४. गबन, पृ० २६६
३५. नारी का मूल्य, पृ० ३३
३६. वही, पृ० ९
३७. शरत-निबंधावली, पृ० १५

उपन्यासों में गौरव से मंडित कर सम्माननीय स्थान पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर कर नारी के पारिवारिक सामाजिक अधिकारों को दिलाने पर बल दिया है। नारी की अनेकानेक समस्याओं के प्रति प्रेमचन्द का दृष्टिकोण सुधारवादी है। दहेज, अनमेल विवाह आदि समस्याओं को समाप्त कर, नारी के सुखमय गार्हस्थिक जीवन का समर्थन उनके सभी उपन्यासों में हुआ है। किन्तु नारी को परिवार से बाहर निकाल कर, सामाजिक-राजनैतिक क्षेत्र में भी पुरुष के समान कार्य करने का समर्थन किया है। ऐसी स्थिति में प्रेमचन्द को पारिवारिक जीवन के प्रति मोह नहीं है। प्रेमचन्द ने नारी को पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर साथ देने और उसके प्रत्येक क्षेत्र में जीवन-संगिनी बनने का समर्थन किया है। साथ ही प्राचीन संस्कारों का विरोध भी नहीं कर पाये हैं। अतः प्रेमचन्द क्रान्तिकारी होते हुए भी कुछ प्राचीन संस्थाओं में विश्वास करते हैं। 'सेवासदन' की 'सुमन' को प्रस्तुत कर उसको गरिमा से ही मण्डित किया है। उसे कहीं नीचा करने का प्रयास नहीं हुआ है किन्तु 'निर्मला' की करुणावस्था के प्रति केवल सहानुभूति ही उत्पन्न की है।

नारी के प्रति शरतचन्द्र की आत्मिक सहानुभूति है किन्तु विधवा विवाह हो या उसके प्रेम करने की समस्या अथवा वेश्या के सामाजिक स्तर का प्रश्न हो या स्वच्छंद प्रेम की समस्या, शरतचन्द्र एक पग आगे बढ़ा अवश्य देते हैं किन्तु उसी क्षण पीछे लौटा लेने का भी विचार करने लगते हैं। वस्तुतः नारी को लेकर उनके मन में प्राचीन और नवीन का गहरा द्वंद्व है जिसे उनके सभी उपन्यासों में देखा जा सकता है। कहीं प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रभाव में आकर नारी का 'विराजबहू' रूप समर्थन पाता है और कहीं 'किरणमयी' के द्वारा घोर क्रांतिकारी कदम उठाया गया है। 'शेषप्रश्न' की 'कमल' में यह द्वंद्व एक साथ प्रस्तुत हुआ है। किन्तु शरतचन्द्र ने सर्वदा नारी के सहगामिनी और सहधर्मिणी रूप का ही समर्थन किया है तथा अपनी समस्त क्रांतिकारिता के होते हुए भी प्राचीन पारिवारिक प्रथा का समर्थन किया है। इस प्रकार शरतचन्द्र के नारी-विषयक विचार क्रांतिकारी होते हुए भी परम्पराओं से नितांत मुक्त नहीं हैं।

[illegible] हूँ।

[illegible] की परिभाषा आज तक नहीं हो सकी है। जितने विद्वान् हैं उतनी ही परिभाषाएँ हैं। किन्हीं दो विद्वानों की रायें नहीं मिलतीं। उपन्यास के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। इसकी कोई ऐसी परिभाषा नहीं है जिस पर सभी लोग सहमत हों।

मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।"[7]

यहाँ यह स्पष्ट है कि उपन्यासों पर विचार करते समय प्रायः सभी विद्वानों ने आधुनिक साहित्य में उपन्यास की लोकप्रियता तथा महत्त्व को स्वीकार किया है। वस्तुतः उपन्यास एक ऐसी कला है जिसमें मानव-जीवन कलाकार के व्यक्तित्व में समाहित होकर विस्तृत फलक पर उपस्थित होता है। जीवन की इसी सान्निध्यता के कारण उपन्यास का महत्त्व उत्तरोत्तर बढ़ा है। डी० एच० लारेंस ने उपन्यास के महत्त्व को दृष्टि में रखकर कहा है कि "उपन्यासकार होने के नाते मैं अपने को एक संत, एक वैज्ञानिक, एक दार्शनिक तथा एक कवि से ऊँचा समझता हूँ। उपन्यास जीवन की एक चमकीली पुस्तक है।"[8] स्पष्ट है यह उक्त लेखक की गर्वोक्ति है। फिर भी उपन्यास के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

कला का उद्देश्य जीवन को मूर्तिमान करना होता है तथा कलाकार जीवन का निरीक्षण जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को अभिव्यक्त करने तथा जीवन की महत्ता को सिद्ध करने के लिए ही करता है। उपन्यासकार का मानव-जीवन से घनिष्ठ संबंध होता है। अतः उपन्यासकार घटनाओं तथा परिस्थितियों के बीच व्यक्ति को रख कर उनके अस्तित्व को इस प्रकार अंकित करता है कि मनुष्य जीवन की व्यापकता साकार हो जाती है। मनुष्य-जीवन को इस प्रकार मूर्तिमान कर उपन्यासकार कलाकार की

९
औपन्यासिक शिल्प

उपन्यास आधुनिक युग की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। प्रसिद्ध रूसी विद्वान् राल्फ फाक्स ने उपन्यास को मानव-जीवन का गद्य माना है। राल्फ फाक्स उपन्यास को केवल कथा मात्र नही मानते। अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए राल्फ फाक्स ने लिखा है—"उपन्यास कला का प्रथम गद्य रूप है जो मानव को समग्रता से समझने तथा अभिव्यक्त करने की चेष्टा करता है।"[1] उपन्यास और मानव-जीवन के घनिष्ठ सम्बन्ध पर बल देते हुए इरा वौल्फर्ट ने उपन्यास को सक्रिय मानव-जीवन की भाषा में भावो का गद्यानुवाद माना है। उपन्यास पर इस दृष्टि से विचार करते हुए इरा वौल्फर्ट ने आगे भी लिखा है कि वह गद्यानुवाद इतना शुद्ध होना चाहिये कि उससे पाठकों का आत्मज्ञान बढ़े।[2] राल्फ फाक्स की ही तरह इरा वौल्फर्ट ने उपन्यास मे जीवन की सक्रिय व्याख्या करने की सम्भावना व्यक्त की है तथा पात्रो के घात-प्रतिघात तथा उनकी प्रतिक्रियाओं द्वारा समस्याओं का चित्रण करने के पक्ष मे प्रतीत होते हैं। राबर्ट लिडेल ने उपन्यास को 'नयापन' से परिपूर्ण साहित्यांग माना है।[3] वस्तुतः राबर्ट लिडेल की परिभाषा से उपन्यास का यथार्थ स्वरूप नही स्पष्ट हो पाता है। पर्सी लबक ने उपन्यास को जीवन का सुपरिचित चित्र माना है।[4] लबक का दृष्टिकोण भी राल्फ फाक्स और वौल्फर्ट के निकट प्रतीत होता है किंतु वे अपने दृष्टि-कोण को स्पष्ट रूप से नही प्रस्तुत कर सके हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी उपन्यासों की शक्ति का उल्लेख करते हुए लिखा है—"वर्तमान जगत में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है उसके भिन्न-भिन्न वर्गों मे जो प्रवृत्तियां उत्पन्न हो रही हैं उपन्यास इनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नही करते आवश्यकतानुसार उनके ठीक विकास-सुधार अथवा निरा-करण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करते हैं।"[5] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी उपन्यास को साहित्य की एक नयी वस्तु माना है तथा उपन्यास की लोकप्रियता और महत्त्व पर विचार करते हुए लिखा है—"उपन्यास इस युग का बहुत ही लोकप्रिय साहित्य है। शायद ही कोई पढ़ा-लिखा नौजवान इस जमाने मे ऐसा मिले जिसने दो-चार उपन्यास न पढ़े हों। यह बहुत मनोरंजक साहित्यांग माना जाने लगा है। आजकल

[illegible] ।

उपन्यास की परिभाषा आज तक नहीं हो सकी है । जितने विद्वान् हैं उतनी ही परिभाषाएँ हैं, किन्तु दो विद्वानों की राय नहीं मिलती । उपन्यास के विषय में भी यही बात कही जा सकती है । इसकी कोई ऐसी परिभाषा नहीं है जिस पर सभी लोग सहमत हों ।

मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ । मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।"[8]

यहाँ यह स्पष्ट है कि उपन्यासों पर विचार करते समय प्राय सभी विद्वानो ने आधुनिक साहित्य में उपन्यास की लोकप्रियता तथा महत्व को स्वीकार किया है । वस्तुतः उपन्यास एक ऐसी कला है जिसमें मानव-जीवन कलाकार के व्यक्तित्व मे समाहित होकर विस्तृत फलक पर उपस्थित होता है । जीवन की इसी सान्निध्यता के कारण उपन्यास का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ा है । डी० एच० सारेंस ने उपन्यास के महत्त्व को दृष्टि मे रखकर कहा है कि "उपन्यासकार होने के नाते मैं अपने को एक संत, एक वैज्ञानिक, एक दार्शनिक तथा एक कवि से ऊँचा समझता हूँ । उपन्यास जीवन की एक चमकीली पुस्तक है ।"[5] स्पष्ट है यह उक्त लेखक की गर्वोक्ति है । फिर भी उपन्यास के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता ।

कला का उद्देश्य जीवन को मूर्तिमान करना होता है तथा कलाकार जीवन का निरीक्षण जीवन की विभिन्न परिस्थितियो को अभिव्यक्त करने तथा जीवन की महत्ता को सिद्ध करने के लिए ही करता है । उपन्यासकार का मानव-जीवन से घनिष्ठ संबंध होता है । अत उपन्यासकार घटनाओं तथा परिस्थितियों के बीच व्यक्ति को रख कर उनके अस्तित्व को इस प्रकार अंकित करता है कि मनुष्य जीवन की व्यापकता साकार हो जाती है । मनुष्य-जीवन को इस प्रकार मूर्तिमान कर उपन्यासकार कलाकार की

उच्च श्रेणी में पहुँच जाता है। उपन्यासकार के विभिन्न अनुभव तथा अनुभवों को अभिव्यक्त कर दूसरे तक पहुंचाने की तीव्र भावना, उपन्यासकार को एक सुन्दर प्रणाली तथा शैली अपनाने के लिए बाध्य करती है। कलात्मक शैली और प्रणाली के द्वारा ही उपन्यासकार की धारणाएँ दूसरों तक सम्प्रेषित होती हैं तथा उनके हृदय में भी भावना जगाती हैं। अतः यह निश्चित है कि प्रत्येक श्रेष्ठ रचना मे शैली का ध्यान रखा जाता है। यह सम्भव है कि कला के सभी अगो की पूर्ति दुरूहतापूर्वक किसी एक ही कृति मे न हुई हो।

उपन्यास की कला पर विचार करते हुए वर्जीनिया वूल्फ ने एक स्थल पर लिखा है—"यदि हम लेखक हैं तो कोई भी तरीका ठीक होता है, प्रत्येक तरीका ठीक होता है, हम जो अभिव्यक्त करना चाहते हैं वह अभिव्यक्त हो जाता है और यदि पाठक हैं तो वह उपन्यासकार के दृष्टिकोण के अधिकाधिक निकट लाता है।"[९] औपन्यासिक कला को दृष्टि मे रखकर पर्सी लबक ने भी लिखा है—"उपन्यास का अत्युत्तम रूप वही है जो अपने प्रतिपाद्य के प्रति अधिकाधिक न्याय कर सके।"[१०] ई० एम० फार्स्टर उपन्यास-कला की सफलता लेखक के दृष्टिकोण उपस्थित करने की शक्ति मे निहित मानते हैं। ई० एम० फार्स्टर का कहना है—"मेरे सामने साहित्य के स्वरूप की समस्या का समाधान किसी सूत्र के रूप में नही अपितु लेखक की उस शक्ति के रूप मे आता है जिससे वह पाठकों को अपनी बात की प्रतीति कराकर उनसे जो चाहे मनवा लेता है।"[११] ई० एम० फार्स्टर ने उपन्यासकार की सफलता पर विचार करते हुए अपनी पुस्तक के प्रारम्भ मे ही लिखा है—"एक दर्पण विकसित नहीं होता क्योंकि उसके सामने से एक ऐतिहासिक तमाशा निकलता रहता है। वह तभी विकसित होता है जब उस पर पारे का ताजा आलेप होता है, दूसरे शब्दों मे जब वह नयी संवेदना प्राप्त करता है, और उपन्यासकार की सफलता उसकी संवेदना मे निहित है न कि उसकी विषयवस्तु में।"[१२]

औपन्यासिक कला की पूर्णता के लिए कुछ विशिष्ट तत्वों का योगदान आवश्यक होता है। औपन्यासिक तत्वों की उपलब्धि कृति की रचना पद्धति पर निर्भर करती है। लेखक अपनी कृति में कुछ घटनाएं और परिस्थितियां, मनुष्यों के बीच उत्पन्न करता है। अतः ये घटनाएं और परिस्थितियां जो स्वतः उत्पन्न करती हैं उसे कथावस्तु कहते हैं। घटनाओं और परिस्थितियों को उत्पन्न करने वाले तथा उनसे सम्बन्धित व्यक्ति जो घटनाओं को गति प्रदान करते हैं—पात्र कहलाते हैं। पात्रों की पारस्परिक वार्ता उपन्यास के कथोपकथन अथवा संवाद कहलाते हैं। इन व्यक्तियों की घटनाएं और परिस्थितियां किसी निश्चित देश अथवा नगर में घटित होती हैं। यह उपन्यास का देशकाल तत्व बन जाता है। उपर्युक्त तत्वों को [illegible]

लिए उपन्यासकार विशिष्ट रचना-पद्धति अपनाता है, जिसे शैली कहा जाता है
या प्रत्यक्षत. अथवा सांकेतिक रूप से कृति की रचना मे उपन्यासकार का एक दृष्टि-
कोण निहित रहता है जिसे उपन्यास के 'उद्देश्य' की सज्ञा प्रदान की जाती है।
उपन्यास के पढने या सुनने से जो भाव उत्पन्न होता है उसे उपन्यास का 'रस' अथवा
भाव कहा जा सकता है। उपन्यास के तत्त्वो तथा उसकी परिपूर्णता के सम्बध मे प्राय
विद्वानो के मतो मे एकरूपता देखी जाती है। डा० श्यामसुन्दरदास ने 'साहित्यालोचन'
मे, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'साहित्य का साथी' मे तथा डा० गुलाबराय ने 'काव्य
के रूप' मे उपन्यास पर विचार करते हुए निम्नलिखित तत्त्वों को सामान्य रूप से
माना है—१. कथावस्तु २ चरित्रचित्रण ३. कथोपकथन ४ देशकाल ५. रस अथवा
भाव ६. शैली ७ उद्देश्य। प्रधानता की दृष्टि से इन तत्त्वो मे कुछ विद्वानो ने कथानक
को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है तथा कुछ ने चरित्र-चित्रण को प्रधानता दी है।

ई० एम० फार्स्टर ने कथानक तत्त्व को प्रधानता देते हुए लिखा है—"हम
सबको सहमत होना चाहिये कि उपन्यास का मूल तत्त्व कहानी कहने वाला तत्त्व है।"[13]
डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी उपन्यास के तत्त्वो पर विचार करते हुए कथावस्तु की
प्रमुखता को स्वीकार किया है "उपन्यास या कहानी और कुछ हो अथवा न हो
एक कहानी या कथा जरूर है। कहानी या कथा मे जो बातें आवश्यक हैं वे उनमे
अवश्य होनी चाहिये। कोई उपन्यास (या छोटी कहानी) सफल है या नही इस बात
की प्रथम कसौटी यह है कि कहानी कहने वाले ने कहानी ठीक-ठीक सुनाई है या नही,
आवश्यक बातो को छोड तो नही दिया है, जहा-जहा कहानी अधिक मर्मस्पर्शी हो
सकती थी वहाँ-वहाँ उसने उचित रीति से सभाला है या नही, छोटी-छोटी बातों मे ही
उलझ कर तो नहीं रह गया, प्रसगवश आयी हुई घटना का इतना अधिक वर्णन तो
नही करने लगा जिससे पाठक का जी ही नही ऊब जाय और सौ बात की एक बात यह
कि वह शुरू से अत तक सुनने वाले की उत्सुकता जाग्रत करने मे नाकामयाब तो
नही रहा। कहानीपन इस साहित्य की प्रथम शर्त है।"[14]

उपन्यास के तत्त्व किसी उपन्यास की सफलता-असफलता पर अपना समन्वित
प्रभाव डालते हैं। किंतु कथानक और चरित्रचित्रण का इस दृष्टि से विशेष महत्त्व
है। वस्तुत. कथानक और चरित्रचित्रण इतने महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं कि इन दो तत्त्वो के
बीच सतुलन के अभाव मे उपन्यास प्राय शिथिल प्रतीत होता है। कथोपकथन के
माध्यम से चरित्रो का स्वाभाविक विकास होता है। अत यह स्पष्ट है कि किसी
उपन्यास का कला-सौष्ठव लेखक की अनुभूति, अनुभूतियो को सजोने की शैली कथानक
और पात्रो की क्रियात्मक अनुरूपता पर निर्भर करता है। यहाँ प्रेमचन्द और शरत-
चन्द्र के उपन्यासो के गठन-कौशल को इसी सदर्भ मे देखने की चेष्टा करेंगे।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों ही उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों की कथा[illegible] आधुनिक समाज से ग्रहण की है। फलतः प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों [illegible] उनके युग के मानव की परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। किंतु दोनों उपन्यासकारों की कथावस्तु में अन्तर है। प्रेमचन्द आधुनिक समाज में उन स्थलों का चयन [illegible] रूप से करते हैं जिन पर क्रान्तिकारी परिवर्तनों की छाप है तथा समाज के उन [illegible] पर प्रेमचन्द की दृष्टि अधिक जमती है जिनमें परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है [illegible] जो परिवर्तन के योग्य हो रहे हैं। परिणामतः प्रेमचन्द ने समाज की विभिन्न [illegible] विचारधाराओं का अंकन अपनी कृतियों में किया है। पारिवारिक, सामाजिक, [illegible] और राजनीतिक परिस्थितियों का व्यापक और गहरा प्रभाव प्रेमचन्द के उपन्यास[illegible] देखा जा सकता है। इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों के कथानक का क्षेत्र विस्तृत है।

शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों की कथावस्तु, तत्कालीन पारिवारिक-सामा[illegible] जीवन से ग्रहण की है। शरतचन्द्र ने विशेष रूप से पारिवारिक जीवन के [illegible] सामाजिक मूल्यों को स्पर्श किया है। इस प्रकार शरतचन्द्र के उपन्यासों की कथा-[illegible] की परिधि सीमित और संकुचित हुई है। तत्कालीन राजनीतिक उथल-पुथल [illegible] परिवर्तन से शरतचन्द्र कम प्रभावित हुए हैं। 'पथ के दावेदार' की कथावस्तु को रा[illegible] नीतिक पुट अवश्य दिया गया है किंतु उपन्यास के मूल में 'सुमित्रा' और 'भारती' की 'प्रणय' कामना ही उद्भासित हुई है।

कथावस्तु का क्षेत्र विस्तृत होने पर भी प्रेमचन्द के उपन्यासों में विषयों [illegible] पुनरावृत्ति हुई है। प्रेमचन्द सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं में उलझे रहे हैं। [illegible] उनके सभी उपन्यास सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं से परिबद्ध हैं। 'कर्मभूमि' 'रंगभूमि' के धार्मिक सदर्भ, 'कायाकल्प' का मजदूर आन्दोलन तथा 'गोदा[illegible] मजदूर सघर्ष 'प्रतिज्ञा' की विधवा-समस्या तथा 'सेवासदन' की नारी-समस्या पुष्टि के लिए प्रस्तुत किये जा सकते हैं। शरतचन्द्र के उपन्यासों में भी [illegible] की विविधता का अभाव है क्योंकि शरतचन्द्र के उपन्यासों की कथाव[illegible] सीमित है। शरतचन्द्र अपने उपन्यासों [illegible] समाज विभिन्न प्रवृत्तियों तक सीमित रखते हैं [illegible] भी [illegible] वस्तु [illegible] करने [illegible] नय[illegible] क्षमता [illegible] नवीनत[illegible]

अपने [illegible]

[illegible]

कथानक के सम्बन्ध में प्रेमचन्द का मत उल्लेखनीय है। कथानक को रोचक बनाने के लिए प्रेमचन्द ने लिखा है "उपन्यास-कला में यह बात भी बड़े महत्त्व की है कि लेखक क्या लिखे और क्या छोड़ दे। पाठक कल्पनाशील होता है इसीलिए वह ऐसी बातें पढ़ना पसंद करता है जिसकी वह आसानी से कल्पना कर सकता है। वह यह नहीं चाहता कि लेखक सब-कुछ खुद कह डाले और पाठक की कल्पना के लिए कुछ भी बाकी न छोड़े।"[1] यहाँ यह स्पष्ट है कि कथानक की जिस विशेषता की ओर प्रेमचन्द ने संकेत किया है उसका उनके उपन्यासों में अभाव प्रतीत होता है। प्रेमचन्द ने अनेक स्थलों पर अपनी ओर से ऐसे मन्तव्यों को जोड़कर कथानक को विकसित किया है जिससे कथानक में अनावश्यक विस्तार और बोझिलता स्पष्ट परिलक्षित होती है। 'गोदान' में 'मि० मेहता' का नारी-समस्या पर सुदीर्घ भाषण, धनुषभंग और शिकार पार्टी का विशद वर्णन, 'प्रेमाश्रम' में 'सैयद ईजाद हुसेन' और उनके 'इत्तहादी यतीमखाने' की कार्यविधि आदि में इसे देखा जा सकता है। यही नहीं कुछ अनावश्यक बातें भी कथानक में शिथिलता उत्पन्न कर देती हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्रायः दृष्टिकोण को नया मोड़ देने की अपेक्षा व्यर्थ के प्रसंगों को जोड़ दिया गया है। उदा- हरणार्थ—"इन्दु से [illegible] न रही गई। किसी और समय वह [illegible] मान देखकर कमरे में पाँव न रखती [illegible] व्यथा से भरा हुआ था; उसमें मान का [illegible] पुस्तक बंद कर दो— [illegible] सोफी ने इन्दु की ओर

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों ही उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों की कथावस्तु आधुनिक समाज से ग्रहण की है। फलतः प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों में उनके युग के मानव की परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। किंतु दोनों उपन्यासकारों की कथावस्तु में अन्तर है। प्रेमचन्द आधुनिक समाज में उन स्थलों का चयन विशेष रूप से करते हैं जिन पर क्रान्तिकारी परिवर्तनों की छाप है तथा समाज के उन मूल्यों पर प्रेमचन्द की दृष्टि अधिक जमती है जिनमें परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है अथवा जो परिवर्तन के योग्य हो रहे हैं। परिणामतः प्रेमचन्द ने समाज की विभिन्न संस्थागत-विचारधाराओं का अकन अपनी कृतियों में किया है। पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों का व्यापक और गहरा प्रभाव प्रेमचन्द के उपन्यासों में देखा जा सकता है। इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों के कथानक का क्षेत्र विस्तृत है।

शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों की कथावस्तु, तत्कालीन पारिवारिक-सामाजिक जीवन से ग्रहण की है। शरतचन्द्र ने विशेष रूप से पारिवारिक जीवन के बहाने सामाजिक मूल्यों को स्पर्श किया है। इस प्रकार शरतचन्द्र के उपन्यासों की कथावस्तु की परिधि सीमित और संकुचित हुई है। तत्कालीन राजनीतिक उथल-पुथल और परिवर्तन से शरतचन्द्र कम प्रभावित हुए हैं। 'पथ के दावेदार' की कथावस्तु को राजनीतिक पुट अवश्य दिया गया है किंतु उपन्यास के मूल में 'सुमित्रा' और 'भारती' की 'प्रणय' कामना ही उद्‌भासित हुई है।

कथावस्तु का क्षेत्र विस्तृत होने पर भी प्रेमचन्द के उपन्यासों में विषयों की पुनरावृत्ति हुई है। प्रेमचन्द सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं में उलझे रहे हैं। वस्तुतः उनके सभी उपन्यास सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं से परिबद्ध हैं। 'कर्मभूमि' और 'रंगभूमि' के धार्मिक संदर्भ, 'कायाकल्प' का मजदूर आन्दोलन तथा 'गोदान' का मजदूर संघर्ष 'प्रतिज्ञा' की विधवा-समस्या तथा 'सेवासदन' की नारी-समस्या इसकी पुष्टि के लिए प्रस्तुत किये जा सकते हैं। शरतचन्द्र के उपन्यासों में भी विषयवस्तु की विविधता का अभाव है क्योंकि शरतचन्द्र के उपन्यासों की कथावस्तु का क्षेत्र सीमित है। शरतचन्द्र अपने उपन्यासों की कथावस्तु मध्यवर्गीय समाज तथा उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों तक सीमित रखते हैं। इस दृष्टि से शरतचन्द्र भी अपनी विषय-वस्तु को दोहराते हैं। किंतु शरतचन्द्र में कथा को प्रस्तुत करने की कुछ ऐसी क्षमता है, कुछ ऐसी कुशलता है कि उनका प्रत्येक उपन्यास एक नया कल्पना-लोक खोलता है जो परस्पर भिन्न प्रतीत होने वाली कथावस्तु की नवीनता से महत्त्व करता है।

प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में कथावस्तु के विस्तृत फलक (कन्वेस) पर सामा-जिक-राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण करते हैं जिससे कभी-न

क्रमबद्ध करने में असफल हो जाते हैं। अत प्रेमचन्द के उपन्यासो के कथानकों मे शैथिल्य उत्पन्न हो जाता है। उदाहरणार्थ 'रगभूमि' और 'कायाकल्प' मे कथासूत्रों की शिथिलता को स्पष्टत देखा जा सकता है। इन उपन्यासों के कथानको मे जिन कहानियो को परस्पर अनस्यूत किया गया है उनमे एकसूत्रता नही आने पाई है। 'रगभूमि' की 'सोफिया' और 'विनय' की कथा 'सूरदास' तथा उसके आन्दोलन की कथा मे यह बात स्पष्टत. देखी जा सकती है। 'जसवतपुर' मे 'विनय' के कार्यक्रम, कथानक मे किसी महत्त्वपूर्ण प्रसग की सृष्टि नही करते। साथ ही कथानक के निश्चित उद्देश्य से दूर जा पडते हैं। शरतचन्द्र के उपन्यासो के कथानक प्रेमचन्द की तुलना में अधिक गठे हुए हैं। इसका कारण यह है कि शरतचन्द्र के उपन्यासों की झलक छोटी होती है। परिणामत कहानी स्वच्छद रूप से एक गति मे चलती रहती है और कथा-सूत्र सम्बद्ध रहता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रेमचन्द के भी छोटे उपन्यास शरतचन्द्र के उपन्यासो की भाति गठे रहते हैं। यह बात 'सेवासदन', 'प्रतिज्ञा', 'गबन' तथा 'निर्मला' मे विशेष रूप से देखी जा सकती है।

कथानक के सम्बन्ध मे प्रेमचन्द का मत उल्लेखनीय है। कथानक को रोचक बनाने के लिए प्रेमचन्द ने लिखा है —"उपन्यास-कला मे यह बात भी बडे महत्त्व की है कि लेखक क्या लिखे और क्या छोड दे। पाठक कल्पनाशील होता है इसीलिए वह ऐसी बातें पढना पसद करता है जिसकी वह आसानी से कल्पना कर सकता है। वह यह नही चाहता कि लेखक सब-कुछ खुद कर डाले और पाठक की कल्पना के लिए कुछ भी बाकी न छोडे।"[१५] यहाँ यह द्रष्टव्य है कि कथानक की जिस विशेषता की ओर प्रेमचन्द ने सकेत किया है उसका उनके उपन्यासो मे अभाव प्रतीत होता है। प्रेमचन्द ने अनेक स्थलो पर अपनी ओर से ऐसे मन्तव्यो को जोडकर कथानक को विश्लथित किया है जिससे कथानक मे अनावश्यक विस्तार और बोझिलता स्पष्ट परिलक्षित होती है। 'गोदान' मे 'मि० मेहता' का नारी-समस्या पर सुदीर्घ भाषण, धनुषयज्ञ और शिकार पार्टी का विशद वर्णन, 'प्रेमाश्रम' में 'सैयद ईजाद हुसेन' और उनके 'इत्तहादी यतीमखाने' की कार्यविधि आदि मे इसे देखा जा सकता है। यही नही कुछ अनावश्यक बातें भी कथानक मे शिथिलता उत्पन्न कर देती है। प्रेमचन्द के उपन्यासों मे प्राय दृष्टिकोण को नया मोड देने की अपेक्षा व्यर्थ के प्रसगों को जोड दिया गया है। उदाहरणार्थ—"इन्दु से सोफिया की निष्ठुरता अब न सही गई। किसी और समय वह रुष्ट होकर चली जाती अथवा उसे स्वाध्याय मे मग्न देखकर कमरे मे पाँव न रखती किन्तु इस समय उसका कोमल हृदय वियोग-व्यथा से भरा हुआ था; उसमे मान का स्थान नही था। रोकर बोली—"बहन ईश्वर के लिए जरा पुस्तक बद कर दो—पड़ना, यहाँ से तुम्हें छेड़ने न आऊगी।" सोफी ने इन्दु की ओर

[illegible] आँसू थे। मुख उतरा हुआ, [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] करते हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों के कथानकों में कहीं कहीं अनावश्यक रूप से [illegible] का भी समावेश किया गया है, जिसके कारण कथानक में शिथिलता और [illegible] उत्पन्न हुआ है। [illegible] में [illegible] का [illegible] और [illegible] के [illegible] में दृष्टिकोण [illegible] "कुँवर साहब" के [illegible] के साथ [illegible] है और न कथानक को विकसित करने में सहायक होता दिखाई पड़ता है। "हम [illegible] [illegible], [illegible] नहीं [illegible]। कुँवर साहब उसी [illegible] देते थे [illegible] है। [illegible] में इनकी [illegible] में बाधा डाली। अब भी इनका वही हाल है, [illegible] हो गया है। पहले [illegible] भी निराशावादी था और [illegible] भी। अब इसके [illegible] और [illegible] मालूम नहीं है। बचपन से तो अब भी सोशलिस्ट है पर काम वह करता है जिसे कोई पक्का आर्टिस्ट ही कर सकता है।"[१४]

शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों के कथानकों में अनावश्यक प्रसंग नहीं उपस्थित किये हैं। शरतचन्द्र ने कथा से सम्बन्धित अत्यन्त आवश्यक प्रसंगों को ही ग्रहण किया है। अतएव शरतचन्द्र के उपन्यासों की कथावस्तु में अधिक कसाव है। शरतचन्द्र के छोटे उपन्यासों में तो यह विशेषता अत्यन्त स्पष्ट रूप से पाई ही जाती है किंतु 'श्रीकान्त' और 'चरित्रहीन' जैसे बड़े उपन्यासों में भी यह गुण वर्तमान है। उदाहरणार्थ 'श्रीकान्त' की कथावस्तु एक विस्तृत फलक पर चित्रित होने पर भी असंतुलित और शिथिल नहीं होने पाई है। वस्तुतः शरतचन्द्र लिखने में संयम रखने के पक्षपाती थे। इसी ओर संकेत करते हुए शरतचन्द्र ने अपने एक पत्र में लिखा भी है—"कहने की विषय-वस्तु जिसमें आवेग की प्रखरता के कारण प्रयोजन से एक पग भी अधिक न ठेल ले जा सके, बल्कि एक पग पीछे रहे, तो अच्छा।"[१५] शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों की रचना में इस दृष्टिकोण को पूर्णतः अपनाया है। यही कारण है कि शरतचन्द्र के उपन्यासों की कथावस्तु शिथिल नहीं होने पाई है।

कथावस्तु के संगठन की दृष्टि से प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों में प्रकार-भेद दृष्टव्य है। इस दृष्टि से दोनों उपन्यासकारों की कृतियों के तीन भेद किये जा सकते हैं—

(१) एक ही कहानी के आधार पर निर्मित कथावस्तु।

(२) एक से अधिक कहानियों वाले कथानक। कुछ में कहानियों को परस्पर मिलाने का प्रयास किया गया है और कुछ में दो कथाओं को समानांतर चलने दिया

एक कथावस्तु के अन्तर्गत एक से अधिक कहानियो को अनुस्यूत करने का प्रयोग प्रेमचन्द और दाग्नचन्द्र दोनों ही उपन्यासकारो ने किया है। किन्तु दोनो ही उपन्यासकारों के कथावस्तु के संगठन मे अन्तर है।

प्रेमचन्द ने एक ही कथावस्तु के अन्तर्गत अनस्यूत एक से अधिक कहानियो को अपने कुछ उपन्यासो मे समानान्तर चलने रहने दिया है, उन्हे मिलाने का प्रयास नहीं किया है तथा कतिपय उपन्यासों मे सभी को परस्पर मिलाने का प्रयास किया है। इस प्रकार प्रेमचन्द के इस वर्ग के उपन्यासो के दो रूप पाये जाते हैं। प्रथम रूप को 'गोदान' तथा 'रगभूमि' मे तथा दूसरे रूप को 'प्रेमाश्रम' तथा 'कायाकल्प' मे अत्यन्त स्पष्ट रूप मे देखा जा सकता है। 'गोदान' मे नगर और ग्राम की कथाओ को परस्पर मिलाने का प्रयास नही किया गया है। 'मि० खन्ना' और 'होरी' की कथा मे कही परस्पर सहयोग नही है। इसी प्रकार 'रगभूमि' की कहानियो को भी मिलाने का प्रयास नही किया गया है। साथ ही प्रेमचन्द के कुछ उपन्यास ऐसे है जिनमे एक से अधिक कहानियो को परस्पर अनस्यूत किया गया है। 'प्रेमाश्रम' और 'कायाकल्प' मे यह विशेषता उल्लेखनीय है। प्रेमाश्रम मे 'ज्ञानशकर' और 'गायत्री' की कथा को उपन्यास की प्रधान कथा के साथ कुशलता के साथ जोडा गया है। 'प्रेमाश्रम' की मुख्य कथा 'बलराज' और किसान का जमीदारी के प्रति विद्रोह की कथा है जिससे 'ज्ञानशकर'

और 'गायत्री' दोनो ही सम्बन्धित हैं। उसी के साथ 'ज्ञानशंकर' के पारिवारिक जीवन को भी सम्बन्धित किया गया है।

शरतचन्द्र के उपन्यासों में प्रेमचन्द की भांति एक से अधिक कहानियों वाले उपन्यासों मे कथाओ को समानान्तर नहीं चलते रहने दिया गया है। शरतचन्द्र ने एक कथानक के अन्तर्गत एक से अधिक कहानियों की अवतारणा अवश्य की है किन्तु कहानियो को परस्पर मिलाने का सदैव प्रयास किया है। यह विशेषता शरतचन्द्र के दो कहानियों वाले उपन्यासो मे स्पष्टतः देखी जा सकती है। 'चरित्रहीन' और 'शेषप्रश्न' मे दो-दो कहानिया हैं किन्तु उन कहानियो के संयोग सूत्र को अत्यन्त कुशलता के साथ मिलाया गया है। कही भी एक से अधिक कहानियों के कारण जटिलता और उलझाव नहीं उत्पन्न हुआ है। 'शेषप्रश्न' की दो कथाएं 'शिवनाथ' और 'मनोरमा' तथा 'अजित' और 'कमल' से सम्बन्धित हैं। प्रारम्भ में कथा का विकास 'शिवनाथ' और 'कमल' के विवाह-सम्बन्ध विच्छेद से किया गया है, जिससे कथानक को एक नया मोड दिया गया है। परिणामतः विवाह-विच्छेद की घटना के कारण ही दो स्वतन्त्र कहानिया निर्मित हुई हैं जो एक दूसरे से अलग विकसित होती दिखाई पड़ती हैं। उन कहानियों के बीच मे परस्पर संयोग-सूत्र नहीं दिखाई पडता। किन्तु दोनो कहानियों के बीच मे 'आशुबाबू' की स्थापना, दो कहानियो को अलग-अलग नहीं होने देती। 'आशुबाबू' प्रत्येक के हृदय पर समानाधिकार रखते हैं। परिणामतः दोनो कहानिया परस्पर सम्बन्धित प्रतीत होती हैं।

'शेषप्रश्न' की अपेक्षा 'चरित्रहीन' की कहानिया परस्पर अधिक दूर और बिखरी हुई हैं। 'सावित्री' और 'किरणमयी' का आपस मे कोई लगाव नहीं है। वे कभी एक दूसरे से मिली भी नहीं हैं और दोनों ही परस्पर भिन्न कहानियों की नायिकाएं हैं किन्तु परस्पर भिन्न होने पर भी 'उपेन्द्र' दोनो नायिकाओं को मिलाने का कार्य करता है। उपन्यास के प्रारम्भ मे 'उपेन्द्र' का सम्पर्क 'किरणमयी' के साथ एक निकट आत्मीय व्यक्ति के रूप में रहा है किन्तु कथानक के विकास-क्रम में देखा जाता है कि 'किरणमयी' दूर होती जाती है और 'सावित्री' 'उपेन्द्र' के निकट आती जाती है। उपन्यास के अन्त मे 'उपेन्द्र' की मृत्यु-शैया के आसपास 'सावित्री' और 'किरणमयी' [illegible] अपने बा[illegible] कथाओं के [illegible]

प्रेमचन्द ने घटना-वैचित्र्य के द्वारा कथानक को रोचक बनाने पर बल दिया है। प्रेमचन्द का कहना है कि—"उपन्यासकार को इसका अधिकार है कि वह अपनी कथा को घटना-वैचित्र्य से रोचक बनाये, लेकिन शर्त यह है कि प्रत्येक घटना असली ढाँचे से निकट सम्बन्ध रखती हो। इतना ही नहीं बल्कि उसमे इस तरह घुल-मिल गयी हो कि कथा का आवश्यक अंग बन जाय अन्यथा उपन्यास की कला उस पर की-सी हो जायगी जिसके हर एक हिस्से अलग अलग हों। जब लेखक अपने मुख्य विषय से हटकर किसी दूसरे प्रश्न पर बहस करने लगता है तो वह पाठक के उस आनन्द में बाधक हो जाता है जो उसे कथा में आ रहा था। उपन्यास मे वही घटनायें, वही विचार लाने चाहिये जिनसे कथा का माधुर्य बढ़ जाये, जो प्लाट के विकास मे सहायक हो अथवा चरित्रों के गुप्त मनोभावों का प्रदर्शन करते हो।"[16] प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो में उक्त सिद्धान्तों का निर्वाह करने का प्रयास किया है जिससे कुछ घटनाए अवश्य रोचक और कथावस्तु से अलग अंकित हुई है। 'गोदान' मे 'धुनिया' की कथा इसका ज्वलंत उदाहरण है। ऐसी घटनायें कथावस्तु से घनिष्ठ रूप मे सम्बद्ध न होने पर भी उपन्यास में अपना विशेष महत्त्व रखती है। किन्तु प्रेमचन्द के उपन्यासों मे निरुद्देश्य घटनाओ का अभाव भी नही है। प्रेमचन्द के प्राय सभी उपन्यासों मे कुछ ऐसी घटनायें उपस्थित की गयी हैं जिनका कथानक में कोई प्रयोजन नही सिद्ध होता तथा व्यर्थ मे भ्रम उत्पन्न करने वाली होती हैं। 'कायाकल्प' मे 'चक्रधर' का साधु हो जाना, फिर 'मनोरमा' के भवन मे उसका गोपन प्रवेश और 'चिड़िये' का पिंजड़ा छोड़कर चले जाना इसी प्रकार की घटनायें हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासो मे कथावस्तु के सम्बन्ध मे एक प्रवृत्ति विशेष उल्लेखनीय है कि प्रेमचन्द ने संयोगों और आकस्मिक घटनाओ की सृष्टि के द्वारा कथानक की कला-

रसकता और स्वाभाविकता को बाधा पहुंचाई है। उनकी प्रारम्भिक कृतियों—'वरदान', 'प्रतिज्ञा', 'निर्मला' और 'सेवासदन'—मे यह प्रवृत्ति विशेष उल्लेखनीय है। इन उपन्यासो में संयोगों और आकस्मिक घटनाओं की प्रचुरता है—"दारानगर की रानी साहिबा मर चुकी थी, सांस टूट रही थी कि बाला जी को सूचना हुई। झट आ पहुंचे और क्षण मात्र मे उठाकर बैठा दिया।"[२०] यह प्रवृत्ति प्रेमचन्द के प्रारम्भिक उपन्यासो तक ही नही सीमित है। 'कर्मभूमि' और 'गोदान' जैसी प्रौढ कृतियों में भी इस दोष का निवारण नहीं किया जा सका है। 'गोदान' मे दीर्घ अवधि के उपरान्त 'होरी' का अपने भाई का स्मरण करना और प्रातः आंख खुलते ही 'हीरा' का स[illegible] उपस्थित होना इस बात का उदाहरण है।

शरतचन्द्र के उपन्यासो में कथावस्तु के निर्माण में संयोगों और आक[illegible] घटनाओं का आश्रय नहीं लिया गया है। प्रासंगिक रूप मे ही कुछ घटनाओं का चि[illegible] हुआ है। शरतचन्द्र मे घटनाओं को आगे-पीछे एक-दूसरे से सम्बन्धित कर देने [illegible] अनुपम कुशलता है। 'श्रीकांत' मे 'अन्नदा दीदी' और 'इन्दु' की कथा के उपरान्त [illegible] श्रीकांत को एक युवक के रूप मे पाते हैं। उस समय श्रीकांत मे दो प्रमुख गुण विक[illegible] हुए हैं। प्रथम तो वह निर्भीक और साहसिक है। दूसरे वह कुशल शिकारी और अच्[illegible] निशानेबाज है। प्रथम गुण के सम्बन्ध में जानकर पाठक को कौतूहल नहीं होता क्योंकि 'इन्द्रनाथ' का साथ 'श्रीकांत' के भावी चरित्र की भूमिका है। किन्तु 'श्रीका[illegible] का कुशल शिकारी होना आकस्मिक लगता है। शरतचन्द्र ने 'श्रीकांत' के शिकारी जीवन को 'कुमार साहब' के साथ उपन्यास के चौथे पर्व में सम्बन्धित किया है। अत[illegible] प्रथम पर्व की घटना को चौथे पर्व मे अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से जोड़ दिया है। अप[illegible] बचपन के मित्र 'गौहर' का उल्लेख करते हुए श्रीकांत कहता है—"बचपन मे बन्दूक चलाना उसी से सीखा था। उसके पिता की एक पुरानी बन्दूक थी, उसको लेकर नदी के किनारे आम के बगीचों मे झाड़ और झंखाड़ों मे घूमकर हम दोनों चिड़ियों का शिकार किया करते थे।"[२१]

शरतचन्द्र के उपन्यासों मे कथानक के अन्तर्गत घटनाओ का सृजन प्रेमचन्द के उपन्यासों के समान शिथिल नही है। शरतचन्द्र कथानक की आवश्यकता को दृष्टि में रखकर ही घटना की सृष्टि करते हैं। इस सम्बन्ध मे शरतचन्द्र ने स्वयं अपने अनुभव को व्यक्त किया है जिसका अधिकाधिक पालन उनके उपन्यासो में हुआ है—"बहुत-सी बड़ी चीजें छोड़ देनी पड़ती हैं। बहुत कुछ बोलने के लोभ का संवरण करना पड़ता है, तब चित्र बनता है। बोलने या अंकन करने से न बोलना या न अंकन करना अत्यन्त कठिन है। बहुत आत्मसंयम करना, बहुत लोभ का दमन करना पड़ता है। तभी सचमुच में बोलना या अंकन करना होता है।"[२२] यही कारण है कि शरतचन्द्र के उपन्यासों

की घटनाओं मे क्रमबद्धता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासो के कथानक, जीवन की सामान्य स्थितियों से परिपूर्ण हैं। परिणामत: प्रेमचन्द के उपन्यासो मे भावी घटनाचक्र को जाना जा सकता है। शरतचन्द्र के उपन्यासो मे मानव की असाधारण परिस्थितियो का समावेश अधिक हुआ है। यही कारण है कि शरतचन्द्र के उपन्यासों के कथानकों मे भावी परिवर्तन अथवा घटनाक्रम का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनो ही उपन्यासकारों ने वस्तु-निर्माण मे अत्यन्त सरल और बोधगम्य शैली को अपनाया है। उनके उपन्यासो मे जीवन के सुपरिचित विषयों को ही कथानक का आधार बनाया गया है। किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से प्रेमचन्द के उपन्यासो की कथावस्तु मे शरतचन्द्र की अपेक्षा अधिक जटिलतायें हैं। 'रंगभूमि' और विशेष रूप से 'कायाकल्प' मे इसे देखा जा सकता है। 'कायाकल्प' की कथा का मुख्य स्वर शोषण और दरिद्रता के विरुद्ध एक रचनात्मक आन्दोलन प्रस्तुत करना है। किन्तु *जन्म-जन्मान्तरवाद के मोह मे पड़कर विभिन्न धारणाओं के अस्पष्ट दर्शन मे सम्पूर्ण* कथावस्तु उलझी हुई है। प्रेमचन्द की अपेक्षा शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासो की कथावस्तु को जीवन की असाधारण परिस्थितियो से ग्रहण किया है परन्तु अस्पष्टता अथवा उलझाव नहीं उत्पन्न हुआ है। शिल्प की दृष्टि से प्रेमचन्द के उपन्यासो के कथानकों मे विविधता का अभाव है। 'वरदान' से लेकर 'गोदान' तक प्रेमचन्द ने अपने सभी कथानकों को एक ही रूप मे विकसित किया है। इसके विपरीत शरतचन्द्र ने 'श्रीकांत' मे अपने सभी उपन्यासो से भिन्न शैली पर कथानक को विकसित किया है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों के उपन्यासों मे प्राय ठोस कथावस्तु के आधार पर ही कथानकों का विकास किया गया है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनो ही उपन्यासकारों ने घटनाओं और परिस्थितियो को क्रम से संयोजित कर कथावस्तु को अत्यन्त स्पष्ट रखा है, दुरूह और जटिल होने से बचाया है।

उपन्यास के चरित्रों के सम्बन्ध मे विचार करते हुए प्रख्यात आलोचक ई० एम० फार्स्टर ने लिखा है कि "उपन्यासकार आत्माभिव्यक्ति करता हुआ कुछ-एक मूर्तियाँ बना डालता है, फिर उनका नामकरण कर उनमे लिंग जोड़ता है, उन्हें अनुभव प्रदान करता है, उनमे उद्धरण चिह्नों मे बातचीत करवाता है और कदाचित् उनमे अनुमानित व्यवहार भी करवाता है। ये शब्द-मूर्तियाँ ही उपन्यासकार के चरित्र होते हैं।"[63] फार्स्टर ने चरित्रों के सम्बन्ध मे जो विचार व्यक्त किया है उससे प्रतीत होता है कि वे कथानक को चरित्र से नितान्त भिन्न मानते हैं जब कि ये दो तत्व एक-दूसरे से अत्यन्त [illegible] नहीं रखते हैं। निःसंदेह कथानक उपन्यास का तत्व [illegible] त्मक के अभाव मे उपन्यास का वास्तविक रूप नहीं

प्रस्तुत किया जा सकता। उपन्यास का मुख्य विषय मानव है और मानव का चित्र करना ही उपन्यासकार का लक्ष्य होता है।

चरित्रचित्रण उपन्यासकार के अनुभवों पर आधारित होता है। कोई उपन्यासकार अपने पात्रों में शक्ति, स्फूर्ति और चेतना का संचार नहीं कर सकता जब तक उसके सामने सजीव उदाहरण नहीं होंगे। वस्तुतः उपन्यासकार व्यक्ति को ठीक उस रूप में भी अपनी कृतियों में नहीं प्रस्तुत करता है, जिस रूप में वह उसे देखता है अथवा जिस रूप में किसी व्यक्ति की मूर्ति स्मृति में होती है। उपन्यासकार स्वानुभूत परोक्ष सत्य में कल्पना का पुट अवश्य देता है। कल्पना से आवेष्टित सत्य की अभिव्यक्ति करना उपन्यासकार का लक्ष्य होता है। औपन्यासिक पात्र का निर्माण वस्तुजगत् के व्यक्तियों द्वारा तो प्रेरित होता है, पर उसकी पूरी अनुकृति नहीं होता। उपन्यासकार एक या अनेक व्यक्तियों से उनका, उनके आकार-प्रकार, गुण-अवगुण, स्वभाव आदि का वह अंश लेता है जिसकी उसे आवश्यकता होती है। अपने नित्यप्रति के जीवन से सम्बन्धित या पूर्व-परिचित व्यक्तियों में से वह किसी का मुख ले लेता है, किसी का शरीर, किसी का स्वास्थ्य ले लेता है, किसी का स्वभाव, किसी के गुण ले लेता है किसी के अवगुण। उन सब व्यक्तियों को छोड़ कर वह एक पात्र रच डालता है जिसे कल्पना की कूँची से, थोडा इधर से और थोडा उधर से, छूकर सजीवता प्रदान कर देता है। उसका पात्र सभी से कुछ न कुछ ले लेता है पर अपने को ऋणी किसी का नहीं मानता है।"[२४]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने प्रायः प्रत्यक्ष जीवन से प्रेरित होकर अपने उपन्यासों के चरित्रों का सृजन किया है। किन्तु दोनों कलाकारों ने जीवन-सत्य को कलात्मक शैली में परिवर्तित कर अपने उपन्यासों के चरित्रों को महत्त्वपूर्ण बना दिया है। प्रत्यक्ष जीवन से ग्रहण किये जाने के कारण दोनों उपन्यासकारों के चरित्र प्रभावशाली हैं। अच्छे और बुरे का मिश्रण ही चरित्रचित्रण की विशेषता है क्योंकि सामान्य मनुष्य में दोनों ही गुण पाये जाते हैं। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने इस दृष्टिकोण से अपने उपन्यासों के पात्रों का निर्माण किया है। यही कारण है कि प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों के चरित्र हमारे जाने-पहचाने व्यक्ति प्रतीत होते हैं।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यास चरित्र-प्रधान हैं। चरित्र-प्रधान उपन्यासों के लेखक चरित्र-चित्रण में विशेष रुचि रखते हैं तथा उनके चरित्र ही उपन्यास की कहानियों को थोड़ा मोड़ देने पर उन्हें कथानक में परिवर्तित कर देते हैं। प्रेमचन्द की अपेक्षा शरतचन्द्र के उपन्यासों में यह विशेषता अधिक स्पष्ट रूप में परिलक्षित होती है। प्रेमचन्द चरित्र-चित्रण और कथानक में संतुलन बनाये रखते हैं। इसी से प्रेमचन्द के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण के साथ-साथ परिपुष्ट कथावस्तु भी पायी जाती है।

शरत्चन्द्र का लक्ष्य चरित्र को उभारना रहता है। शरतचन्द्र के उपन्यासो मे प्राय: चरित्र चित्रण के माध्यम से ही कथावस्तु की अवतारणा होती है। 'देवदास', 'विराज बहू' और 'विप्रदास' मे चरित्रों के आधार पर कथावस्तु का विकास किया गया है। शरतचन्द्र के कतिपय चरित्रों की इतनी शक्ति है कि वे उपन्यास को वस्तु अपने मे समेटे रहते है। 'शेषप्रश्न' इसका ज्वलन्त उदाहरण है जिसमे 'कमल' की पात्रता अपने आप मे कथानक भी है। चरित्र-चित्रण पर विशेष ध्यान देने पर भी प्रेमचन्द कथावस्तु को गौण नही होने देते। 'रगभूमि' मे पात्रो का भारी कोलाहल है किन्तु 'रगभूमि' मे एक निश्चित कथावस्तु भी है। 'कर्मभूमि' और 'गोदान मे चरित्र-चित्रण का विकास उच्च स्तरीय शैली पर किया गया है किन्तु कथावस्तु को हीन नही बनाया गया है। शरतचन्द्र के कतिपय उपन्यासो मे चरित्रचित्रण पर विशेष बल दिया गया है जिसके कारण कथानक गायब हो गया है। 'शेषप्रश्न' मे उपन्यासकार 'कमल', 'अजित' और 'आशुबाबू' के चरित्रचित्रण मे इतना मलग्न रहा है कि उसका ध्यान कथानक की ओर नहीं जा सका जिसमे 'शेषप्रश्न' मे सतुलित कथानक पर विकसित चरित्रचित्रण का अभाव खटकता है।

प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र ने एक निश्चित स्तर तक अपने चरित्रो को उठाया है, शक्ति-सम्पन्न किया है और उनको गहराई दी है। 'होरी', 'अमरकान्त', 'सुखदा' 'मुनिया', 'श्रीकांत', 'सतीश', 'कमल' और 'राजलक्ष्मी' दोनो उपन्यासकारो की प्रतिभा के परिचायक हैं। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो मे चरित्र-चित्रण के लिए व्यापक क्षेत्र अपनाया है। प्रेमचन्द के उपन्यासों मे आधुनिक युग के प्राय सभी तबको का प्रतिनिधित्व किया गया है। जमींदार-किसान, मिलमजदूर-मालिक, क्लर्क और अफसर, पंडित और गवार, वकील, प्रोफेसर और डाक्टर, पतिव्रता और पतिता, विधवा और वेश्या, माता, विमाता; पिता और पुत्र, सूदखोर और ऋणी तथा अदालतो के अहलकारो-कारिंदो तथा न्यायाधीशो तक को अपने चरित्र-चित्रण मे प्रेमचन्द ने समेट लिया है। इस प्रकार प्रेमचन्द ने चरित्र-चित्रण मे अपने विस्तृत अनुभव का परिचय दिया है। शरतचन्द्र के चरित्र-चित्रण का क्षेत्र सीमित और सकुचित है। शरतचन्द्र ने जीवन के सीमित क्षेत्र से अपने पात्रो का चयन किया है। शरतचन्द्र की दृष्टि मध्यवर्गीय समाज पर केन्द्रित रहती है, इसी से शरतचन्द्र के अधिकाश पात्र मध्यवर्गीय हैं। प्रेमचन्द की भाति चरित्र-चित्रण मे व्यापक परिवेश को ग्रहण कर शरतचन्द्र नही चले हैं।

प्रेमचन्द के चरित्र-चित्रण का क्षेत्र व्यापक होने के साथ-साथ एक ही प्रकार के चरित्रों मे भी प्राय: विभिन्नता है। प्रेमचन्द मे एक ही चरित्र के विभिन्न रूप अंकित करने की क्षमता है। सूदखोर पात्रों के भी विभिन्न रूप हैं। 'सहुआइन', 'दातादीन' (गोदान) 'महत रामदास' (सेवासदन) तथा 'मि० खन्ना' (गोदान) मे सूदखोर के

भिन्न-भिन्न रूप अंकित हुए हैं। 'सहुआइन' और 'दातादीन' का क्षेत्र सीमित है। वे अपनी थोड़ी पूंजी के आधार पर गांवों में रुपया देते हैं। 'महंत रामदास' को सूदखोरी धर्म के नाम पर शोषण से संलग्न हैं और 'मि० खन्ना' आधुनिक टाइप के बैंकर हैं। बड़े-बड़े जमींदारों और मिल-मालिकों को लम्बी-लम्बी रकमें देते हैं और स्वयं मिल-मालिक बन बैठते हैं। प्रेमचन्द के किसान-जीवन के पात्र भी एक दूसरे से भिन्न हैं। 'होरी' और 'गोबर' तथा 'मनोहर' और 'बलराज' में अन्तर है। 'होरी' प्राचीन मान्यताओं को अपना कर चलने वाला सहिष्णु किसान है किन्तु 'गोबर' और 'बलराज' उग्र क्रान्तिकारी और अपने अधिकारों के प्रति सचेत किसान हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रेमचन्द की यह विशेषता उनके सभी पात्रों में नहीं पाई जाती। प्रेमचन्द के उपन्यासों में महन्तों का चरित्र-चित्रण प्रायः एक-सा हुआ है। इसी प्रकार प्रोफेसर के चरित्र-चित्रण में भी भिन्नता का अभाव है। इस सम्बन्ध में पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन करते समय विस्तार से विचार किया गया है।

प्रेमचन्द की अपेक्षा शरतचन्द्र अपने पात्रों को अधिक दोहराते हैं। व्यक्तियों की विभिन्न धारणाओं को शरतचन्द्र के पात्र अपना कर चलते हैं। किन्तु भावों की बाहुल्यता के परिणामस्वरूप शरतचन्द्र के पात्र सारूप्य प्रतीत होते हैं। यद्यपि हमारे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि शरतचन्द्र के पात्रों में विभिन्नता नहीं है किन्तु प्रेमचन्द की तुलना में एक ही प्रकार के पात्रों के विभिन्न रूपों का अभाव है। 'श्रीकांत', 'सतीश', 'सुरेश' और 'देवदास' में इस बात को स्पष्टतः देखा जा सकता है।

प्रेमचन्द ने अपने पात्रों में सामान्य मनुष्य का चित्र खींचने का प्रयास किया है। शरतचन्द्र चरित्र-चित्रण करते समय विशिष्ट व्यक्ति की सृष्टि करते हैं जिससे चरित्रों के विभिन्न रूपों का विकास नहीं हुआ है। किन्तु यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि शरतचन्द्र और प्रेमचन्द अपने पात्रों को जितनी गहन दृष्टि दे सके हैं वह कम उपन्यासकारों में पायी जाती है। किसान-जीवन को गहराई से जानने के कारण ही 'होरी' को वे विराट् बना सके हैं। निःसन्देह 'होरी' महान् चरित्र है। उसका निर्माण कलाकार की गहन दृष्टि का परिचायक है। शरतचन्द्र ने मध्यवर्गीय चेतना से प्रभावित होकर चरित्रों की सृष्टि की है। 'श्रीकांत', 'सतीश' और 'सुरेश' शरतचन्द्र के ऐसे ही पात्र हैं। इन पात्रों के निर्माण में उपन्यासकार की तीव्र और कलात्मक दृष्टि को देखा जा सकता है।

प्रेमचन्द की विशेषता है कि वे साधारण मनुष्य को अपनी चरित्र चित्रण की शैली की कुशलता के द्वारा प्रभावशाली बना देते हैं। 'होरी', 'बलराज' और 'गोबर' मनुष्य के सामान्य गुणों को अपनाये हुए मानव हैं किन्तु प्रेमचन्द ने उनके चरित्रों को विशाल धरातल पर चित्रित कर उनको महिमावान बनाया है। 'होरी' और 'बलराज'

साधारण किसान हैं और 'सुभदा' पतिव्रता भारतीय पत्नी है। 'सूरदास' मे विशेषता को और भी निखरे रूप से देखा जा सकता है। 'सूरदास' की वास्तवि का कुछ भी पता नहीं। वह अंधा है, भीख मांगता है, इसी से वह 'सूरदास' बन गय एक साधारण भिखारी के चरित्र को ऊँचा उठाना दृष्टि की सूक्ष्मता का परिचा है। प्रेमचन्द की अपेक्षा शरतचन्द्र परिष्कृत बुद्धि वाले, रूमानी और भावुक पात्रों विकास आसानी से कर लेते हैं। शरतचन्द्र मानव-सौन्दर्य के चित्रकार हैं। इसी शरतचन्द्र के पात्रों मे मनुष्य की साधारण परिस्थितियों की अपेक्षा असाधारण प स्थितियों को अंकित कर चरित्र-सृष्टि की गयी है। 'श्रीकांत', 'कमल', 'राजलक्ष आदि सभी को इस बात के समर्थन के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है।

प्रेमचन्द मानव की असत् प्रवृत्तियों के आधार पर खल पात्रों के चित्रण में कुशल हैं। 'प्रेमाश्रम' का 'ज्ञानशंकर' प्रेमचन्द की प्रतिभा की इस विशेषता का प चायक है। खलनायक के रूप मे 'ज्ञानशंकर' प्रेमचन्द का ही नहीं हिन्दी उपन्या में सर्वाधिक सफल पात्र है। शरतचन्द्र की प्रतिभा खल पात्रों के सृजन में प्रेमच की भांति नहीं निखर पायी है। वस्तुत भावुकता शरतचन्द्र का जन्मजात गुण है अ प्रेमचन्द मे ग्रामीण जीवन की खरखराहट का गहरा अनुभव है। इसी से 'ग्रामी समाज' का 'बेनी घोषाल' 'ज्ञानशंकर' की तुलना में एक असफल खलनायक है 'बेनी घोषाल' की सृष्टि में परिस्थितियों का वह उन्मेष नहीं है जो 'ज्ञानशंकर' पाया जाता है।

प्रेमचन्द अपने किसी पात्र को विकसित करते समय स्वयं को उससे अल नहीं रख पाते। प्रेमचन्द अपने पात्रों के साथ सम्पृक्त रहते हैं तथा उन्हें अपना दृ कोण अवश्य प्रदान करते हैं। परिणामत चरित्रों का स्वाभाविक विकास नहीं पाता। यह बात प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कृतियों में अधिक पायी जाती है कि उत्तरोत्तर प्रेमचन्द की इस शैली में परिवर्तन हुआ है। 'गबन', 'रंगभूमि' और 'गोदा आदि उपन्यासों में प्रेमचन्द अपने पात्रों को अपना दृष्टिकोण तो अवश्य देते हैं कि उनके स्व[illegible] तो भी बाधा नहीं पहुँचाते। 'सूरदास' और 'होरी' प्रेमच के ऐसे ही [illegible] स्वतन्त्र अपने पात्रों के निर्माण में तथा उनके विकास

भिन्न-भिन्न रूप अंकित हुए हैं। 'सहुआइन' और 'दातादीन' का क्षेत्र सीमित है। वे अपनी थोड़ी पूंजी के आधार पर गांवों में रुपया देते हैं। 'महंत रामदास' की सूदखोरी धर्म के नाम पर शोषण में संलग्न है और 'मि० खन्ना' आधुनिक टाइप के बैंकर हैं। बड़े-बड़े जमींदारों और मिल-मालिकों को लम्बी-लम्बी रकमें देते हैं और स्वयं मिल-मालिक बन बैठते हैं। प्रेमचन्द के किसान-जीवन के पात्र भी एक दूसरे से भिन्न हैं। 'होरी' और 'गोबर' तथा 'मनोहर' और 'बलराज' में अन्तर है। 'होरी' प्राचीन मान्यताओं को अपना कर चलने वाला सहिष्णु किसान है किन्तु 'गोबर' और 'बलराज' उग्र क्रान्तिकारी और अपने अधिकारों के प्रति सचेत किसान हैं। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि प्रेमचन्द की यह विशेषता उनके सभी पात्रों में नहीं पाई जाती। प्रेमचन्द के उपन्यासों में महन्तों का चरित्र-चित्रण प्रायः एक-सा हुआ है। इसी प्रकार प्रोफेसर के चरित्र-चित्रण में भी भिन्नता का अभाव है। इस सम्बन्ध में पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन करते समय विस्तार से विचार किया गया है।

प्रेमचन्द की अपेक्षा शरतचन्द्र अपने पात्रों को अधिक दोहराते हैं। व्यक्तियों की विभिन्न धारणाओं को शरतचन्द्र के पात्र अपना कर चलते हैं। किन्तु भावों की बाहुल्यता के परिणामस्वरूप शरतचन्द्र के पात्र सारूप्य प्रतीत होते हैं। यद्यपि हमारे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि शरतचन्द्र के पात्रों में विभिन्नता नहीं है किन्तु प्रेमचन्द की तुलना में एक ही प्रकार के पात्रों के विभिन्न रूपों का अभाव है। 'श्रीकांत', 'सतीश', 'सुरेश' और 'देवदास' में इस बात को स्पष्टतः देखा जा सकता है।

प्रेमचन्द ने अपने पात्रों में सामान्य मनुष्य का चित्र खींचने का प्रयास किया है। शरतचन्द्र चरित्र-चित्रण करते समय विशिष्ट व्यक्ति की सृष्टि करते हैं जिनसे चरित्रों के विभिन्न रूपों का विकास नहीं हुआ है। किन्तु यहां यह भी उल्लेखनीय है कि शरतचन्द्र और प्रेमचन्द अपने पात्रों को जितनी गहन दृष्टि दे सके हैं वह कम उपन्यासकारों में पायी जाती है। किसान-जीवन को गहराई से जानने के कारण ही 'होरी' को वे विराट् बना सके हैं। निःसन्देह 'होरी' महान् चरित्र है। उसका निर्माण कलाकार की गहन दृष्टि का परिचायक है। शरतचन्द्र ने मध्यवर्गीय चेतना से प्रभावित होकर चरित्रों की सृष्टि की है। 'श्रीकांत', 'सतीश' और 'सुरेश' शरतचन्द्र के ऐसे ही पात्र हैं। इन पात्रों के निर्माण में उपन्यासकार की तीव्र और कलात्मक दृष्टि को देखा जा सकता है।

प्रेमचन्द की विशेषता है कि वे साधारण मनुष्य को अपने चरित्र-चित्रण के और [illegible]
शैली की कुशलता के द्वारा
[illegible] के सामान्य गुणों

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनो ही उपन्यासकारो के चरित्र-चित्रण की शैली मे नाटकीयता पायी जाती है। दोनो ही उपन्यासकारो ने नाटकीय अथवा अभिनयात्मक शैली द्वारा अपने-अपने पात्रो का विकास किया है। दोनो ही उपन्यासकारो के चरित्र वार्तालाप और क्रिया-प्रतिक्रियाओ द्वारा परस्पर चारित्रिकता को प्रकट करते है। यह प्रवृत्ति दोनो उपन्यासकारों के चरित्रों में प्राय देखी जा सकती है। निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा इस कथन की पुष्टि की जा सकती है।

"कामिनी ने मालती की ओर विषभरी आंखो से देखा और मुँह सिकोड़ लिया, मानो कह रही है—खन्ना तुम्हें मुबारक रहे, मुझे परवा नहीं।

मालती ने मेहता की तरफ देख कर कहा—इस विषय मे आपके क्या विचार हैं मि० मेहता।

मेहता गम्भीर हो उठे। वह किसी प्रश्न पर अपना मन प्रकट करते थे, तो जैसे, अपनी सारी आत्मा उसमे डाल देते थे।"[८८] यहां नाटकीय शैली द्वारा तीन पात्रों-कामिनी, मालती और मेहता के चरित्रों को एक साथ स्पष्ट किया गया है। शरत की यह विशेषता निम्नलिखित उद्धरण मे स्पष्ट हो जाती है।

'कमल' और 'अजित' के चरित्र का कुछ अंश निम्नांकित वार्तालाप मे स्पष्ट हो जाता है।

"गाड़ी थमते ही इधर-उधर देखकर उसने पूछा, यह कहां आ गयी अजित बाबू, मेरे घर का रास्ता तो यह नहीं है?"

अजित ने उत्तर दिया, "नहीं यह घर का रास्ता नहीं।"

"नही है तो लौटना पड़ेगा शायद?"

"सो आप जाने। हुक्म करते ही लौट पड़ूँगा।"

क्षण-भर मौन रह कर उसने अपने को दृढ़ किया और फिर हँसते हुए कहा, "राह भूलने का अनुरोध तो मैंने नहीं किया अजित बाबू, जो गाड़ीवान को हुक्म मुझको ही देना होगा। ठीक जगह पहुंचा देने का दायित्व आपका है, मेरा कर्तव्य है सिर्फ आप पर विश्वास किये रहना।"

"मगर दायित्वबोध की धारणा में अगर भूल कर बैठा होऊँ क्षमा करना।"[८९]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों के चरित्र-चित्रण का विश्लेषण करने से एक सहज निष्कर्ष की उपलब्धि होती है। प्रेमचन्द के उपन्यासों को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे हम अपने निकटस्थ समाज के बदलते हुए मानव-जीवन को जान रहे है तथा शरतचन्द्र के पात्र ऐसा प्रभाव डालते है जैसे हम अपने आपको जान रहे है।

* अन्तर्गत लेखक द्वारा प्रेमचन्द और शरतचन्द्र का विस्तृत [illegible]

'होरी' (गोदान) के वार्तालाप में किसान-जीवन की वास्तविकता व्यक्त होती है। 'सुखदा' (कर्मभूमि) में प्रौढ़ नारी का व्यक्तित्व 'सुमन' (सेवासदन) के वार्तालाप में परिस्थितियों से घिरी हुई नारी-जीवन की मजबूरियां प्रकट होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कथोपकथन में प्रेमचन्द ने पात्रों की मानसिक पृष्ठभूमि को अत्यन्त स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत किया है।

शरत्चन्द्र भी अपने उपन्यासों में पात्रों के वार्तालाप में उनके मानसिक संघटन का ध्यान रखते है। यह विशेषता शरतचन्द्र के प्राय सभी उपन्यासों में पायी जाती है। कतिपय उदाहरणों द्वारा इस बात की पुष्टि की जा सकती है

"लगभग दस मिनट जब इस तरह बीत गये, तब किरणमयी ने धीरे-धीरे कहा—अच्छा बताओ तो देवर जी, आड़ में अगर कोई हम दोनों को इस तरह चुपचाप बैठे देख ले, तो क्या समझेगा? इतना कह कर वह होठ दबाकर हँसी। इस हँसी को आँखों से न देखने पर भी उपेन्द्र ने अपने हृदय के भीतर अनुभव किया। कहा— अच्छा नहीं समझेगा। किरणमयी ने कहा—तो फिर?

उपेन्द्र ने कहा— क्या कहूं भाभी, कोई बात ही जैसे कहने को नही सूझती। किरणमयी ने हँसकर कहा—नही सूझती अच्छा तो मैं सुझाये देती हू। लेकिन इसके पहले यह खबर दिये रखती हू कि खाना बनाकर और खिलाकर विदा करने तक मुझे आध घंटे से अधिक समय नही लगेगा। इतनी देर तुम प्रसन्न मुख से बातें करो, इस तरह मन भारी करके मत बैठे रहो। उपेन्द्र ने जोर करके हँसकर कहा — अच्छी बात है, कहिये।

किरणमयी फिर होठ दबाकर हँसती हुई बोली—गनीमत है, भाभी का मान रख कर जरा हँसे तो। तुमको जब से देखा है देवर जी, तब से एक बात अक्सर मेरे मन में आती है। लेकिन सुनकर कही उल्टा अर्थ लगाकर नाराज तो न हो जाओगे?

उपेन्द्र ने कहा—ना नाराज क्यों हूगा?

किरणमयी ने कहा—जानते हो देवर जी, अच्छे-अच्छे काव्यों में पढने को मिलता है—चाहे वे हमारे देश के हो और चाहे विदेशो के हों—कि पहली बार देखते ही प्रगाढ़ प्रेम ' अच्छा, यह क्या तुम सम्भव मानते हो?

उपेन्द्र का मुख-मण्डल पलक मारते ही लज्जा से लाल हो उठा। उन्होंने कहा —अच्छे-बुरे किसी भी काव्य के बारे में मुझे कोई विशेष जानकारी नही है भाभी। यह सब मैं नहीं जानता।"[४२] प्रस्तुत उद्धरण में किरणमयी के मानसिक सस्थान में छिपी नारी की प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति हुई है तथा 'उपेन्द्र' के स्वभाव की गम्भीरता को भी स्पष्टत देखा जा सकता है। इस प्रकार शरतचन्द्र के अन्यान्य उपन्यासों में भी इस विशेषता को देखा जा सकता है। 'कमल' (शेषप्रश्न) के वार्तालाप में तीक्ष्ण बौद्धिक

संवाद के माध्यम से ही करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि संवाद की उपयोगिता पात्रों और कथावस्तु के विकास में ही निहित है। प्रेमचन्द ने भी संवाद के महत्व को स्वीकार करते हुए लिखा है—"उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाय उतना ही उपन्यास सुन्दर होगा। वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिये, प्रत्येक वाक्य को जो किसी चरित्र के मुंह से निकले—उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश डालना चाहिये। बातचीत का स्वाभाविक परिस्थितियों में अनुकूल सरल और सूक्ष्म होना जरूरी है।"[३०] यहाँ यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द कथोपकथन को पात्रों के मनोभावों और चारित्रिक विशेषताओं के लिए कितना उपयोगी मानते हैं।

पात्र की चारित्रिक विशेषताओं तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेगों को अभिव्यक्त करने की क्षमता कथोपकथन में होती है। परिणामतः कथोपकथन के द्वारा विकसित चरित्रों में अधिक स्वाभाविकता होती है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों ही उपन्यासकारों ने कथोपकथन द्वारा पात्रों के चरित्र का विकास किया है। अतः दोनों उपन्यासकारों की कृतियों में कथोपकथन का प्रयोग किया गया है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों के कथोपकथन की विशेषता है कि दोनों लेखकों ने पात्रों की मानसिक सघटना को दृष्टि में रखकर कथोपकथन की सृष्टि की है। दोनों उपन्यासकारों के कथोपकथन पात्रों की मानसिक सघटना के अनुकूल होते हैं। ग्रामीणों के मानसिक स्तर की दृष्टि से 'गोदान' का एक उदाहरण उल्लेखनीय है—"दातादीन ने सुरती मलते हुए कहा—कुछ सुना, सरकार भी महाजनों से कह रही है कि सूद का दर घटा दो, नहीं डिग्री न मिलेगी।"

"झिंगुरी तमाखू फाककर बोले—पंडित—मैं तो एक बात जानता हूँ। तुम्हें गरज पड़ेगी तो सौ बार हमसे उधार लेने आओगे, और हम जो ब्याज चाहेंगे लेंगे। सरकार अगर असामियों को रुपया उधार देने का कोई बन्दोबस्त न करेगी, तो हमें इस कानून से कुछ न होगा। हम दर कम लिखायेंगे, लेकिन एक सौ में पच्चीस पहले ही काट लेंगे। इसमें सरकार क्या कर सकती है।"

"यह तो ठीक है, लेकिन सरकार भी इन बातों को खूब समझती है। इसकी भी कोई रोक निकालेगी, देख लेना? अच्छा अगर यह शर्त कर दे, जब तक स्टाम्प पर गांव के मुखिया या कारिन्दा के दसखत न होंगे वह पक्का न होगा। तब क्या करोगे?"

"असामी को सौ बार गरज होगी। मुखिया को हाथ-पांव जोड़कर लायेगा और दसखत करायेगा। हम तो एक चौथाई काट ही लेंगे।"

"और जो फस जाओ। जाली हिसाब लिखा और गये चौदह साल को।"[३१]

प्रेमचन्द के उपन्यासों में इस विशेषता को स्थल-स्थल पर देखा जा सकता है

चेतना 'इन्द्र' (श्रीकांत) के कथोपकथन मे साहसिक बालक का कौतूहल तथा 'सतीश' और सावित्री के कथोपकथनो मे 'सतीश' में उन्मुक्त लापरवाही की मानसिक स्थितियां देखी जा सकती हैं।

प्रेमचन्द के पात्रो के कथोपकथन पात्रों की मानसिक स्थिति के अनुकूल तो होते ही हैं साथ ही प्रेमचन्द ने पात्रों के स्थानीय प्रभावों का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा है। यह विशेषता प्रेमचन्द के किसान पात्रों के उद्धरणों से स्पष्ट हो जायगी।

"मनोहर—सुनते हैं अंग्रेज लोग घी नहीं खाते।

सुक्खू—घी क्यो नही खाते ? बिना घी दूध के इतना बूता कहां से होगा ? वह मसक्कत करते हैं, इसी से उन्हें घी पच जाता है। हमारे देशी हाकिम खाते तो बहुत हैं पर खाट पर पड़े रहते हैं। इसी से उनका पेट बढ़ जाता है।

दुखहरन भगत—तहसीलदार साहब तो ऐसे मालूम होते हैं जैसे कोल्हू। अभी पहले आये थे तो कैसे दुबले-पतले थे, लेकिन दो ही साल में उन्हें न जाने कहां की मोटाई लद गयी।

सुक्खू—रिसवत का पैसा देह फुला देता है।

मनोहर—यह कहने की बात है। तहसीलदार एक पैसा भी नही लेते।

सुक्खू—बिना हराम की कौडी खाये देह फूल ही नही सकती।

मनोहर ने हँसकर कहा—पटवारी की देह क्यों नहीं फूल जाती, चुचके आम बने हुए हैं।"[33]

शरतचन्द्र ने भी अपने उपन्यासों के पात्रों के कथोपकथनो में वातावरण और परिस्थितियों का सदैव ध्यान रखा है। परिणामतः शरतचन्द्र के उपन्यासो के कथोपकथन वातावरण और परिस्थिति को स्पष्ट कर देते हैं। 'गृहदाह' में (अचला) और 'महिम' के परस्पर सम्बन्धों की तनावपूर्ण स्थिति को निम्नलिखित कथोपकथन में स्पष्ट किया गया है—

"अचला ने कहा—और मेरे ही साथ तमाम मुहल्ले-भर का झगडा हमेशा होता रहा है, यह खबर तुम्हे कहां से मिली ?

महिम ने धीरे से कहा—दिन-भर तुमने कुछ खाया-पीया नहीं, जाने दो, इन सब बातों को अभी रहने दो।

अचला और भी ज्यादा जल-भुन उठी, बोली—मृणाल जीजी भी तो दिन-भर बिना कुछ खाये-पीये चली गयी लेकिन उनके साथ तो हँस-हँस के बातें करने मे तुम्हें आपत्ति नही हुई ?

महिम दंग रह गया बोला—यह सब तुम क्या कह रही हो अचला ? अचला ने कहा—मैं यह कह रही हूं कि मैंने तुम्हारा ऐसा कौन-सा भारी अपराध किया था,

जिसके लिए इस तरह मेरा अपमान कराये बगैर तुम्हें चैन नहीं पड रहा था।"[34]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों के कथोपकथनो मे पर्याप्त नाटकीयता होती है। दोनो ही उपन्यासकारों ने कथोपकथन की नाटकीय शैली को अपनाकर पात्रों के कथोपकथनों को अधिक स्वाभाविक और सरस बनाया है क्योकि वार्तालाप के द्वारा पात्रो के चरित्र का स्वाभाविक विकास होता है। प्रेमचन्द कथोपकथन को प्रभाव-सम्पन्न करने के लिए नाटकीय तत्व को ग्रहण करते हैं साथ ही वार्ता की वास्तविकता का ध्यान रखकर कथोपकथन की सृष्टि करते हैं जिससे प्रेमचन्द के उपन्यासो के कथोपकथनो मे रोचकता और स्पष्टता परिलक्षित होती है। 'झुनिया' और 'गोबर' के वार्तालाप मे इस विशेषता को स्पष्टत देखा जा सकता है जहाँ दो पात्रों के हृदय की वास्तविकता को उदघाटित करने का प्रयास किया गया है—

"उसने पूछा—मन से कहती हो झुना, कि खाली लालच दे रही हो? मैं तो तुम्हारा हो चुका?

तुम मेरे हो चुके कैसे जानू?

तुम जान भी चाहो, तो दे दू।

जान देने का अरथ भी समझते हो?

तुम समझा दो न।"[35]

सास-ननद के सहज वार्तालाप मे भी नाटकीय शैली के सौंदर्य को देखा जा सकता है -

"सोना ने झुनिया से पूछा मातादीन क्या करने आये थे?

झुनिया ने माथा सिकोड कर कहा—पगहिया मांग रहे थे। मैने कह दिया पगहिया नहीं है।

यह सब बहाना है। बड़ा खराब आदमी है।

मुझे तो बड़ा भला आदमी लगता है। क्या खराब है उसमे?

तुम नही जानती, सिलिया चमारिन को रखे हुए है।

तो इसी से खराब आदमी हो गया।

और

किया है। किन्तु प्रेमचन्द ने कहीं-कहीं नाटकीय तत्त्व पर अधिक जोर दिया है। परिणामतः उनके कुछ कथोपकथनों में बनावटीपन और नीरसता आ गयी है—

"ज्ञानशंकर—हाय प्रिये, किस मुँह से कहूं कि सब कुशल है। वह घर उजड़ गया, उस घर का दीपक बुझ गया। बाबू रामानंद अब इस संसार में नहीं हैं। हा, ईश्वर !"[३७]

यद्यपि प्रेमचन्द के उपन्यासों में इस प्रकार के कृत्रिम कथोपकथन अधिक नहीं हैं फिर भी उनका मोह कभी-कभी देखा जाता है।

प्रेमचन्द की तुलना में शरतचन्द्र के उपन्यासों में कथोपकथन की संवाद-शैली अधिक सफल प्रतीत होती है। क्योंकि शरतचन्द्र के उपन्यासों के कथोपकथन में पर्याप्त नाटकीयता है तथा कथोपकथन छोटे और चुस्त हैं। अपनी नाटकीय कथोपकथन की शैली के द्वारा शरतचन्द्र ने अपने उपन्यासों के महत्त्व को बढ़ाया है। वार्तालाप और संवाद के द्वारा शरतचन्द्र के पात्र पाठकों पर यथेष्ट प्रभाव डालते हैं। 'सतीश'-'सावित्री', 'सतीश'-'किरणमयी', 'सतीश'-'दिवाकर', 'उपेन्द्र'-'किरणमयी' (चरित्रहीन) 'कमल'-'अजित', 'कमल'-'आशुबाबू' (शेषप्रश्न) 'राजलक्ष्मी'-'श्रीकांत', 'कमललता'-'श्रीकांत'-'अभया'-'श्रीकांत' (श्रीकांत) तथा 'डाक्टर'-'भारती' (पथ के दावेदार) के वार्तालाप शरतचन्द्र की कला-निपुणता के लिए यथेष्ट प्रमाण हैं। शरतचन्द्र की संवाद-शैली के विभिन्न रूप भी हैं। कहीं तीखा व्यंग्य है, कहीं मर्मस्पर्शी भावों का उद्घाटन है तथा कहीं शालीनता और माधुर्य से ओत-प्रोत भावधाराओं का सरस उपाख्यान है। 'देवदास' और 'पार्वती' के वार्तालाप में तीव्र व्यंग्य को देखा जा सकता है—

"मैं आ गया हूं पारो !"

पार्वती पहले तो कुछ देर तक चुप रही और अन्त में बहुत ही कोमल स्वर से बोली—क्यों ?

"तुमने लिखा था, याद नहीं है ?"

' नहीं।"

"यह क्या पारो, उस रात की बात याद नहीं आती।"

"याद तो है। लेकिन अब उस बात से मतलब ?"

उसका कंठ-स्वर स्थिर लेकिन बहुत ही रूखा था। देवदास ने उसका मर्म नहीं समझा और कहा—मुझे माफ करो पारो, तब मैंने इतना नहीं समझा था।

"चुप रहो। वे सब बातें सुनना भी मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"जिस तरह से भी होगा मैं माता-पिता को राजी कर लूंगा। केवल तुम—!"

पार्वती ने देवदास के मुख की ओर एक बार तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर कहा—तुम्हारे माता-पिता हैं, और मेरे नहीं हैं ? उनके राजी होने या न होने की जरूरत

नहीं है ?[३५]

'श्रीकान्त' और 'राजलक्ष्मी' के वार्तालाप में भी शरतचन्द्र की संवाद-शैली की विशेषता को देखा जा सकता है—

"प्रश्न किया — लक्ष्मी, एकाएक इस तरह कलकत्ते क्यों चली आईं ?

राजलक्ष्मी ने कहा एकाएक कतई नहीं। उस दिन के बाद रात-दिन चौबीस घंटे मन न जाने कैसा होने लगा कि किसी भी तरह रहा न गया, डर लगा कि कहीं हार्ट-फेल न हो जाय, इस जन्म में फिर कभी आंखों से नहीं देख सकूं।

पूछा — बंकू आज-कल क्या करता है ?

राजलक्ष्मी ने जरा म्लान हँसी हँसकर कहा—बहुओं के आने पर सब लड़के जो करते हैं, वही।[३६]

यहां सहज वार्तालाप द्वारा गार्हस्थिक वातावरण की सृष्टि की गयी है।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के कथोपकथनों में पात्रों के सांस्कृतिक स्तर का पूरा ध्यान रखा है। इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों के शिक्षित पात्रों की भावाभिव्यक्ति तथा ग्रामीण पात्रों की भावाभिव्यक्ति में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। 'प्रो० मेहता' के चिन्तन की भूमि और 'होरी' के सोचने-समझने की शक्ति में स्पष्ट अन्तर है जो उनके कथोपकथनों में भी अभिव्यक्त हुआ है। 'मालती' के साथ 'मि० मेहता' का वार्तालाप तथा 'होरी' और 'सहुआइन' के वार्तालाप में अन्तर को देखा जा सकता है—

"मालती ने मेहता की तरफ देखकर कहा—इस विषय में आपके क्या विचार हैं मिस्टर मेहता ?"

मेहता गम्भीर हो गये। वह किसी प्रश्न पर अपना मत प्रकट करते तो जैसे अपनी सारी आत्मा उसमें डाल देते थे।

"विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूँ और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है न स्त्री को। समझौता करने के पहले आप स्वाधीन हैं, समझौता हो जाने के बाद आपके हाथ कट जाते हैं।"

"तो आप तलाक-विरोधी हैं, क्यों ?"

"पक्का।"

"और मुक्त भोग वाला सिद्धान्त ?"

"वह उनके लिए है जो विवाह नहीं करना चाहते।"

"अपनी आत्मा का सम्पूर्ण विकास सभी चाहते हैं। फिर विवाह कौन करे और क्यों करे ?"

"इसी लिए कि मुक्ति सभी चाहते हैं, पर ऐसे बहुत कम हैं, जो मोह से

अपना गला छुड़ा सकें।"

"आप श्रेष्ठ किसे समझते हैं, विवाहित जीवन को या अविवाहित जीवन को?"

"समाज की दृष्टि मे विवाहित जीवन को, व्यक्ति की दृष्टि से अविवाहित जीवन को।"[४]

प्रेमचन्द के उपन्यासो के कथोपकथनों में पात्रों के अनुकूल भाषा का भी प्रयोग किया गया है। प्रेमचन्द के प्रारम्भिक उपन्यासों के मुसलमान पात्र क्लिष्ट उर्दू-फारसी का प्रयोग भी करते हैं। 'सेवासदन' के मुसलमान पात्रो का इस सम्बन्ध में उल्लेख किया जा सकता है। किन्तु परवर्ती उपन्यासों मे यह प्रवृत्ति कम होती गयी है जिससे कथोपकथन अकारण कृत्रिम नही प्रतीत होते। 'रंगभूमि' के 'ताहिरअली' की भाषा हिन्दुस्तानी है। इसी प्रकार 'कर्मभूमि' के 'सलीम' और 'गोदान' के 'मिर्जा खुर्शीद' उर्दू मिश्रित हिन्दी का ही प्रयोग करते हैं। 'रंगभूमि' के 'जानसेवक' और 'क्लार्क' के कथोपकथन मे अँग्रेजी शब्दो का सांकेतिक प्रयोग उनकी सास्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द की विशेषता यही है कि इस प्रवृत्ति को अपनाकर भी प्रेमचन्द ने अपने कथोपकथनों को हास्यास्पद नही बनने दिया है।

शरतचन्द्र ने भी अपने उपन्यासो के कथोपकथनो मे पात्रों के मनोभावों और उनके सांस्कृतिक स्तर का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। इस सबध मे प्रेमचन्द से अन्तर यही है कि शरतचन्द्र ने पात्रों की भावभूमि का विशेष ध्यान रखा है तभी तो 'कमल', 'किरणमयी' और 'अभया' के कथोपकथनो में 'राजलक्ष्मी' और 'विजया' मे स्पष्ट भिन्नता अंकित हुई है। इसी प्रकार 'सुरेश', 'सतीश' और 'श्रीकांत' के सांस्कृतिक स्तर और 'जीवानद' चौधरी के कथोपकथन मे भिन्नता अकित हुई है। 'कमल' (शेषप्रश्न) में प्रखर बौद्धिक चेतना है तथा 'राजलक्ष्मी' मे धार्मिक वृत्तियो से परिवेष्टित भावुकता है। यही अन्तर दोनो पात्रों के कथोपकथनों में भी पाया जाता है।

कथोपकथन के द्वारा चरित्र और कथा का विकास किया जाता है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने इस पद्धति को अपनाया है। प्रेमचन्द ने कथोपकथनों के माध्यम से पात्रो के चरित्र पर प्रकाश डाला है तथा उनकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या भी की है। इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों में पात्रों की विभिन्न प्रवृत्तियों को कथोपकथन के माध्यम से उद्घाटित किया गया है—

"एक दिन सलोनी ने उससे मुस्करा कर कहा—अमर भैया तेरे ही भाग से यहां आ गये मुन्नी। अब तेरे दिन फिरेंगे। मुन्नी ने हर्ष को जैसे मुट्ठी मे दबाकर कहा—क्या कहती हो काकी? कहाँ मैं कहाँ वह। मुझसे कई साल छोटे होंगे। फिर ऐसे विद्वान ऐसे चतुर। मैं तो उनकी जूतियों के बराबर भी नहीं।

काकी ने कहा—यह सब ठीक है मुन्नी, पर तेरा जादू उन पर चल गया यह

मैं देख रही हूँ। संकोची आदमी मालूम होते हैं, इससे तुमसे कुछ कहते नही, पर तू उनके मन मे समा गयी है, निदान मान। क्या तुझे इतना भी नही सूझता। तुझे उनकी मरम दूर करनी पड़ेगी।

मुन्नी ने पुलकित होकर कहा—तुम्हारी आसीस है काकी तो मेरा मनोरथ भी पूरा हो जायगा।"[१] यहाँ प्रस्तुत दो पात्रो की सहज वार्तालाप से अप्रस्तुत (अप्रकाशित) पात्र के चरित्र पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्रेमचन्द के उपन्यासो से दिये जा सकते हैं। प्रेमचन्द ने कथोपकथन के द्वारा चरित्र-चित्रण पर अधिक ध्यान दिया है। किन्तु प्रेमचन्द कथा के विकास के लिए कथोपकथन की उपयोगिता पूर्ण रूप से नही ग्रहण कर सके हैं। चरित्र-चित्रण की तुलना मे, कथोपकथन द्वारा कथा के विकास पर प्रेमचन्द ने गौण दृष्टि रखी है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द और शरतचन्द्र मे अन्तर भी है। शरतचन्द्र अपने उपन्यासो मे कथोपकथन के माध्यम से चरित्र और कथा दोनो का ही परिपूर्ण विकास करते हैं।

शरतचन्द्र के उपन्यासो के कथोपकथनो की यह प्रमुख विशेषता है कि वे कथा और चरित्र का एक साथ विकास करते हुए चलते हैं। परिणामत. शरतचन्द्र के उपन्यासो मे कथा और चरित्र का प्राय सतुलन पाया जाता है। प्रेमचन्द कथोपकथनो के द्वारा प्रत्यक्षत कथा को प्रगति देने के लिए नही झुकते वरन् पात्रो की मनोवृत्तियों द्वारा घटना-क्रम को मोड़ देने का प्रयास करते हैं। शरतचन्द्र के उपन्यासों के कथोपकथन प्रत्येक अवसर पर कुछ नया रहस्य खोलते रहते हैं जिससे कथा-विकास मे बाधा उत्पन्न नही होती और चरित्र के सम्बन्ध मे असीमित उत्सुकता बनी रहती है। शरतचन्द्र के विचार-प्रधान उपन्यास 'शेषप्रश्न' और 'पथ के दावेदार' में इसी शैली के आधार पर कथानक और चरित्रो का विकास विशेष रूप से किया गया। 'शेषप्रश्न' की 'कमल' का चरित्र उसकी वार्तालाप मे ही निखरा है। 'भारती', 'डाक्टर' (पथ के दावेदार) 'सतीश' 'सावित्री' आदि के चरित्रो को भी इसी संदर्भ मे उद्धृत किया जा सकता है। 'चरित्रहीन' मे सवाद-शैली के आधार पर ही कथानक को विकसित किया गया है और कथानक को गौण होने से बचा लिया गया। शरतचन्द्र की यह विशेषता निम्न उद्धरण से स्पष्ट हो जायगी—

"कमल ने कृत्रिम आश्चर्य से मुँह ऊपर कर कहा—आपको हुआ क्या है अजित बाबू, बातें तो आज बहुत कुछ ज्ञानवानों की-सी कर रहे हैं ?

अजित ने कहा, अच्छा कमल, सच्ची बताओ, तुम्हारे लिए तो मेरा मतामत भी क्या और सबो की तरह ही तुच्छ है ?

"... यह बात जानकर आप क्या करेंगे ?'

...पने को सर्वज्ञान समझ ... मेरे सामने घमण्ड नहीं

किया। वास्तव में भीतर-भीतर मैं जितना कमजोर हूँ उतना ही असहाय भी। वि
काम को ओर से कर डालने की ताकत ही नहीं मुझ में।'

कमला हँस कर बोली—सो तो मैं आप से बहुत ज्यादा जानती हूँ

अजित ने कहा—मुझे क्या लगता है जानती हो? लगता है
जितना सहज है, सेवा देना भी उतना ही आसान है।"[१]

पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करके व्यक्ति की
और संवेगों को उद्घाटित करना कथोपकथन की विशेषता होती है। क
कथन के माध्यम से पात्रों के सूक्ष्म भावों और वृत्तियों की अभिव्यक्ति हो
उपन्यासकार पात्रों के परस्पर वार्तालाप द्वारा उनकी सूक्ष्म भावनाओं को
करते हैं, तथा पात्रों के मानसिक द्वन्द्व, संघर्ष और उलझनों को 'कथोपकथन
ही स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों ही उ
ने इस प्रवृत्ति को अपनाया है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में इस प्रवृत्ति को ए
द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

"पुनिया बोली—महतो को डाँड देने की ऐसी जल्दी क्या पड़ी थी
धनिया ने कहा—बिरादरी में सुरखुरू कैसे होते।
भाभी बुरा न मानो तो एक बात कहूँ।
कह बुरा क्यों मानूंगी।
न कहूँगी, कहीं तुम बिगड़ने लगो?

यहां तुम्हारा क्या प्रयोजन था ?

षोडशी ने केवल इतना ही कहा—काम था।

साहब ने जरा हँसकर पूछा—सारी रात काम था ?

षोडशी ने वैसे ही सिर हिलाकर शान्त और धीमे स्वर मे कहा—हां। सारी रात मेरा काम था। इनकी तबियत खराब हो गयी थी। इसी से घर लौट कर नही आ सकी।''[४४]

यहा षोडशी मे नारी-हृदय का सफल अभिव्यक्त हुआ है। अन्तिम वाक्य मे उसने जीवन और उपन्यास की कथा का सूत्र पिरोया हुआ है जिस पर सम्पूर्ण कथानक निर्भर करता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासो के कथोपकथनो की सफलता उनकी भाषा मे निहित है जिसमे उपन्यासकार ने स्थानीयता को समुचित स्थान देकर कथोपकथनों को सरल, सरस और आकर्षक बना दिया है। किसान पात्रों की परस्पर वार्तालाप उन्ही के शब्दो मे अभिव्यक्त हुई है। वे अपनी कहावतो और शब्दो का उचित प्रयोग करते हैं। शिक्षित वर्ग के पात्र प्रचलित प्रवृत्तियो के अनुसार अपने कथोपकथनों मे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों मे आदर्श कथोपकथनों की सृष्टि की है। शरतचन्द्र के उपन्यासो के कथोपकथन चुस्त, भावपूर्ण और सयत हैं शरतचन्द्र के उपन्यासों के कथोपकथनो की प्रमुख विशेषता उनकी भावपूर्ण शैली है परिणामत. शरतचन्द्र के पात्र जिस भावभूमि पर वार्तालाप करते हैं वह विशेष आकर्षक होती है।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासो का भाषा की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन भाषा की सामान्य प्रवृत्तियों पर ही आधारित होगा क्योंकि दोनो उपन्यासकार भिन्न-भिन्न भाषाओं के लेखक हैं। ऐसी स्थिति मे भावव्यंजना और शैली के साथ दोनो लेखकों के उपन्यासो का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया जा है। प्रेमचन्द की भाषा मे विचारो को समुचित रूप से व्यक्त कर सकने की असाधारण क्षमता है। प्रेमचन्द के उपन्यासो की भाषा इस विशेषता के कारण ही अधिक बोधगम्य और सरल है। परिणामत. प्रेमचन्द के उपन्यासो के पात्र जिस दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं वह स्पष्ट होता है, उसमे भाषा के कारण अस्पष्टता नही उत्पन्न होती। निम्नांकित उदाहरण मे सरल शब्दो मे विचारो की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है—

"इसकी चिन्ता न कीजिये। हानि-लाभ, जीवन-मरन, जस-अपजस विधि के हाथ है, हम तो खाली मैदान मे खेलने के लिए बनाये गये हैं। सभी खिलाड़ी मन लगा कर खेलते हैं, सभी चाहते हैं कि हमारी जीत हो, लेकिन जीत एक की ही होती है, तो क्या हमने हारने वाले हिम्मत हार जाते हैं ? वे फिर खेलते हैं, फिर हार

किया। वास्तव मे भीतर-भीतर में जितना कमजोर हूं उतना ही असहाय भी। किसी काम को जोर से कर डालने की ताकत ही नहीं मुझ मे।'

कमल हँस कर बोली—सो तो मैं आप से बहुत ज्यादा जानती हूं।

अजित ने कहा—मुझे क्या लगता है जानती हो? लगता है कि तुम्हें पाना जितना सहज है, गंवा देना भी उतना ही आसान है।"[४२]

पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करके व्यक्ति की अन्त:वृत्तियों और संवेगों को उद्‌घाटित करना कथोपकथन की विशेषता होती है। क्योंकि कथोपकथन के माध्यम से पात्रो के सूक्ष्म भावो और वृत्तियों की अभिव्यक्ति होती है। कुशल उपन्यासकार पात्रों के परस्पर वार्तालाप द्वारा उनकी सूक्ष्म भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं तथा पात्रों के मानसिक द्वन्द्व, संघर्ष और उलझनों को कथोपकथनों के द्वारा ही स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों ही उपन्यासकारों ने इस प्रवृत्ति को अपनाया है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में इस प्रवृत्ति को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

"पुनिया बोली—महतो को डांड देने की ऐसी जल्दी क्या पड़ी थी।

धनिया ने कहा—बिरादरी में सुरखुरू कैसे होते।

भाभी बुरा न मानो तो एक बात कहूं।

कह बुरा क्यों मानूंगी।

न कहूंगी, कहीं तुम बिगड़ने लगो?

कहती हूं कुछ न बोलूगी, कह तो।

तुम्हें झुनिया को घर मे रखना चाहिये था।

तब क्या करती? वह डूब मरती थी।

मेरे घर मे रख देती। तब तो कोई कुछ न कहता।

वह तो तू आज कहती है। उस दिन भेज देती तो झाडू लेकर दौड़ती? इतने खरच में तो गोबर का ब्याह हो जाता।"[४३]

शरतचन्द्र के उपन्यासो के कथोपकथनों मे पात्रों की अन्त:वृत्तियों और उनके संवेगों की अभिव्यक्ति कुशलतापूर्वक हुई है। ऐसे अवसर पर पात्र जिन परिस्थितियों में वार्तालाप करते हैं वे विशेष महत्वपूर्ण होते हैं। शरतचन्द्र के उपन्यासों के कथोपकथनों में यह विशेषता प्राय: परिलक्षित होती है। एक उदाहरण से इस दृष्टिकोण को स्पष्ट किया जा सकता है।

"मजिस्ट्रेट ने जीवानन्द की ओर वक्रदृष्टि डालकर षोडशी से फिर कहा—तुम्हें कोई भय नहीं है, तुम सच बात कहो। तुमको घर से पकड़ लाये हैं?

जी नहीं मैं आप ही आई हूं।

यहां तुम्हारा क्या प्रयोजन था ?

षोडशी ने केवल इतना ही कहा—काम था।

साहब ने जरा हँसकर पूछा—सारी रात काम था ?

षोडशी ने वैसे ही सिर हिलाकर शांत और धीमे स्वर में कहा—हां। सारी रात मेरा काम था। इसकी तबियत खराब हो गयी थी। इसी से घर लौट कर नहीं जा सकी।"[४४]

यहां षोडशी में नारी-हृदय का संघर्ष अभिव्यक्त हुआ है। अन्तिम वाक्य में उसने जीवन और उपन्यास की कथा का सूत्र पिरोया हुआ है जिस पर सम्पूर्ण कथानक निर्भर करता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों के कथोपकथनों की सफलता उनकी भाषा में निहित है जिसमें उपन्यासकार ने स्थानीयता को समुचित स्थान देकर कथोपकथनों को सरल, सरस और आकर्षक बना दिया है। किसान पात्रों की परस्पर वार्तालाप उन्हीं के शब्दों में अभिव्यक्त हुई है। वे अपनी कहावतों और शब्दों का उचित प्रयोग करते हैं। शिक्षित वर्ग के पात्र प्रचलित प्रवृत्तियों के अनुसार अपने कथोपकथनों में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में आदर्श कथोपकथनों की सृष्टि की है। शरतचन्द्र के उपन्यासों के कथोपकथन चुस्त, भावपूर्ण और सरस हैं। शरतचन्द्र के उपन्यासों के कथोपकथनों की प्रमुख विशेषता उनकी भावपूर्ण शैली है परिणामतः शरतचन्द्र के पात्र जिस भावभूमि पर वार्तालाप करते हैं वह विशेष आकर्षक होती है।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों का भाषा की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन, भाषा की सामान्य प्रवृत्तियों पर ही आधारित होगा क्योंकि दोनों उपन्यासकार दो भिन्न-भिन्न भाषाओं के लेखक हैं। ऐसी स्थिति में भावव्यंजना और शैली के साथ ही दोनों लेखकों के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया जा सकता है। प्रेमचन्द की भाषा में विचारों को [illegible] की असाधारण क्षमता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों की भाषा इस [illegible] के कारण ही [illegible] बोधगम्य और सरल है। परिणामतः प्रेमचन्द के उपन्यासों के [illegible] दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं वह स्पष्ट होता है, उनमें भाषा के [illegible] नहीं उत्पन्न होती। निम्नांकित उदाहरण में सरल शब्दों के विचारों की [illegible] हुई है—

"इनकी चिन्ता न कीजिए। [illegible]
हाथ है, हम तो स्वामी सेवक के [illegible] है। [illegible]
[illegible]
है तो क्या [illegible]

जाते हैं, तो फिर खेलते हैं। कभी-न-कभी तो उनकी जीत होती ही है। जो आपको आज बुरा समझ रहे हैं, वे कल आपके सामने सिर झुकायेंगे। हा नीयत ठीक रहनी चाहिये।"४५ यहा द्रष्टव्य है कि तुलसीकृत 'रामचरितमानस' की कितनी ही पंक्तियाँ अशिक्षित ग्रामीणों के बीच कितनी रसमयता से उद्धृत की जाती हैं, जिन्हें कुशल लेखक ने यहां भी अंकित किया है। प्रस्तुत उद्धरण मे 'हानि-लाभ, जीवन-मरण, जस-अपजस विधि हाथ' का भाव अभिव्यक्त हुआ है।

शरतचन्द्र की भाषा मे भी सूक्ष्म से सूक्ष्म भावो को व्यक्त कर सकने की क्षमता है। शरतचन्द्र के उपन्यासों का प्रत्येक वाक्य निश्चित उद्देश्य से प्रेरित होता है। परिणामतः विचारो की स्पष्ट अभिव्यक्ति भी होती है। इस प्रकार शरतचन्द्र के उपन्यासों मे मानव संवेदनाओं की अप्रतिम अभिव्यक्ति हुई है। निम्नांकित उद्धरणो से यह बात स्पष्ट हो जायगी—

"उसे ऐसा मालूम हुआ कि मानो इस आश्चर्यजनक आदमी के अपरिचित जीवन का एक छुपा हुआ कोना दिखाई दे गया। वहा क्या है, सो तो कहना मुश्किल है, पर अब तक जो कुछ वह मालूम कर सका था, उससे वह अलग चीज है। मानों उसका मन किसी सुदूर प्रान्तर मे चला गया है, आसपास कही भी नही है। पास के एक लैम्प पोस्ट का क्षीण प्रकाश उसके चेहरे पर पड रहा था, बगल से जाते समय अपूर्व ने स्पष्ट देखा कि इस सदा सावधान व्यक्ति की आँखो पर धुंधला जाल-सा घूम रहा है। क्षण भर के लिए मानो वह मन ही मन कोई चीज ढूंढ रहा है।"४६

यथोचित अर्थ-द्योतन के लिए प्रेमचन्द अन्य भाषाओं के शब्दो का प्रयोग करने ा संकोच नही करते हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासो मे प्रयुक्त भाषा का शब्द ंडार व्यापक है जिसमें अंग्रेजी और फारसी के शब्दों का भी अभाव नही है। फारसी शब्दो का प्रयोग प्राय. तत्सम रूप मे ही किया गया है किन्तु अंग्रेजी के शब्दो को ुन्दी के अनुकूल बनाने की चेष्टा की गयी है। 'मेम्बर' के लिए तो 'मेम्बर' का ही योग हुआ है किन्तु इसके बहुवचन के लिए 'मेम्बरो' का ही प्रयोग किया गया है। ग्रेजी व्याकरण के आधार पर 'मेम्बर्स' नही बनाया गया है। इसी संदर्भ मे लोक-चलित शब्दों का प्रयोग भी द्रष्टव्य है। प्रेमचन्द ने भावाभिव्यक्ति की स्पष्टता को ष्टि मे रखकर ही ग्रामीण बोल-चाल के शब्दो को भी ग्रहण किया है। इस सम्बन्ध

तो तु इतना कुढ़ती क्यों है ? सारा जमाना करता है वही गोबर ने किया। अब उसके बाल-बच्चे हुए। मेरे बाल-बच्चों के लिये क्यों अपनी शामत कराये, क्यों हमारे सिर का बोझ अपने सिर पर रखे।"[४७]

(२) "और लोग भी इसी तरह की उड़नघाइयां बनाते थे।"[४८]

(३) "सहमा धुनिया भरे कण्ठ से बोली—मैं बड़ी अभागिन हूं दीदी। मेरे मन में ऐसा आ रहा है, जैसे मेरे ही कारण इनकी यह दशा हुई है। जी कुढ़ता है तब मन दुःखी होना ही है फिर गालियां भी निकलती हैं, सराप भी निकलता है।"[४९]

इस प्रकार प्रेमचन्द भाषा को उदार दृष्टि से अपना कर चले हैं जिससे प्रेमचन्द की अभिव्यंजना में शक्ति और दृढ़ता आई है।

शरतचन्द्र के उपन्यासों में भी भावाभिव्यक्ति अत्यन्त स्पष्ट रूप में हुई है जिसमें स्वाभाविकता भी है जिससे प्रतीत होता है कि शरतचन्द्र की भाषा में प्रौढ़ता है तथा प्रचुर शब्द-भंडार है। जिस भाषा में सूक्ष्म भावों को कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त कर देने की क्षमता है उसमें शब्दों का पर्याप्त संकलन होना निश्चित है। शरतचन्द्र के उपन्यासों की शब्द-सम्पत्ति का उल्लेख करते हुए डा० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त ने भी लिखा है "शरतचन्द्र की रचना-रीति या स्टाइल के माधुर्य की सर्वत्र उच्चकोटि की प्रशंसा हुई है। जो लोग शरतचन्द्र के उपन्यासों की कहानी अथवा भाव की श्रेष्ठता नहीं स्वीकार करते, वे भी शब्द-सम्पत्ति और रचना-सौष्ठव को शिरोधार्य करते हैं।"[५०]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि दोनों उपन्यासकारों ने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए सहज, सरल और स्वाभाविक भाषा को अपनाया है। प्रेमचन्द में यह विशेषता विशेषरूप से द्रष्टव्य है। प्रेमचन्द के उपन्यासों के पात्र जिस भाषा का प्रयोग करते हैं, उससे यह प्रतीत होता है कि वह उस पात्र की ही भाषा है। लेखक की नहीं। भाषा की यह स्वाभाविकता प्रेमचन्द जैसे कथाकार में ही सम्भव है। प्रेमचन्द ने दर्शन ग्रंथ नहीं लिखे हैं अतः उनकी भाषा में दार्शनिकता नहीं है। प्रेमचन्द के उपन्यासों की भाषा उनके उपन्यासों की कथावस्तु के अत्यन्त अनुकूल है। 'प्रसाद' के 'कंकाल' में समाज का यथार्थ चित्रण अवश्य हुआ है किन्तु उसकी भाषा उपन्यास के अनुकूल नहीं है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में भाषा की सरलता, स्पष्टता और गम्भीरता आदि प्रवृत्तियां मिलकर एक सम्मिलित प्रभाव डालती हैं।

शरतचन्द्र के उपन्यासों की भाषा में भी सरलता, सहजता, और बोधगम्यता है। डा० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त का मत उल्लेखनीय है। बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ टैगोर के साथ तुलनात्मक अध्ययन करते हुए डा० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त ने लिखा है—

'बंकिमचन्द्र की भाषा सहज, सरल स्वच्छद है। उसमे अनावश्यक गाम्भीर्य नही है। किन्तु वह भी संस्कृति-शब्द-बहुल बंगला है। दैनंदिन जीवन-यात्रा के चित्र के लिए उपयोगी नही है। इस भाषा मे भ्रमर, सूर्यमुखी आदि आदर्श-लोक-वासिनी नारियो का चरित्र अभिव्यक्त हो सकता है, किन्तु साधारण जीवन की कोई कहानी अगर इस भाषा मे लिखी जाय तो उस कहानी का साधारणपन नष्ट हो जायगा। रवीन्द्रनाथ ने बोल-चाल की ठेठ भाषा का समर्थन किया है, किन्तु उनका गद्य एक कवि का गद्य है। अतएव उनकी भाषा उपन्यास मे तभी सुन्दर हुई है जब वर्णन पर कल्पना का रंग चढा है अथवा कथोपकथन तीक्ष्ण बुद्धि के प्रकाश से उज्ज्वल हो उठा है। शरतचन्द्र के गद्य की प्रचलित भाषा ने सबसे पहले अपना न्यायोचित आसन पाया है अथवा उसने अपने निर्दिष्ट क्षेत्र के बाहर पैर नही रखा। उनकी भाषा रोजमर्रा की बोल-चाल की भाषा है। उनके चित्र, वर्ण-बहुलता के कारण ही अपने सहज माधुर्य को नही गँवा बैठे।''[५०]

प्रेमचन्द के उपन्यासो की भाषा-शैली मे प्रवाह अथवा गति का अभाव नही है। वे भावो के अनुकूल भाषा को मोडने मे समर्थ हैं। मानव वृत्तियो का विश्लेषण करते समय प्रेमचन्द की भाषा मे सुकुमारता होती है। इस प्रकार कोमल और माधुर्य वृत्तियो की अभिव्यंजना के अवसर पर प्रेमचन्द भावपूर्ण शब्दो का प्रयोग करते हैं—''प्रेम हृदय के समस्त सद्भावो का शान्त स्थिर उद्गारहीन समावेश है। उसमे दया और क्षमा, श्रद्धा और वात्सल्य, सहानुभूति और सम्मान, अनुराग और विराग, अनुग्रह और उपकार सभी मिले होते हैं।''[५१] जीवन और मृत्यु पर विचार करते समय प्रेमचन्द की भाषा में समुचित गाम्भीर्य पाया जाता है—

''जीवन-सूत्र कितना कोमल है। वह क्या पुष्प से कोमल नही, जो वायु के झोके सहता है और मुरझाता नही? क्या वह लताओं से कोमल नही जो कठोर वृक्षो के झोंके सहती और लिपटी रहती है? वह क्या पानी के बबूलों से कोमल नही जो जल की तरंगो पर तैरते हैं और टूटते नहीं? ससार में और कौन-सी वस्तु इतनी कोमल, इतनी अस्थिर, इतनी सारहीन है जिसे एक व्यग्य, एक कठोर शब्द, एक अन्योक्ति भी दारुण, असह्य घातक है। और इस भित्ति पर कितने विशाल, कितने भव्य, कितने बृहदाकार भवनों का निर्माण किया जाता है।''[५२] भाषा शैली का यह परिवर्तित रूप-विधान प्रेमचन्द के उपन्यासों मे प्रायः दृष्टिगत होता है।

प्रेमचन्द की भांति शरतचन्द्र के उपन्यासो की भाषा भी संदर्भ और परिस्थितियों के अनुकूल होती है। सत्य-असत्य, पाप-पुण्य, घृणा-प्रेम आदि शाश्वत वृत्तियों की व्याख्या करते समय शरतचन्द्र की भाषा में दार्शनिकता का पुट रहता है तथा गम्भीर विचारों का अर्थ-द्योतन कराने में उनके उपन्यासों की भाषा पर्याप्त समर्थ होती है

"आज मैं सोचता हूँ कि बहुत जन्म के पुण्यों का फल था जो उस दिन मैं भय मारे लौट न आया। उस दिन को उपलक्ष्य करके जो चीज देख आया, उसे सारे जीवन सारी पृथ्वी खाक छानने पर भी कितने से लोगों के भाग्य में होता है।"[५]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों उपन्यासकारों की कृतियों में भाषा को अलंकृत करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। परिणामतः दोनों लेखकों के उपन्यासों में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि प्रेमचन्द और शरतचन्द्र का अलंकार-विधान जीवन के सूक्ष्म अनुभवों पर आधारित, नवीनता से ओत-प्रोत है। प्रेमचन्द भाषा-शैली को शक्ति प्रदान करने के लिए ही अलंकारों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द भाषा को सौन्दर्य और गति प्रदान करते हैं। प्रायः यथार्थ जीवन पर घटित होने के कारण प्रेमचन्द की उपमाएं प्रभावशाली होती हैं। निम्नांकित उद्धरणों में प्रेमचन्द के अलंकारों की प्रयोग-कुशलता को देखा जा सकता है—

(१) "कितना उत्साह था उस दिन। प्यासी पृथ्वी जैसे अघाती ही न थी और

"बंकिमचन्द्र की भाषा सहज, सरल स्वच्छंद है। उसमें अनावश्यक गाम्भीर्य नही है किन्तु वह भी संस्कृति-शब्द-बहुल बंगला है। दैनंदिन जीवन-यात्रा के चित्र के लि उपयोगी नही है। इस भाषा मे भ्रमर, सूर्यमुखी आदि आदर्श-लोक-वासिनी नारियो चरित्र अभिव्यक्त हो सकता है, किन्तु साधारण जीवन की कोई कहानी अगर इ भाषा मे लिखी जाय तो उस कहानी का साधारणपन नष्ट हो जायगा। रवीन्द्रना ने बोल-चाल की ठेठ भाषा का समर्थन किया है, किन्तु उनका गद्य एक कवि का गद्य है। अतएव उनकी भाषा उपन्यास में तभी सुन्दर हुई है जब वर्णन पर कल्पना का रं चढा है अथवा कथोपकथन तीक्ष्ण बुद्धि के प्रकाश से उज्ज्वल हो उठा है। शरतचन्द्र के गद्य की प्रचलित भाषा ने सबसे पहले अपना न्यायोचित आसन पाया है अथवा उसने अपने निर्दिष्ट क्षेत्र के बाहर पैर नही रखा। उनकी भाषा रोजमर्रा की बोल-चाल की भाषा है। उनके चित्र, वर्ण-बहुलता के कारण ही अपने सहज माधुर्य को नही गँवा बैठे।"[१]

प्रेमचन्द के उपन्यासो की भाषा-शैली में प्रवाह अथवा गति का अभाव नहीं है। वे भावों के अनुकूल भाषा को मोडने मे समर्थ हैं। मानव वृत्तियों का विश्लेषण करते समय प्रेमचन्द की भाषा मे सुकुमारता होती है। इस प्रकार कोमल और माधुर्य वृत्तियों की अभिव्यंजना के अवसर पर प्रेमचन्द भावपूर्ण शब्दो का प्रयोग करते हैं—"प्रेम हृदय के समस्त सद्भावों का शान्त स्थिर उद्गारहीन समावेश है। उसमे दया और क्षमा, श्रद्धा और वात्सल्य, सहानुभूति और सम्मान, अनुराग और विराग, अनुग्रह और उपकार सभी मिले होते हैं।"[२] जीवन और मृत्यु पर विचार करते समय प्रेमचन्द की भाषा मे समुचित गाम्भीर्य पाया जाता है—

"जीवन-सूत्र कितना कोमल है। वह क्या पुष्प से कोमल नहीं, जो वायु के झोके सहता है और मुरझाता नही? क्या वह लताओं से कोमल नहीं जो कठोर वृक्षो के झोंके सहती और लिपटी रहती है? वह क्या पानी के बबूलों से कोमल नही जो जल की तरंगो पर तैरते हैं और टूटते नहीं? संसार मे और कौन-सी वस्तु इतनी कोमल, इतनी अस्थिर, इतनी सारहीन है जिसे एक व्यंग्य, एक कठोर शब्द, एक अन्योक्ति भी दारुण, असह्य घातक है। और इस भित्ति पर कितने विशाल, कितने भव्य, कितने वृहदाकार भवनों का निर्माण किया जाता है।"[३] भाषा शैली का यह परिवर्तित रूप-विधान प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्रायः दृष्टिगत होता है।

प्रेमचन्द की भांति शरतचन्द्र के उपन्यासों की भाषा भी संदर्भ और परिस्थितियों के अनुरूप होती है। सत्य-असत्य, पाप-पुण्य, घृणा प्रेम आदि शाश्वत वृत्तियों की व्याख्या करते समय शरतचन्द्र की भाषा मे दार्शनिकता का पुट रहता है तथा गंभीर विचारों का उद्बोधन कराने में उनके उपन्यासों की भाषा पर्याप्त समर्थ है

शरतचन्द्र की भाषा में विशेषणों की बहुलता है। इस प्रकार शरतचन्द्र ने भाषा की अभिव्यंजना शक्ति में वृद्धि तो की है साथ ही भाषा के माधुर्य को भी बढ़ाया है—

(१) "ऐसा सुन्दर रूप का झरना और कब देखा है। इस ब्रह्माण्ड में जो जितना गम्भीर, जितना अचिन्त्य, जितना सीमाहीन है, वह उतना ही अंधकारमय है। सर्व लोगों का आश्रय, प्रकाश का भी प्रकाश, गति की भी गति, जीवन का भी जीवन, सम्पूर्ण सौंदर्य का प्राण-पुरुष भी, मनुष्य की दृष्टि में निविड़ अंधकारमय है। मृत्यु इसी लिए मनुष्य की दृष्टि में काली है, और इसीलिए उसका परलोक-पथ इतने दुस्तर अंधेरे में मग्न है। इसीलिए राधा के दोनों नेत्रों में समाकर जिस रूप ने प्रेम के पूर में जगत को बहा दिया, वह भी घनश्याम है।"[६४]

(२) "सरोजनी के मुह के ऊपर ही सतीश की इस अप्रत्याशित अमानुषिक हृदयहीन, हिमाकत ने, उसकी असीम निर्लज्जता को भी बहुत पीछे छोड़ कर जैसे अकस्मात होने वाले वज्रपात की तरह सबकी चेतना को लुप्त कर दिया।"[६५]

(३) "निष्कलुष अन्तःकरण हरदम अकलंक शुभ्रता से चमका करता है।"[६६]

(४) "एक असम्बद्ध काल्पनिक प्रश्नोत्तर माला के आघात-प्रतिघात के म इस निशीथ अभिमान की निरवच्छिन्न कुत्सितता से उसका अन्त कर उठा।"[६७] इस प्रकार के उदाहरण शरतचन्द्र के उपन्यासों में भरे पड़े हैं स्पष्ट है कि विशेषणों के द्वारा शरतचन्द्र ने भाषा को गति प्रदान की है कहीं शरतचन्द्र ने विशेषणों की भरमार कर भाषा को बोझिल भी

सूत्र रूप में बहुत कुछ कह डालने की प्रवृत्ति प्रेमचन्द और उपन्यासकारों की भाषा-शैली की प्रमुख विशेषता है। परिणामस्वरूप शरतचन्द्र के उपन्यासों के अनेक वाक्य सूक्तियों के रूप में उपयोगी हुए हैं। दोनों ही उपन्यासकारों के कतिपय निम्न उद्धरणों में देखी जा सकती है—

(१) "आशा में कितनी सुधा है।"[६८]

(२) "नारी परीक्षा नहीं चाहती प्रेम चाहती है।"[६९]

(३) "प्रेम अनंत क्षमा, अनंत उदारता, अनंत धैर्य से परिपूर्ण होता है।"[७०]

(४) "धर्मभीरुता सरल होती है।"[७१]

(५) "मनुष्य विधाता के हाथों का खिलौना मात्र है।"[७२]

(६) "आनन्द जीवन का तत्त्व है।"[७३]

शरतचन्द्र के उपन्यासों में भी भाव की सूक्ति शैली को देखा जा सकता है।

(१) "हमेशा दुःख भोगते चलना ही तो जीवन-धारण का उद्देश्य नहीं है।"[७४]

प्यासे किसान ऐसे उछल रहे थे, मानो पानी नहीं अशर्फियां बरस रही हैं।"[५७]

(२) "जमीन ने नीली चादर ओढ़ ली थी।"[५८]

(३) "जो पत्थर माहचर्य के खराद पर चढ़ेगा उसमें खरादे जाने की क्षमता है भी या नहीं। सभी पत्थर खराद पर चढ़कर सुन्दर मूर्तियां नहीं बन जाते।"[५९]

(४) "अमर को उस काली-कलूटी काया में स्वर्ण-जैसा हृदय चमकता दीख पड़ा।"[६०]

इस प्रकार प्रेमचन्द ने अलंकार-प्रयोग द्वारा आकार को गतिवान और प्रभावशाली बनाने का सफल प्रयास किया है। यद्यपि कहीं-कहीं कृत्रिमता भी उत्पन्न हुई है।

भाषा को उपमा आदि अलंकारों से अलंकृत करने के सम्बन्ध में शरतचन्द्र ने एक स्थल पर लिखा है - "मनुष्य को अलंकार से सजाने की रुचि और सुनार की दूकान में अलंकारों से 'शो केश' के सजाने की रुचि एक नहीं है। इस बात को सदा याद रखना होगा। अलंकृत वाक्य का बाहुल्य कितना पीड़ादायक होता है, इस बात को केवल पाठक ही जानते हैं।"[६१] यहां यह स्पष्ट है कि शरतचन्द्र अलंकारों से भाषा को कृत्रिम बनाने के पक्ष में नहीं हैं। शरतचन्द्र की पूर्ववर्ती रचनाओं में—'देवदास' 'विराज बहू' 'परिणीता' आदि—भाषा को अलंकृत करने की प्रवृत्ति अवश्य कम पाई जाती है किन्तु उत्तरकालीन रचनाएँ विशेष रूप से 'श्रीकांत', 'चरित्रहीन' और 'शेषप्रश्न' में अलंकारप्रियता की ओर यथेष्ट झुकाव है। इतना अवश्य है कि शरतचन्द्र की उपमाएं प्रायः सटीक हैं। साथ ही रूपक और उपमाओं के द्वारा शरतचन्द्र ने किसी न किसी छिपे भाव को अनावृत करने का प्रयास किया है। नीचे के उद्धरण में दोनों विशेषताओं को एक साथ देखा जा सकता है—

"उनके मर्मस्थल में अत्यन्त शुभ्र हृदय पत्थर की तरह कठिन था। तब फिर आज क्यों एक अज्ञात अपरिचित नारी की कलंकित प्रणय-वेदना की कहानी ने उसी अपरिसीम शुभ्रता पर अपनी छाया डाली, इस बात पर गौर करके अगर उपेन्द्र देखते तो देख पाते कि यह दुर्बलता इतने दिन उसी पत्थर के नीचे दबी पड़ी थी अब पशुराज उनकी आधी शक्ति को हर कर चली गयी, तब सुयोग पाकर ये सभी दुर्बलताए उनके पाषाण-हृदय को विदीर्ण करके प्रचण्ड झरने की तरह बाहर निकल आई हैं।"[६२]

डा० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त ने भी शरतचन्द्र की भाषा में उपमाओं के प्रयोग की प्रशंसा करते हुए लिखा है —

"शरतचन्द्र की रचना मे उपमा का असाधारण ऐश्वर्य है। अनेक वर्णनों में एक से अधिक उपमायें एक के बाद एक रखी गयी हैं किसी ने किसी की जगह नहीं घेरी है किन्तु किसी-किसी जगह दो विच्छिन्न उपमाएं एक वाक्य में मिल गयी हैं। इससे रचना के प्रसाद गुण को हानि पहुंची है।"[६३]

(२) "कोरी वंचना को ही मूल धन मान कर दुनिया मे रोजगार नहीं किया जा सकता।"[७५]

(३) "स्वेच्छा से ग्रहण किये हुए दुःख को ऐश्वर्य के समान भोगा जा सकता है।"[७६]

(४) "वस्तु अतीत होती है काल के धर्म से, मगर अच्छी होती है अपने गुण से।"[७७]

(५) "कठोर बात ही दुनिया मे सबसे ज्यादा कमजोर होती है।"[७८]

(६) "मनुष्य न तो सिर्फ पुरुष ही है और न सिर्फ स्त्री ही, दोनों मिलकर एक होते हैं।"[७९]

(७) मनुष्य के चमड़े का रंग उसकी मनुष्यता का पैमाना नही।"[८०]

प्रेमचन्द के उपन्यासो की भाषा मे कहावतो तथा मुहावरों का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे हुआ है। प्रेमचन्द प्रायः अपने विचारो को सरल ढग से प्रस्तुत करते हैं, यही कारण है कि भाषा को प्रवाह और गति देने के लिए प्रचलित मुहाविरो का प्रयोग प्रेमचन्द ने किया है। "नेकी कर दरिया मे डाल।"[८१] "नाट न खेती बहुरियन नर।"[८२] ऐसे ही प्रचलित मुहाविरे और कहावतें हैं। इस प्रकार के प्रयोगो द्वारा भाषा में स्वाभाविकता आई है एव एक सशक्त गद्य-शैली का निर्माण हुआ है।

शरतचन्द्र मे प्रेमचन्द की अपेक्षा भाषा की गहरी पकड है जिसे भाषा की सजग संवेदना कहा जा सकता है। शरतचन्द्र किसी बात को स्पष्ट करने के लिए उपयुक्त शब्दों का चयन करते हैं। नीचे के कतिपय उदाहरणों मे शरतचन्द्र की भाषा की इस विशेषता को परिलक्षित किया जा सकता है—

"इसी से उसने जैसे, उस दिन से, मौत के मुँह मे पैर लटकाए हारान बाबू के परिवार का सारा भारी भार अपने सिर पर लाद लिया था, वैसे ही उस दिन के सावित्री-विपिन के इतिहास को भी सह सका था।"[८३]

"जो प्यार करता है—उसे सुन्दर कहो चाहे कुत्सित वही प्यार कर सकता है, दूसरा नही।"[८४]

"यही उसकी प्रकृति है—यही उसकी प्रवृत्ति है—यही उसका स्वर्गीय प्रेम है। सारी दुनिया मे सारे विश्व मे यही अविच्छिन्न सृष्टि का खेल रूप का खेल चल रहा है। यह स्वर्गीय नही है, इस लिये इतना दुःख करने या लज्जित होने की तो कोई बात मैं नही देखती।"[८५]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों ही उपन्यासकारो की कृतियो मे व्यग्य और विनोद का सुन्दर समावेश हुआ है। समाज की प्रचलित मान्यताओ और रूढ़ियों पर दोनो ही कथाकारो ने तीखे व्यग्य किये हैं। दोनों लेखकों के उपन्यासों में व्यंग्य का

रूप ग्रामीणों के परस्पर वार्तालाप मे देखा जा सकता है।

(१) "कौन कहता है कि हम तुम आदमी हैं। हममे आदमियत कहा? आदमी वह है जिसके पास धन है, अख्तियार है, इलम है, हम लोग बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं।"[८६]

(२) "तुम्हारी लाडली जहां हो वहां जाओ। मैं तो लौंडी हू दूसरो की सेवा टहल करने के लिये आई हूँ।"[८७]

शरतचन्द्र के उपन्यासो की भाषा मे व्यग्य शैली का प्रयोग यथेष्ट रूप मे हुआ है। शरतचन्द्र ने प्राय सभी उपन्यासो मे विशेष रूप से 'शेषप्रश्न' मे व्यग्य शैली का परिष्कृत रूप प्रस्तुत किया है। 'शेषप्रश्न' मे स्थल-स्थल पर समाज की प्रचलित मान्यताओ पर तीखे व्यग्य हैं। इस बात की पुष्टि के लिए अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

(१) "एक बडा नाम दे देने से ही तो कोई चीज ससार मे सचमुच बडी नही हो जाती।"[८८]

(२) "वे उनके अनुभव से काम लेंगी तो धन्य होने का रास्ता अपने आप साफ हो जायगा।"[८९] भाषा-शैली मे हास्य-विनोद का समुचित प्रयोग प्रेमचन्द के उपन्यासो मे पर्याप्त रूप मे पाया जाता है। हास्य-विनोद का पुट, भाषा को जीवन प्रदान करता है। प्रेमचन्द की भाषा मे विनोद का जो रूप पाया जाता है उसमे यथेष्ट गम्भीरता भी है। हल्के स्तर पर हास्य की अवतारणा प्रेमचन्द के उपन्यासों की भाषा मे है—'रंगभूमि' मे 'नायकराम' तथा अन्य ग्रामीणों के वार्तालाप मे प्रेमचन्द की विनोद पूर्ण भाषा-शैली को देखा जा सकता है। हास्य और व्यग्य का एक ऐसा ही उ प्रस्तुत है। "नायकराम—हां बजरगी जब तुम से कोई वास्ता सरोकार नहीं, तो कौन होते हो बीच में कूदने वाले? बोलो भैरो को जवाब दो।

नायकराम—बाबा की और लोगो अभी पेट भरा कि नहीं।"[९०]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासो की भाषा-शैली और भाव-व्यजना के विवेचन से स्पष्ट है कि दोनो उपन्यासकारों ने अनुभूति के आधार पर भाषा-शैली को सरलता और गति प्रदान की है तथा भाषा और भाव में सहज सौंदर्य स्थापित किया है। यही कारण है कि काल्पनिक और यथार्थ भावो का अनोखा सम्मिश्रण प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासो की भाषा में हुआ है। अनुभूति को कल्पना से रग कर भाषा शैली द्वारा यथार्थ के धरातल पर अंकित कर देने की क्षमता प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनो ही उपन्यासकारो मे है। परिणामत: कल्पना के भाव पखों पर बैठकर यथार्थ की ठोस भूमि पर भाषा-शैली प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासो मे अवतरित हुआ है। यही कारण है कि दोनो उपन्यासकार भावपूर्ण चित्र अंकित करते हैं। मानव के जीवन

(२) "कोरी वचना को ही मूल धन मान कर दुनिया में रोजगार नही किया जा सकता।"[७५]

(३) "स्वेच्छा से ग्रहण किये हुए दु.ख को ऐश्वर्य के समान भोगा जा सकता है।"[७६]

(४) "वस्तु अतीत होती है काल के धर्म से, मगर अच्छी होती है अपने गुण से।"[७७]

(५) "कठोर बात ही दुनिया मे सबसे ज्यादा कमजोर होती है।"[७८]

(६) "मनुष्य न तो सिर्फ पुरुष ही है और न सिर्फ स्त्री ही, दोनो मिलकर एक होते हैं।"[७९]

(७) मनुष्य के चमडे का रंग उसकी मनुष्यता का पैमाना नही।"[८०]

प्रेमचन्द के उपन्यासों की भाषा मे कहावतों तथा मुहावरों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। प्रेमचन्द प्राय: अपने विचारो को सरल ढग से प्रस्तुत करते हैं, यही कारण है कि भाषा को प्रवाह और गति देने के लिए प्रचलित मुहाविरों का प्रयोग प्रेमचन्द ने किया है। "नेकी कर दरिया मे डाल।"[८१] "नाट न खेती बहुरियन घर।"[८२] ऐसे ही प्रचलित मुहाविरे और कहावतें हैं। इस प्रकार के प्रयोगों द्वारा भाषा में स्वाभाविकता आई है एव एक सशक्त गद्य-शैली का निर्माण हुआ है।

शरतचन्द्र मे प्रेमचन्द की अपेक्षा भाषा की गहरी पकड है जिसे भाषा की सजग संवेदना कहा जा सकता है। शरतचन्द्र किसी बात को स्पष्ट करने के लिए उपयुक्त शब्दों का चयन करते हैं। नीचे के कतिपय उदाहरणो मे शरतचन्द्र की भाषा की इस विशेषता को परिलक्षित किया जा सकता है—

"इसी से उसने जैसे, उस दिन से, मौत के मुँह मे पैर लटकाए हारान बाबू के परिवार का सारा भारी भार अपने सिर पर लाद लिया था, वैसे ही उस दिन के सावित्री-विपिन के इतिहास को भी सह सका था।"[८३]

"जो प्यार करता है—उसे सुन्दर कहो चाहे कुत्सित वही प्यार कर सकता है, दूसरा नही।"[८४]

"यही उसकी प्रकृति है—यही उसकी प्रवृत्ति है—यही उसका स्वर्गीय प्रेम है। सारी दुनिया मे सारे विश्व मे यही अविच्छिन्न सृष्टि का खेल रूप का खेल चल रहा है। यह स्वर्गीय नहीं है, इस लिये इतना दु ख करने या लज्जित होने की तो कोई बात मैं नही देखती।"[८५]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनो ही उपन्यासकारो की कृतियों मे व्यग्य और विनोद का सुन्दर समावेश हुआ है। समाज की प्रचलित मान्यताओ और पाखण्डों पर दोनों ही कथाकारों ने तीखे व्यंग्य किये हैं। दोनों लेखकों के उपन्यासों मे व्यंग्य का

"प्रेमचन्द साहित्यकार की तटस्थता के हामी नहीं थे। वह यह उपदेश न
थे कि अगर जन-साधारण के आन्दोलनों और सघर्षों को लेकर साहित्य रचा जायेगा,
तो वह अमर न होगा। उनका सिद्धान्त था कि साहित्यकार का कर्त्तव्य है कि वन
जनता की सेवा करने के लिए साहित्य रचे।"[६१] प्रेमचन्द को अपने युग की परि
से गहरा असन्तोष रहा है। समाज और देश की परिस्थितियो को प्रेमचन्द की
दृष्टि ने कला का रूप प्रदान करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि प्रे
उपन्यासों मे प्रेमचन्द के युग की विभिन्न समस्यायें दिग्दर्शित की गई हैं अत
है कि प्रेमचन्द के उपन्यासों की रचना के मूल मे निश्चित उद्देश्य निहित है। इस
से प्रेमचन्द एक सफल उपन्यासकार हैं। किसान की दयनीय स्थिति, भूमि पर उसके
स्वामित्व की समस्या एव जमीन्दारी उन्मूलन 'प्रेमाश्रम', 'गोदान' और 'कायाकल्प'
की रचना के उद्देश्य हैं। देश को पराधीनता से मुक्ति दिलाना, विभिन्न जातियो
के पारस्परिक विद्वेष को दूर करना, धार्मिक भ्रातियो को मिटाना तथा धर्म के प्रति
यथार्थ रुचि उत्पन्न करना प्रेमचन्द की उपन्यास की रचना के मूल मे निहित भावनाए

के रहस्यों को खोलने, समाज की कपटपूर्ण वास्तविकता को उद्घाटित करने[?] किया पारिवारिक जीवन के वास्तविक हृदय उपस्थित करने में दोनों उपन्यासकारों की भाषा समर्थ हुई है।

उपन्यासों मे भौगोलिक विशेषताएँ अपना अलग महत्त्व रखती हैं। दरअसल किसी उपन्यास मे क्षेत्रीय परिदृश्य केवल 'रुचि' के सरक्षण के लिए नहीं लिया जाता अपितु वह उपन्यासों को सांस्कृतिक गरिमा (भारतीयता) से भरता है। प्रेमचन्द ने युग-चित्रण का व्यापक लक्ष्य लेकर अपने उपन्यासों की रचना की है। प्रेमचन्द मे 'देश-काल' सदर्भ का प्रमाण बनकर आया है। प्रेमचन्द ने समाज और राष्ट्र की अपने युग की समस्याओं को व्यापक रूप से चित्रित किया है। इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों का समावेश हुआ है। गांधीवादी और समाजवादी विचारधाराओं का व्यावहारिक विवेचन हुआ है। यहीं यह भी कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द ने जहां कहीं किसान का चित्रण किया है वह उत्तर प्रदेश का है, अवध का है, बनारस के आस-पास का है और किसी सीमा तक केवल 'लमही' का है। किन्तु प्रेमचन्द के उपन्यासो मे अंकित किसान केवल किसी स्थान अथवा देश तक ही सीमित नहीं है वरन् विश्व मे जहां कहीं भी किसान उन परिस्थितियों में है जिसका प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों मे चित्रण किया है, वह प्रेमचन्द के देश-काल की सीमा के अन्दर आ जाता है। इस प्रकार सामाजिक-राजनैतिक समस्याओं के सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि जिन समस्याओं को प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है वे सामयिक हैं, एक युग की हैं, देश-विशेष की हैं। किन्तु प्रेमचन्द ने युगीन जीवन को ग्रहण कर उसे शाश्वत रूप देने का प्रयास किया है। कलाकार का युग की परिस्थितियों से प्रेरित होना स्वाभाविक है। अतः कलाकार की कृति में छिपी वृत्तियो को देखना होता है जो युग-विशेष की न हो युग-युग की होती हैं। जिसका निश्चित ही प्रेमचन्द के उपन्यासो में अभाव नहीं है।

शरतचन्द्र को प्रेमचन्द की भांति युग-चित्रण का व्यापक लक्ष्य अभीष्ट नहीं है। किन्तु प्रेमचन्द की भांति शरतचन्द्र को भी अपने वर्तमान से असतोष है। यही कारण है कि अपने उपन्यासों के आख्यानों को बंगाल की तत्कालीन सामाजिक-पारिवारिक परिस्थितियों के बीच से चुना है। बंगाल का विक्षुब्ध सामाजिक जीवन और विशेषतः बंगाली युवक की संकटमय स्थिति तथा पारिवारिक जीवन मे घुटती हुई नारी की समस्या शरतचन्द्र के उपन्यासों के देशकाल की परिधि है; किन्तु सीमित और सकुचित देश-काल में शरतचन्द्र ने मानव की शाश्वत वृत्तियों का संस्पर्श विशेषरूप से किया है, इस दृष्टि से शरतचन्द्र के उपन्यासो के देश-काल की परिधि को सीमित नहीं समझा जाना चाहिए।

.. शरतचन्द्र दोनो ही उपन्यासकार समाज की युगीन परिस्थिति
रूप स्पुष्ट दिखाई पडते हैं। प्रेमचन्द अपने आसपास के वातावरण, प्रान्त और देश
वातावरण से क्षुब्ध होते हैं तो उसे कथा का रूप दे देते हैं। शरतचन्द्र अपने
परिवार और समाज के वातावरण से असतुष्ट होकर अपनी कृतियो की रचना क
हैं। यही इन दो महान् उपन्यासकारो के उपन्यासो मे देशकाल मे भी अंतर उत्पन्न हु
है। प्रेमचन्द की दृष्टि अपने युग की आर्थिक विषमता और देश के दारिद्रय पर
रही है। शरतचन्द्र की दृष्टि उस ओर नहीं गयी है। प्रेमचन्द समाज की ज्वल
समस्याओ, दहेज, बाल-विवाह, बहु-विवाह, अशिक्षा, विधवा विवाह आदि को अभि
करते हैं। शरतचन्द्र का ध्यान भी इस ओर गहराई से गया है किन्तु उन्होने समस्या
रूप न देकर परिस्थितियो को उत्पन्न कर दिया है। देश की पराधीनता और मुक्ति
आन्दोलन को प्रेमचन्द प्राथमिकता देते हैं। शरतचन्द्र के उपन्यासों मे कम विचार हु
है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने अपनी कृतियो
जिस देश-काल को अपनाया है उसका स्वाभाविक और वास्तविक चित्रण करने
चेष्टा की है। दोनो उपन्यासकारो ने सामयिक इतिहास को यथार्थवादी दृष्टि से देख
है तथा उसे अपनी कृतियो मे अंकित किया है। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप मे प्रत्ये
साहित्यकार की कृति मे एक सन्देश निहित रहता है। साहित्यकार स्रष्टा होता है। अप
आदर्शों मे परिकल्पना मे वह भावी समाज का लोक मंगलकारी स्वप्न देखता है। लो
कल्याण और लोक-मगल की भावना से अनुप्राणित प्रेमचन्द के उपन्यासों की रचन
उद्देश्यनिष्ठ है। इस सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा का मत उल्लेखनीय है

"प्रेमचन्द साहित्यकार की तटस्थता के हामी नहीं थे। वह यह उपदेश न दे
थे कि अगर जन-साधारण के आन्दोलनो और सघर्षों को लेकर साहित्य रचा जायेग
तो वह अमर न होगा। उनका सिद्धान्त था कि साहित्यकार का कर्त्तव्य है कि व
जनता की सेवा करने के लिए साहित्य रचे।"[६१] प्रेमचन्द को अपने युग की परिस्थिति
से गहरा असतोष रहा है। समाज और देश की परिस्थितियों को प्रेमचन्द की पैन
दृष्टि ने कला का रूप प्रदान करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि प्रेमचन्द
उपन्यासों मे प्रेमचन्द के युग की विभिन्न समस्यायें दिग्दर्शित की गई हैं अत यह
है कि प्रेमचन्द के उपन्यासों की रचना के मूल मे निश्चित उद्देश्य निहित है। इस दृष्टि
मे प्रेमचन्द एक सफल उपन्यासकार हैं। किसान की दयनीय स्थिति, भूमि पर उस
स्वामित्व की समस्या एव जमींदारी उन्मूलन 'प्रेमाश्रम', 'गोदान' और 'कायाकल
की रचना के उद्देश्य हैं। देश को पराधीनता से मुक्ति दिलाना, विभिन्न जाति
के पारस्परिक विद्वेष को दूर करना, धार्मिक भ्रान्तियों को मिटाना तथा धर्म के प्रति
यथार्थ रुचि उत्पन्न करना प्रेमचन्द की उपन्यास की रचना के मूल मे निहित भावना

...शरतचन्द्र दोनों ही उपन्यासकार समाज की युगीन परिस्थितियों रूप स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। प्रेमचन्द अपने आसपास के वातावरण, प्रान्त और देश के वातावरण से क्षुब्ध होते हैं तो उसे कथा का रूप दे देते हैं। शरतचन्द्र अपने घर परिवार और समाज के वातावरण से असंतुष्ट होकर अपनी कृतियों की रचना करते हैं। यही इन दो महान् उपन्यासकारों के उपन्यासों में देशकाल में भी अंतर उत्पन्न हुआ है। प्रेमचन्द की दृष्टि अपने युग की आर्थिक विषमता और देश के दारिद्रय पर भी रही है। शरतचन्द्र की दृष्टि उस ओर नहीं गयी है। प्रेमचन्द समाज की ज्वलंत समस्याओं, दहेज, बाल-विवाह, बहु-विवाह, अशिक्षा, विधवा विवाह आदि को अंकित करते हैं। शरतचन्द्र का ध्यान भी इस ओर गहराई से गया है किन्तु उन्होंने समस्या का रूप न देकर परिस्थितियों को उत्पन्न कर दिया है। देश की पराधीनता और मुक्ति आन्दोलन को प्रेमचन्द प्राथमिकता देते हैं। शरतचन्द्र के उपन्यासों में कम विचार हुआ है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने अपनी कृतियों में जिस देश-काल को अपनाया है उसका स्वाभाविक और वास्तविक चित्रण करने की चेष्टा की है। दोनों उपन्यासकारों ने सामयिक इतिहास को यथार्थवादी दृष्टि से देखा है तथा उसे अपनी कृतियों में अंकित किया है। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक साहित्यकार की कृति में एक सन्देश निहित रहता है। साहित्यकार स्रष्टा होता है। अपने आदर्शों में परिकल्पना में वह भावी समाज का लोक मंगलकारी स्वप्न देखता है। लोक-कल्याण और लोक-मंगल की भावना से अनुप्राणित प्रेमचन्द के उपन्यासों की रचना उद्देश्यनिष्ठ है। इस सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा का मत उल्लेखनीय है

"प्रेमचन्द साहित्यकार की तटस्थता के हामी नहीं थे। वह यह उपदेश न देते थे कि अगर जन-साधारण के आन्दोलनों और संघर्षों को लेकर साहित्य रचा जायेगा, तो वह अमर न होगा। उनका सिद्धान्त था कि साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह जनता की सेवा करने के लिए साहित्य रचे।"[६१] प्रेमचन्द को अपने युग की परिस्थितियों से गहरा असंतोष रहा है। समाज और देश की परिस्थितियों को प्रेमचन्द की पैनी दृष्टि ने कला का रूप प्रदान करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि प्रेमचन्द उपन्यासों में प्रेमचन्द के युग की विभिन्न समस्यायें दिग्दर्शित की गई हैं अत: यह है कि प्रेमचन्द के उपन्यासों की रचना के मूल में निश्चित उद्देश्य निहित है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द एक सफल उपन्यासकार हैं। किसान की दयनीय स्थिति, भूमि पर उसके स्वामित्व की समस्या एवं जमींदारी उन्मूलन 'प्रेमाश्रम', 'गोदान' और 'कायाकल्प' की रचना के उद्देश्य हैं। देश को पराधीनता से मुक्ति दिलाना, विभिन्न जातियों के पारस्परिक विद्वेष को दूर करना, धार्मिक भ्रान्तियों को मिटाना तथा धर्म के प्रति यथार्थ रुचि उत्पन्न करना प्रेमचन्द की उपन्यास की रचना के मूल में निहित भावनाएं

३९. श्रीकांत (चतुर्थ पर्व), पृ० १६५
४०. गोदान, पृ० ६४
४१. कर्मभूमि, पृ० १७४
४२. शेषप्रश्न, पृ० २२१-२२२
४३. गोदान, पृ० १२८
४४. देना-पावना, पृ० २७
४५. रंगभूमि, पृ० ४१८
४६. पथ के दावेदार, पृ० १२४
४७. गोदान, पृ० २५४
४८. वही, पृ० १६१
४९. वही, पृ० २६४
५०. शरत-प्रतिमा, पृ० २०८
५१. वही, पृ० २१४
५२. कायाकल्प, पृ० २०८
५३. रंगभूमि, पृ० ५१०
५४. शेषप्रश्न, पृ० २४१
५५. चरित्रहीन, पृ० ३००
५६. श्रीकांत (प्रथम पर्व), पृ० ५१
५७. गोदान, पृ० १५६
५८. वही, पृ० २८४
५९. वही, पृ० ३२०
६०. कर्मभूमि, पृ० ३५६
६१. शरत-पत्रावली, पृ० १०७
६२. चरित्रहीन, पृ० ४१४
६३. शरत-प्रतिमा, पृ० २२४
६४. श्रीकांत (प्रथम पर्व), पृ० १२६
६५. चरित्रहीन, पृ० ३७०
६६. शेषप्रश्न, पृ० ३६
६७. वही, पृ० १३८
६८. गोदान, पृ० ६
६९. वही, पृ० ३२२
७०. रंगभूमि, पृ० ३६२
७१. वही, पृ० ७५
७२. वही, पृ० ५३
७३. कर्मभूमि, पृ० १४३
७४. शेषप्रश्न, पृ० १४

७५. वही, पृ० १६७
७६. वही, पृ० ११०
७७. वही
७८. वही, पृ० २७८
७९. वही, पृ० २७९
८०. वही, पृ० ३०७
८१. पथ के दावेदार, पृ० १०२
८२. गोदान, पृ० ३०४
८३. वही, पृ० २६
८४. चरित्रहीन, पृ० १६६
८५ वही, पृ० २११
८६. गोदान, पृ० २४
८७. वही, पृ० २२८
८८. शेषप्रश्न, पृ० ४३
८९. वही, पृ० १२५
९०. रंगभूमि, पृ० २३
९१. प्रेमचन्द और उनका युग—डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० ४१
९२. साहित्य का उद्देश्य—प्रेमचन्द, पृ० ६
९३. शरत निबन्धावली, पृ० १४

१०

रचना-प्रक्रिया : विचार और मान्यताएं

लेखक की कृति स्वतः उसके विचारों की द्योतक होती है। लेखक की रचना के मूल में जो उद्देश्य होता है उसे वह विभिन्न रूपों में विभिन्न कोणों से उपस्थित करने की चेष्टा करता है। प्रेमचन्द ने इस मत को अपने एक लेख में स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करते हुए कहा है कि—"वास्तव में कोई रचना रचयिता के मनोभावों का, उसके चरित्र का, उसके जीवनादर्श का, उसके लगन-दर्शन का आइना होती है। जिसके हृदय में देश की लगन है उसके चरित्र-घटनावली और परिस्थितियां सभी उसी रंग में रंगी हुई नजर आयेंगी।"[1] शरतचन्द्र ने भी उपन्यास-लेखन में प्रेमचन्द की ही भांति अनुभव किया है जिसे अपने एक पत्र में अभिव्यक्त करते हुए लिखा है—"सब से जिन्दा रचना वही है जिसे पढ़ने से लगे कि ग्रन्थकार अपने अंतर से सब कुछ को बाहर फूल की भांति खिला रहा है। देखा नहीं मेरी सारी पुस्तकों के नायक-नायिकाओं को लोग समझते हैं कि शायद यही ग्रन्थकार का अपना जीवन है, अपनी बात है।"[2] प्रस्तुत उद्धरणों द्वारा प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यास-लेखन सम्बन्धी दृष्टिकोणों से एक सहज निष्कर्ष की उपलब्धि होती है। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र दोनों ही उपन्यासकारों ने रचना के मूल में सन्निहित स्रष्टा के दृष्टिकोण की ओर स्पष्ट संकेत किया है। वस्तुतः रचना-प्रक्रिया और भावों-विचारों की अभिव्यक्ति लेखक से भिन्न नहीं होती। लेखक अपनी कृति को एक दृष्टिकोण देता ही है। उपन्यासकार अपने दृष्टिकोण को अपनी रचना में विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त करता है। विभिन्न पात्रों का निर्माण तथा कथानक में सन्निहित विभिन्न कहानियां, कहानियों के मोड़ तथा लेखक की व्यक्तिगत टिप्पणियां लेखक के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने में समर्थ होती हैं। कभी-कभी उपन्यासकार द्वारा लिखित निबन्धों तथा उसके व्यक्तिगत पत्रों में भी उपन्यासकार की रचनाओं के सम्बन्ध में संकेत प्राप्त होते हैं।

उपन्यास के पात्रों का निर्माण मुख्यतः लेखक की अनुभूतियों तथा उसके व्यक्तित्व पर आधारित रहता है। कोई उपन्यासकार किसी एक ही पात्र में अपने व्यक्तित्व अथवा दृष्टिकोण को समाहित नहीं कर देता। वह तो विभिन्न पात्रों को अपने विचारों से अनुप्राणित करता है। अतः किसी एक पात्र में लेखक के परिपूर्ण दृष्टिकोण को नहीं प्राप्त किया जा सकता। लेखक के जीवन के विभिन्न अनुभव, संस्कार, घटनाएं तथा उसकी कृति के कथा-सूत्र तथा चरित्र-चित्रण के सर्जनात्मक सम्बन्ध से उनके

शरतचन्द्र के उपन्यासों के अध्ययन से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि किसी एक पात्र के द्वारा लेखक के दृष्टिकोण को नहीं जाना जा सकता है। लेखक परस्पर भिन्न प्रकृति होने वाले पात्रों के माध्यम से भी अपने दृष्टिकोण को उपस्थित करता है। 'श्रीकांत' (श्रीकांत) और 'सव्यसाची' (पथ के दावेदार) परस्पर भिन्न प्रकृति होने वाले दो पात्र हैं। 'श्रीकांत' में मध्यवित्त बंगाली युवक की रोमानी वृत्ति की अभिव्यक्ति हुई है। तथा 'सव्यसाची' में क्रान्तिकारी भावनाओं की उदभावना हुई है। किन्तु लेखक का व्यक्तित्व 'श्रीकांत' और 'सव्यसाची' दोनों को ही प्राप्त हुआ है। 'श्रीकांत' की रोमानी वृत्ति को 'सव्यसाची' में निष्ठा का स्वरूप प्रदान किया गया है। शरतचन्द्र का दृष्टिकोण 'श्रीकांत' और 'सव्यसाची' दोनों में ही उपस्थित है।

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक के विचार तथा दृष्टिकोण को उसके द्वारा रचित विभिन्न पात्र उपस्थित करते हैं। प्रेमचन्द के किसान-जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण को केवल 'होरी' के द्वारा ही नहीं जाना जा सकता वरन् 'बलराज' का दृष्टिकोण भी महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार शरतचन्द्र के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है कि 'श्रीकांत' और 'सव्यसाची' दोनों ही शरतचन्द्र के विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। वस्तुत उपन्यासकार प्रत्येक पात्र के सृजन का केन्द्र-बिन्दु होता है। अत विभिन्न पात्रों में अन्तर्निहित भावनाएं लेखक से विच्छिन्न नहीं होतीं। एक लेखक द्वारा रचित भिन्न-भिन्न उपन्यासों के भिन्न-भिन्न पात्रों में एक ही चेतना परिव्याप्त होती है। यही कारण है कि 'होरी' 'गोबर' 'रायसाहब' 'धनिया' (गोदान) 'सूरदास' (रंगभूमि) 'बलराज' (प्रेमाश्रम) 'अमरकान्त' (कर्मभूमि) तथा 'सुमन' (सेवासदन) परस्पर भिन्न होते हुए ... ...र प्रत्येक भिन्न रूप से प्रेमचन्द के किसी न ... है। यही बात शरतचन्द्र के पात्रों – 'श्रीकांत' 'रमेश' (ग्रामीण-समाज) ...

की भावना सम्पूर्ण उपन्यास में परिव्याप्त है। ढोर खाने वाले अछूतों की प्रवृत्ति का विरोध उसी वर्ग की नारी 'मुन्नी' द्वारा कराया गया है—"मुन्नी ने क्रोध कहा—मेरा ही मास खा जाओगे, तो कौन हरज है, वह भी तो मास ही है और किसी को आगे बढते न देख कर पयाग ने खुद आगे बढ़कर मुन्नी का हाथ लिया और उसे वहाँ से घसीटना चाहता था कि काशी ने उसे जोर से धक्का दिया और लाल आँखें करके बोला—भैया, अगर उसकी देह पर हाथ रखा, तो खून हो जायगा—कहे देता हूं। हमारे घर में गऊ मास की गध तक न जाने पायेगी। आये वहां से बड़े वीर बन कर। चौड़ी छाती वाला युवक मध्यस्थ बनकर बोला—मरी गाय के मांस मे ऐसा कौन सा मजा रखा है जिसके लिए सब जने मरे जा रहे हो? गड्ढा खोदकर मांस गाड़ दो खाल निकाल लो। वह भी जब अमर भैया की सलाह हो। हमको तो उन्हीं की सलाह पर चलना है। उनकी राह पर चलकर हमारा उद्धार हो जायगा। सारी दुनिया हमे इसीलिए अछूत समझती है कि हम दारू पीते हैं, मुरदा-मास खाते हैं और चमड़े का काम करते हैं। और हममे क्या बुराई है? दारू शराब हमने छोड़ ही दी—हमने क्या छोड़ दी समय ने छुड़वा दी—फिर मुरदा मांस बुरा नही कह सकता और अगर कोई कहे भी तो हमे उसकी परवाह नहीं। चमड़ा बनाना बेचना बुरा काम नहीं।"[२] स्पष्ट है कि 'कर्मभूमि' मे प्रेमचन्द विभिन्न पात्रों द्वारा अछूतों को सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाने के लिए प्रयत्नशील हैं जो अछूतों के उद्धार के सम्बन्ध मे प्रेमचन्द के दृष्टिकोण को भी स्पष्ट करता है।

'सेवासदन' मे वेश्यावृत्ति का विरोध सर्वत्र हुआ है। इस सम्बन्ध मे अनेक स्थलों पर वेश्यावृत्ति विरोधी विचारों को अभिव्यक्त किया गया है। कतिपय उद्धरणों द्वारा इसे देखा जा सकता है—"ये स्त्रियां बहुत ही सुन्दर हैं, बहुत ही कोमल हैं, पर उन्होंने अपने स्वर्गीय गुणों का ऐसा दुरुपयोग किया है? उन्होंने अपनी आत्मा को कितना गिरा दिया है, हां केवल इन रेशमी वस्त्रों के लिए, इन जगमगाते हुए आभूषणों के लिये उन्होंने अपनी आत्मा को विनष्ट कर डाला है। वे आंखें जिनसे प्रेम की ज्योति निकलनी चाहिये थी कपट कटाक्ष और कुचेष्टा से भरी हुई हैं। वे हृदय जिनमें विशुद्ध निर्मल प्रेम का स्रोत बहना चाहिए था कितनी दुर्गन्ध और विषाक्त मलिनता से ढके हुए हैं।"[१] "हकीम शोहरत खां बोले, जनाब मेरा बस चले तो मैं इन्हें हिन्दुस्तान से निकाल दूं, इनसे एक जजीरा अलग आबाद करूं। मुझे इस बाजार के मरीजों से अक्सर साबिका रहता है। अगर मेरे मजहबी अकायद में फर्क न आए तो मैं यह कहूंगा कि [illegible] हैं और ताऊन का औजार हैं। हैजा दो घंटे में काम तमाम कर देता है, प्लेग दो दिन में, लेकिन यह जहन्नुमी हस्तियां तड़पा-तड़पाकर और घुला-घुलाकर जान मारती हैं। मुन्शी अबुलवफा साहब उन्हें जन्नती हूर समझते हैं, लेकिन वे ये [illegible]

नागिनें हैं जिनकी आँखों में जहर है। ये वे चश्मे हैं जहां से जरायम के सोते निकलते हैं। कितनी ही नेक बीवियां उनकी बदौलत खून के आँसू रो रही हैं। कितने ही शरीफजादे उनकी बदौलत खस्ता व ख्वार हो रहे हैं। यह हमारी बदकिस्मती है कि बेरहर तवायफें अपने को मुसलमान कहती हैं।"[७] "पद्मसिंह ने अपना प्रस्ताव उपस्थित किया और तुले हुए शब्दों मे उसकी पुष्टि की। यह तीन भागों में विभक्त था। (१) वेश्याओं को शहर के मुख्य स्थान से हटाकर बस्ती से दूर रखा जाय, (२) उन्हें शहर के मुख्य सैर करने के स्थानों और पार्कों में आने का निषेध किया जाय, (३) वेश्याओं का नाच कराने के लिए एक भारी टैक्स लगाया जाय और ऐसे जलसे खुले स्थानो मे किसी हालत में न हों।"[८]

कुल और जाति की निर्ममता का चित्रण शरतचन्द्र के अनेक सामाजिक उपन्यासों में हुआ है। अतः विभिन्न कृतियों में एक ही विषय पर अपने विचारों को अभिव्यक्त कर शरतचन्द्र अपने दृष्टिकोण को उपस्थित करते हैं। 'ब्राह्मण की बेटी' और 'पथ के दावेदार' मे वंश और जाति संबंधी दृष्टिकोण द्रष्टव्य है—"जिसे तुम वंश की इज्जत समझते हो वास्तव में वह है क्या? याद रखना वह झूठ को इज्जत देकर जितना ऊंचा बनाये रखोगी उतनी ही ग्लानि, उतना ही कीचड़, उतना ही अनाचार इकट्ठा होता रहेगा और हो भी यही रहा है।"[९] "समाज और वंश के नाम पर व्यक्तियों को अब तक बलि किया जाता रहा है, पर उसका फल अच्छा नही हुआ, आज वह नही चल सकता है।"[१०] शरतचन्द्र के उपन्यासो मे विचारों की पुनरावृति अन्य स्थलों पर भी द्रष्टव्य है। विवाह सबन्धी दृष्टिकोण मे सभ्यता के उदाहरण प्रस्तुत हैं "मन का मिलन ही सच्चा विवाह है। नही तो विवाह के मंतर चाहे भाषा मे पढे जायें चाहे सस्कृत मे, भट्टाचार्य महाशय पढें, चाहे आचार्य महाशय पढ़ें, इसमे क्या होता जाता है।"[११]

"ससार मे होने वाली अनेक घटनाओं मे से विवाह भी एक घटना ... मानते हैं।"[१२] "भला इस संसार मे ऐसा कौन-सा सभ्य देश है जहां इतना बड़ा हो सकता है? क्या औरतों के जान नहीं होती? उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करके इस प्रकार जन्म-भर उसे जलाने का अधिकार किसको है और ... देश है जहा की स्त्रिया इच्छा करने पर इस प्रकार के ब्याह पर लात मार कर उसे तोड़ कर जहा जी चाहे वहा नहीं जा सकतीं।"[१३]

यहा यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यासों मे वि... की आवृत्तिया हुई हैं जिनके आधार पर यह मान लेने में सकोच न होना चाहि... वे लेखक के दृष्टिकोण से भिन्न नहीं हैं। प्रस्तुत उद्धरणों से यह भी स्पष्ट हो जा... कि विभिन्न पात्रों और विभिन्न कृतियों द्वारा लेखक अपने विचारों को अ...

करता है। अतः कभी-कभी परस्पर भिन्न प्रतीत होने वाले पात्र भी लेखक के दृष्टि-
को पुष्ट करते हैं। इस सबन्ध मे मानव की शाश्वत वृत्तियो को विशेष रूप से
जा सकता है। पाप-पुण्य, सत्य-असत्य, घृणा-प्रेम तथा क्रोध आदि के सम्बन्ध मे लेख
का एक सामान्य दृष्टिकोण होता है जो किसी कृति के समन्वित प्रभाव मे जाना
सकता है।

उपन्यासकारो के विचारो की आवृत्तियो का दूसरा रूप पात्रो के निर्माण मे व्यक्त
होता है। कभी-कभी एक ही प्रकार के पात्रो का निर्माण करके उपन्यासकार अप
दृष्टिकोण को स्पष्ट करना चाहता है। परिणामत उपन्यासकार अपने पात्रो मे कु
विशेष प्रवृत्तियो और गुणो को आरोपित करता है। निश्चित ही उपन्यासकार की इ
प्रवृत्ति से ऐसे पात्रों का निर्माण हो जाता है जिसमे एकरूपता पाई जाती है।

प्रेमचन्द के उपन्यासो मे समाज सुधारक पात्रो का निर्माण प्राय एक-सा हुअ
है। 'अमरकात' 'शातिकुमार' (कर्मभूमि)' 'चक्रधर' (कायाकल्प) 'प्रेमशकर' (प्रेम
श्रम) 'पद्मसिह शर्मा' (सेवासदन) के चरित्र-चित्रण मे प्रेमचन्द का दृष्टिकोण समाज
सुधारक का रहा है। स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने पात्रो से सबन्धित कृतियो मे समा
की समस्याओ को उठाकर उनको हल करने का प्रयास किया है। 'अमरकात' के द्वार
अछूतोद्धार तथा देश के स्वातत्र्य आन्दोलन को प्रस्तुत किया गया है। 'चक्रधर
सामती दासता मे पिसते हुए किसान की समस्याओं को तथा उनकी परिस्थितियो क
सुधारने का प्रयास करता है। 'प्रेमशकर' जमीदारी के अत्याचारो के विरुद्ध किसा
को जाग्रत करता है।

प्रेमचन्द के अन्यान्य पात्रो मे भी एकरूपता के उदाहरण प्रस्तुत किये ज
सकते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों मे 'महन्तो' के चित्रण एक टाइप के हैं और सब जग
महन्तो की स्वार्थान्वितो तथा धर्म के नाम पर शोषण करने वाली वृत्ति का उद्घाट
करना ही प्रेमचन्द का उद्देश्य रहा है। यही कारण है कि 'महन्त रामदास' (सेवासदन
तथा महन्त 'आशाराम गिरि' (कर्मभूमि) के चरित्र-चित्रण मे सारूप्यता है। प्रोफेस
वर्ग के पात्रो के चित्रण मे भी यही बात देखी जा सकती है। 'डा० शान्तिकुमार
(कर्मभूमि) तथा 'प्रो० मेहता' (गोदान) मे प्रोफेसर वर्ग की वायवी आदर्शवादित
का अकन हुआ है। प्रेमचन्द के नारी-पात्रो के चित्रण मे भी गुणो की आवृत्तियो को
देखा जा सकता है। जहा कही भी नारी की सामाजिक पारिवारिक स्थिति का चित्रण
किया गया है उसमे समस्याओ के अन्तर के अतिरिक्त चित्रण शैली प्राय एक-सी है
: प्रतीत होता है कि प्रेमचन्द नारी की विभिन्न समस्याओ को प्रस्तुत
रे हैं। 'सुमन' (सेवासदन) 'पूर्णा' (प्रतिज्ञा) तथा 'निर्मला' (निर्मला) मे
रेमचन्द ने नारी की दयनीय स्थिति के विभिन्न पक्षो को ही प्रस्तुत

किया है।

एक ही टाइप के पात्रों की आवृत्तियो द्वारा दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने की शैली शरतचन्द्र के उपन्यासों मे स्पष्टत: परिलक्षित होती है। शरतचन्द्र के उपन्यासों के पात्र प्राय मध्यवर्गीय चेतना से आप्लावित हैं। परिणामत: शरतचन्द्र के पात्रो मे सामान्य प्रवृत्तियो का अंकन हुआ है। स्पष्ट है कि शरतचन्द्र मध्यवर्गीय व्यक्ति की प्रत्येक प्रवृत्ति को अपने उपन्यासों के विभिन्न पात्रो के माध्यम से अभिव्यक्त कर देना चाहते हैं। 'श्रीकांत' (श्रीकांत) 'सुरेश' 'अचला' (गृहदाह) 'सतीश' (चरित्रहीन) 'अजित' 'शिवनाथ' (शेषप्रश्न) आदि पात्र मध्यवर्गीय जीवन की विभिन्न कृतियों के प्रकाशन हैं। शरतचन्द्र के नारी-पात्रो के निर्माण मे भी यही प्रवृत्ति निहित है। शरतचन्द्र अपमानित और लांछित नारी के चित्रण को अधिक निखारते हैं। स्पष्ट है कि शरतचन्द्र लांछित और अपमानित नारो के प्रति सहृदय हैं। 'चन्द्रमुखी' (देवदास) 'राजलक्ष्मी' 'अभया' 'कमललता' (श्रीकांत) आदि को इस बात की पुष्टि के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। नारी के प्रति सहृदयता को लेकर शरतचन्द्र पर आक्षेप भी हुए हैं जिसका उत्तर देते हुए शरतचन्द्र ने स्वयं लिखा है—"आत्म रक्षा के बहाने भी मनुष्य का असम्मान करना मुझसे नही होता। देखो न लोग कहते हैं कि मैं पतिताओं का समर्थन करता हूँ, समर्थन मैं नही करता, केवल उनका अपमान करने को मेरा मन नही चाहता। मैं कहता हूँ कि वे भी मनुष्य हैं, उन्हे भी फरियाद करने का अधिकार है। और महाकाल के दरबार मे उसका विचार एक दिन अवश्य होगा। अपनु संस्कारों से अंधे हो रहे लोग इस बात को किसी तरह स्वीकार करना नही चाहते।"[१]

उपन्यास के अन्तर्गत लेखक के विचारो को जानने का दूसरा साधन कथानक से सम्बन्धित विभिन्न कहानियां तथा घटनाएं हैं। लेखक कहानी को जो मोड़ देता है तथा घटनाओ को जिस क्रम मे संजोता है उससे लेखक का दृष्टिकोण स्पष्ट होता है।

प्रेमचन्द के समस्त उपन्यासो में कथाओं को जो मोड़ दिये गये हैं उनमे लेखक के दृष्टिकोण को स्पष्टत: जाना जा सकता है। 'निर्मला' में 'निर्मला' के जीवन की करुणा को प्रदर्शित करने के लिए 'निर्मला' के पति के हृदय मे, अपनी पूर्व-पत्नी के पुत्र की विमाता के प्रति आसक्ति की शंका उत्पन्न की गयी है। प्रस्तुत घटना से ही उपन्यास की मूल कथा का विकास हुआ है और लेखक असहाय नारी-जीवन की करुणा को अभिव्यक्त करने मे सफल हुआ है। 'सेवासदन' मे 'सुमन' और 'गजाधर' के बीच पारिवारिक कलह का सूत्रपात करके कथा को विकसित किया गया है। 'भोली बाई' की कथा तथा 'पद्मसिंह शर्मा' के घर एक रात्रि 'सुमन' के आश्रय देने तक उसके की कल्पना कर लेखक अपने उद्देश्य की ओर आगे बढ़ा। 'सुमन' को वेश्या बनाने का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द वेश्या-जीवन की दयनीय स्थिति को अभिव्यक्त

'षोडशी' द्वारा भैरवी पद का त्याग भी अंकित किया गया है तथा 'हैम' के दाम्पत्य जीवन की कथा की सृष्टि की गयी है। प्रस्तुत उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द और शरतचन्द्र ने कहानियों को जो मोड़ दिये हैं वे उनके दृष्टिकोणों को अभिव्यक्त करते है। अतः इस आधार पर भी प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के विचारों की पुष्टि की जा सकती है।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र अपने उपन्यासों मे उन असामाजिक तत्वों पर चोट करते हैं जो समाज के विकास और स्वस्थ परम्पराओं के अनुकूल नहीं होते। इस आधार पर भी प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के दृष्टिकोण का पता चलता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों मे समाज में प्रचलित कुरीतियो पर गहरा विरोध व्यक्त किया गया है। 'सेवासदन' में नारी के वेश्यावृत्ति अपनाने तथा 'प्रतिज्ञा' में 'पूर्णा' के माध्यम से विधवा नारी की दयनीय स्थिति का उद्घाटन किया गया है। समाज की असंतुलित अर्थ-व्यवस्था पर प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में स्थल-स्थल पर विरोध व्यक्त किया है। 'प्रेमाश्रम', 'गोदान' तथा 'कायाकल्प' में इसे स्पष्टतः देखा जा सकता है। 'निर्मला' में नारी-जीवन की घुटन और करुणा को अत्यंत संवेदना के साथ व्यक्त किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि दहेज, अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह, असतुलित अर्थ-व्यवस्था आदि से प्रेरित होकर ही प्रेमचन्द अपने उपन्यासों की कथा का निर्माण करते हैं। स्पष्ट है कि इन विषयों से सम्बन्धित विचार प्रेमचन्द के ही हैं।

शरतचन्द्र के उपन्यासो मे जीवन की करुणा को संवेदित किया गया है। शरतचन्द्र, समाज के कठोर शासन तथा समाज के निरंकुश अधिकार के विरोधी हैं। परिणामतः शरतचन्द्र के उपन्यासो मे समाज की प्रचलित मान्यताओ का खण्डन किया गया है तथा मनुष्य के प्रति एक अकृत्रिम सहानुभूति तथा संवेदना की अभिव्यक्ति हुई है। यही कारण है कि शरतचन्द्र के उपन्यासो मे समाज की प्रचलित कुरीतियो तथा नारी की दयनीय स्थिति को शक्ति पूर्ण किया गया है। शरतचन्द्र के नारी-पात्रों के साथ लेखक की सहानुभूति को अत्यत स्पष्टता से देखा जा सकता है। अनमेल विवाह (देवदास) विधवा की स्थिति (चरित्रहीन, सावित्री, किरणमयी) तथा नारी का विक्षुब्ध पारिवारिक जीवन शरतचन्द्र के उपन्यासों में अंकित हुआ है। जात-पात के कारण उत्पन्न परिस्थितियो को गहराई से अंकित किया गया है। पुरुष का भावुक हृदय तथा नारी की अतृप्ति और आकांक्षा शरतचन्द्र के उपन्यासों का मुख्य स्वर है। इसी आधार पर हम शरतचन्द्र के दृष्टिकोण को जान सकते हैं। 'श्रीकान्त'-'राजलक्ष्मी' (श्रीकान्त) 'सावित्री'-'सतीश' (चरित्रहीन) 'देवदास'-'पार्वती' (देवदास) आदि की समस्याओं द्वारा शरतचन्द्र ने अपने दृष्टिकोण को ही अभिव्यक्त किया है।

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के विचारों को जानने के ... विवेचन

किया गया है वह उपन्यासों के अन्तर्गत विषयों के आधार पर ही है किन्तु लेखक की कृति के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे साधन हैं जिनके द्वारा लेखक के विचारों का पता चलता है। इस दृष्टि से उपन्यासकारों द्वारा लिखे गये निबन्ध तथा पत्रादि हैं। प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के विचारों को समझने के लिए उनके निबन्ध और पत्र विशेष उपयोगी है क्योंकि दोनों उपन्यासकारों ने अपने-अपने निबन्धों और पत्रों में जो विचार व्यक्त किये हैं उनकी मान्यता उपन्यासों में अभिव्यक्त विचारों में भी स्थापित हुई हैं, साथ ही उन लेखों और पत्रों में कृतियों के सृजन के उद्देश्य तथा कतिपय अन्य संकेत स्पष्ट दिये गये हैं। कुछ उदाहरणों द्वारा यह बात स्पष्ट हो जायगी।

प्रेमचन्द ने अपने एक लेख में 'रंगभूमि' की प्रेरणा के स्रोत का उल्लेख करते हुए लिखा है—"रंगभूमि का बीजांकुर हमें एक अंधे भिखारी से मिला जो हमारे गांव में रहता था। एक ज़रा-सा इशारा, एक ज़रा-सा बीज, लेखक के मस्तिष्क में पहुंचकर इतना विशाल वृक्ष बन जाता है कि लोग उस पर आश्चर्य करने लगते हैं।"[१४] प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में मानव जीवन की समस्याओं तथा समाज की समस्याओं पर गहराई से विचार किया है। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द ने अपने निबन्ध में अनेक स्थलों पर स्पष्ट संकेत दिये हैं—"परन्तु हमारी साहित्यिक रुचि' बड़ी तेजी से बदल रही है। अब वह केवल नायक-नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है।"[१६] "साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक स्वाधीन बनाता है। दूसरे शब्दों में उसी की बदौलत मन का संस्कार होता है। यही उसका मुख्य उद्देश्य है।"[१७] "हमारा ख्याल है कि क्यों न कुशल साहित्यकार कोई विचार-प्रधान रचना भी इतनी सुन्दरता से करे जिसमें मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों का संघर्ष निभता रहे। कला के लिए कला का समय वह होता है जब देश सम्पन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं कि हम भांति-भांति के राजनीतिक और सामाजिक बन्धनों में जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है दुःख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखायी देते हैं विपत्ति का करुण क्रन्दन सुनाई देता है तो कैसे सम्भव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठे।"[१८]

"आज का साहित्यकार जीवन के प्रश्नों से भाग नहीं सकता।"[१६] "मनुष्य की भलाई या बुराई की परख उसकी सामाजिक या असामाजिक कृतियों में है। जिस काम से मनुष्य समाज को क्षति पहुंचती है, वह पाप है, जिससे उसका उपकार होता है, वह पुण्य है। सामाजिक उपकार या अपकार से परे हमारे किसी कार्य का कोई महत्त्व नहीं है और मानव-जीवन का इतिहास आदि से इसी सामाजिक उपकार की मर्यादा बांधता चला आया है।"[२०] प्रस्तुत उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों की रचना निश्चित उद्देश्य से प्रेरित होकर की है अतः समाज की

३. कर्मभूमि, पृ० २०६
४. वही, पृ० २१४
५. वही, पृ० २७१
६. सेवासदन, पृ० २०४
७. वही, पृ० १६०-१६१
८. वही, पृ० २४८
९. बाम्हन की बेटी, पृ० ६४
१० पथ के दावेदार, पृ० ११२
११. दत्ता, पृ० १६६
१२. शेषप्रश्न, पृ० २१५
१३. स्वामी, पृ० ४०
१४. शरत निबंधावली, पृ० ११६
१५. साहित्य का उद्देश्य—प्रेमचन्द, पृ० ६०
१६. वही, पृ० ४
१७. वही, पृ० ९
१८. वही, पृ० ५९
१९. वही, पृ० १०४
२०. वही, पृ० ८३
२१. चरित्रहीन, पृ० ३३२
२२. शरत निबंधावली, पृ० ९४
२३. वही, पृ० ९४
२४. शरत पत्रावली, पृ० ५५
२५. शेषप्रश्न, पृ० ४४

व्यवस्था आर्थिक असंतुलन तथा जीवन-दर्शन के संलग्न विचार प्रेमचन्द के दृष्टिको
को ही उपस्थित करते हैं।

शरतचन्द्र द्वारा लिखे पत्र और निबन्धों मे अभिव्यक्त विचारो को उनके उप-
न्यासों में अभिव्यक्त विचारों से साम्य के आधार पर उनके दृष्टिकोण को जाना जा
सकता है। इस बात की पुष्टि कतिपय उद्धरणों से की जा सकती है। विधवा के न्याय-
संगत अधिकार का समर्थन करते हुए शरतचन्द्र ने विभिन्न स्थलो पर लिखा है—"मैं
विधवा हूँ मुझ पर किसी का न्यायसंगत दावा नही है।"[२१] शरतन्चद्र ने अपने एक
निबन्ध मे 'ग्रामीण समाज' की विधवा 'रमा' का उल्लेख करते हुए लिखा है—"उस
विधवा रमा ने अपने बाल्य बंधु रमेश को प्यार किया था, इसके लिए मुझे बहुत
झिड़कियाँ और तिरस्कार सहना पड़ा है। एक विशिष्ट आलोचक ने ऐसा अभियोग
भी किया था कि इतनी दुर्नीति को प्रश्रय देने से गाव मे फिर कोई विधवा नहीं
रहेगी।"[२२] इसके आगे भी लिखा है—"इसको प्रश्रय देने से भला होगा या बुरा, हिन्दू
समाज स्वर्ग में जायगा या रसातल मे, इस मीमांसा का भार मेरे ऊपर नही है। रमा
जैसी नारी और रमेश जैसे पुरुष किसी भी काल में और किसी भी समाज में दल के
दल नही जनमते। दोनों के सम्मिलित पवित्र जीवन की कल्पना करना कठिन नही है
किन्तु हिन्दू-समाज में इस समाधान के लिए जगह नही थी।"[२३] "कितने ही बड़े और
सुन्दर जीवन, समाज में केवल विधवा-विवाह नहीं होने के कारण ही सदा के लिए
व्यर्थ और निष्फल हो गये हैं।"[२४] "पति की स्मृति को छाती से चिपटाये रह कर
विधवाओ को दिन काटने चाहिये, इसकी समाज स्वतःसिद्ध पवित्रता की धारणा को
स्वीकार करने में मुझे तब तक हिचकिचाहट रहेगी जब तक कि कोई प्रमाणित नहीं
कर देगा।"[२५]

प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यास उनकी वैचारिक धारणाओं से भरे पड़े
हैं। वह वैचारिक धारणा छोटे या बड़े, महत्त्वपूर्ण या महत्त्वहीन सभी प्रश्नों को छूती
है। वह दहेज का मामला हो या हाकिम के अत्याचार का, मन का अन्तर्द्वन्द्व हो या
सामयिक संकट का बोध—सबमें प्रेमचन्द अपने प्रतिबद्ध वैचारिक धरातल पर सामने
आते हैं तो शरतचन्द्र संवेदनशील मानवीय करुणा का वैचारिक अनुष्ठान लेकर उसे
सिद्धि देते हैं।

परिशिष्ट